देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

9 772395 711007

Impact Factor
8.642

ISSN : 2395-7115
Jan. 2026
Vol.-23, Issue-1

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

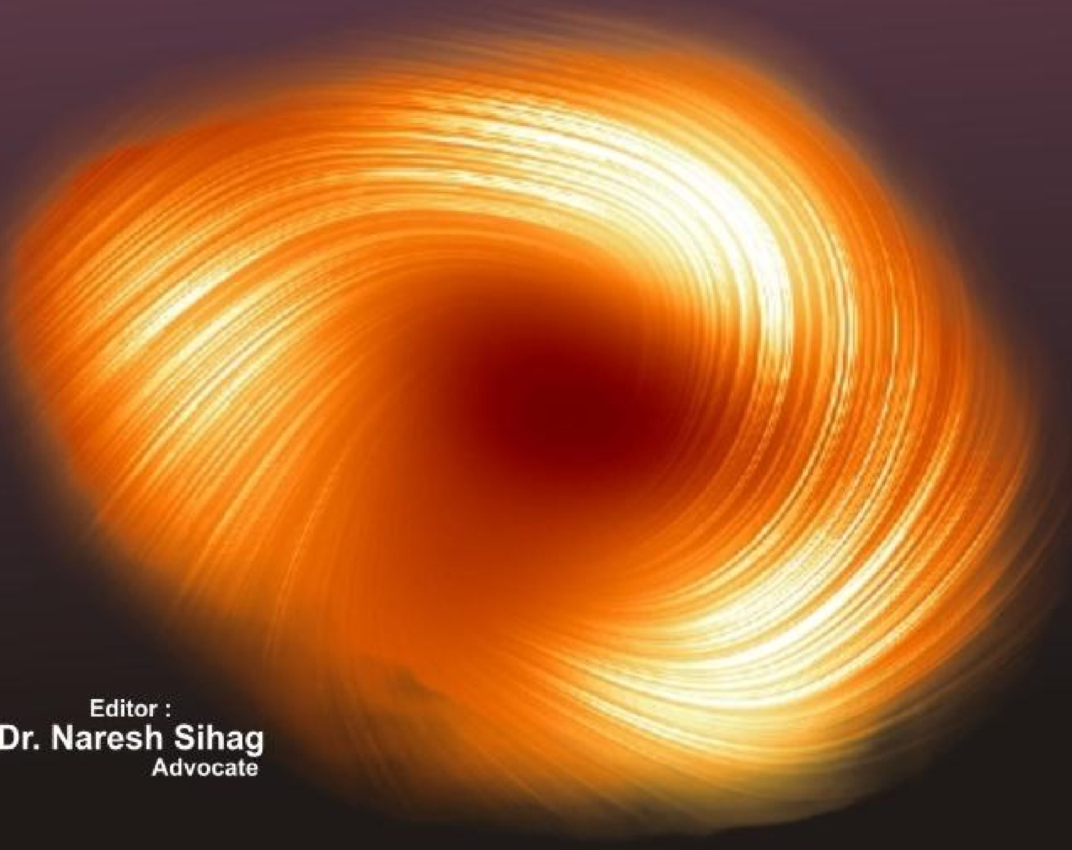

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
#202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551

Vol. 23 ISSUE-1(1) (जनवरी 2026) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : nksihag202@gmail.com

मो. 09466532152

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

<u>*Disclaimer :*</u>

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व शिक्षा अधिकारी,
साहित्यकार,
चरखी दादरी (हरियाणा)

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि.
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी
हिन्दी विभाग, त्रिभुवन वि.वि.
काठमाण्डू, नेपाल।

डिल्लीराम शर्मा संग्रौला
विभागीय प्रमुख, संस्कृत, पत्रकारिता, हिंदी
पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू, नेपाल।

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. इस्पाक अली
पूर्व प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास।

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब।

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. शबाना हबीब
गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वूमैन
त्रिवन्तपुरम, केरल।

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत विभाग
हरियाणा सरकार।

प्रो. नरेन्द्र सोनी
सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी,
हरियाणा सरकार।

पठान चिन्ना जानी
सहायक प्राध्यापक
सी.एच.एस.डी. सेंट थेरेसा
महिला महाविद्यालय (ए)
एलुरु, आंध्र प्रदेश

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. राजकुमारी शर्मा
श्रीराम कॉलेज,
नई दिल्ली।

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार व अनुवादक,
यूक्रेन।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. शिवकरण निमल
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
एसपीसी राजकीय महा. भीम, राजस्थान।

डॉ. नीलम आर्या
संस्कृत विभाग
उत्तर प्रदेश।

डॉ. रोहतास
एस.जी.पी.जी.आई.एम.एस.
लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

डॉ. वैशाली सिंह
सहायक प्राध्यापक
शिक्षा विभाग, एस.एम.टी. अनार देवी
टी.टी. कॉलेज, बखराना
(कोटपुतली) राजस्थान।

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
भारत कला भवन
वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

डॉ. रवि सुण्डयाल
हॉयर एजुकेशन डिपार्टमेंट
जम्मू कश्मीर।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. रेखा रानी
गवर्नमेंट रणबीर कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८६/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

अनुक्रमाणिका – जनवरी 2026

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	09-09
2.	भारत में निर्वाचन नामावली के विशेष गहन पुनरीक्षण की प्रक्रिया, उपयोगिता एवं प्रभाव का अध्ययन	प्रोफेसर चन्द्रशेखर सिंह	10-16
3.	समकालीन हिंदी उपन्यासों में वृद्ध जीवन का आर्थिक संदर्भ	पूजा गुप्ता	17-21
4.	चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी. एड. पाठ्यचर्या के प्रति प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन	सुरेश कुमार मौर्य	22-26
5.	नई शिक्षा नीति 2020 और मातृभाषा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. संजय गोस्वामी	27-28
6.	महिला सशक्तिकरण में बिहार सरकार की योजनाएँ	डॉ० श्वेता कुमारी	29-32
7.	प्राथमिक निजी विद्यालयों के विस्तार के कारणों का अध्ययन	आरती कुमारी, प्रो०(डॉ०)श्याम रंजन प्रसाद सिंह	33-35
8.	श्री नाथद्वारा (श्रीनाथजी की हवेली)	डॉ. चन्द्रकान्ता कुमावत, डॉ. अलकनन्दा शर्मा	36-38
9.	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और नामवर सिंह का जीवन संघर्ष (इनकी जीवनियों के आधार पर)	अमन कुमार	39-47
10.	ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਦੁਆਰਾ ਸਿਰਜਿਤ ਪ੍ਰਵਾਸੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦਾ ਦੁਖਾਂਤ : ਬੈਂਕਸ ਏ ਲੈਟ ਪੁੱਤਰਾ	ਅੰਮ੍ਰਿਤਪਾਲ ਸਿੰਘ	48-53
11.	**Chlorpyrifos Removal from Synthetic Wastewater Using Horizontal Subsurface Flow Constructed Wetlands with Canna Indica**	**Krishma Kumari, Deepak Pathania, Richa Kothari, Pankaj Kumar**	**54-61**
12.	हिन्दी उपन्यासों में किसानों का एक सदी का सफर	गजेन्द्र राम, प्रो. (डॉ.) एस. के. मीना	62-67
13.	**BREAKING PATRIARCHY AT THE VILLAGE LEVEL : A SOCIOLOGICAL ANALYSIS OF WOMEN SARPANCHS**	**Dr. Meena Sharma**	**68-84**
14.	**Economic Consequences of Rural-Urban Migration : A Statistical Analysis of Migrants in Bhiwani District, Haryana**	**Mukesh Poonia, Dr. Kaluram**	**85-91**
15.	सरकारी और अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों के छात्रों की हिंदी भाषा प्रयोग में अशुद्धियों का तुलनात्मक अध्ययन	श्रीमती बंटी रघुवंशी	92-95

16.	**Caste-Bound Reciprocity to Machine- and Market-Centred Pragmatism : Agrarian Reform in Kuttanad, Kerala.**	**Mohan Mathew, Dr. Leela P. U**	**96-105**
17.	'सिसकियाँ' उपन्यास में नारी विमर्श	डिल्लीराम शर्मा संग्रौला	106-110
18.	जनजातीय हस्तशिल्प एवं आर्थिक विकास (बस्तर संभाग के विशेष संदर्भ में)	डॉ. शिव कुमार सिंघल	111-121
19.	हल्बा स्त्रियों के जीवन स्तर में सुधार - एक अध्ययन (कांकेर जिले के संदर्भ में)	डॉ. सुरेश कुमार	122-129
20.	चरकसंहितायां प्रतिफलितं सांख्यतत्त्वम्	डा. उत्तम-माझिः, प्रभात-मण्डलः	130-140
21.	ऑनलाइन संगीत शिक्षा प्राप्त करने का उपयुक्त समय : भारतीय शास्त्रीय संगीत के संदर्भ में एक अध्ययन	**Savita Gill**	**141-145**
22.	हिंदी सिनेमा में चित्रित नारी जीवन	**Dr. Salini. C**	**146-149**
23.	प्रगतिशील कहानियों में आर्थिक विषमता और नैतिक मूल्यों का अंतर्विरोध	आशा कुमारी, डॉ. विनोद कुमार शर्मा	150-156
24.	भारत की समकालीन आर्थिक विकास योजनाओं का राजनीतिक एवं पर्यावरणीय विश्लेषण	प्रियंका	157-171
25.	प्राचीन नालंदा महाविहार का कृषि-आधारित अर्थशास्त्र : 200 गांवों के अनुदान और संसाधन प्रबंधन का विश्लेषणात्मक अध्ययन	प्रभात यादव	172-178
26.	नील कमल के काव्य में नारी-संवेदना एवं स्त्री-विमर्श की संभावनाएँ	डॉ. सुनीता भारती	179-186
27.	भोजपुरी लोकसंस्कृति में मनुष्येत्तर तत्वों की अभिव्यक्ति	डॉ. राम भवन यादव	187-194
28.	वर्तमान युग में सम्यक दृष्टि की प्रासंगिकता-एक बौद्धिक चिंतन	सिद्धार्थ सिंह पटेल	195-198
29.	मगध की राजधानी राजगृह में पाषाण चैत्य (ऐतिहासिक श्रोतों एवं नवीन पुरातात्विक साक्ष्यों का विश्लेषण)	ललन कुमार सिंह	199-203
30.	दामोदर खडसे द्वारा संकलित सूर्यबाला की कहानियों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : संवेदना, यथार्थ और अंर्तद्वंद्व का विश्लेषण	डॉ. ममता शर्मा	204-209
31.	ईश्वर सिद्धान्त : योग दर्शन और वेदान्त का मूलभूत अन्तर	डॉ. शत्रुघ्न सिंह, बृजेश कुमार पाण्डेय	210-215
32.	महात्मा गाँधी और विनोबा भावे के विचार-दर्शन	सुमिता सिंह	216-219

संपादकीय...

शोध और विचार की परंपरा तभी जीवित रहती है, जब वह समय, समाज और संवेदना—तीनों से निरंतर संवाद करती रहे। बोहल शोध मंजूषा का जनवरी 2026 अंक इसी संवाद की एक सशक्त कड़ी के रूप में पाठकों और शोधकर्ताओं के समक्ष प्रस्तुत है। यह पत्रिका केवल शोध आलेखों का संकलन नहीं, बल्कि समकालीन बौद्धिक चेतना, आलोचनात्मक दृष्टि और सामाजिक उत्तरदायित्व का मंच है।

आज का समय बहुस्तरीय चुनौतियों का समय है। वैश्वीकरण, तकनीकी क्रांति, सांस्कृतिक संक्रमण, सामाजिक असमानताएँ और वैचारिक द्वंद्व—इन सबके बीच शोध की भूमिका और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। शोध अब केवल अकादमिक अभ्यास न रहकर समाज को समझने, उसे दिशा देने और भविष्य के लिए वैचारिक आधार तैयार करने का माध्यम बन गया है। बोहल शोध मंजूषा इस तथ्य को स्वीकार करते हुए बहुविषयक, बहुभाषिक और समावेशी शोध को प्रोत्साहित करती रही है।

इस अंक में प्रकाशित शोध आलेख साहित्य, समाजशास्त्र, इतिहास, संस्कृति, शिक्षा और समकालीन विमर्शों से जुड़े विविध पक्षों को सामने लाते हैं। हिंदी साहित्य की परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व, लोक और शास्त्र की संवादधर्मिता, स्त्री विमर्श, दलित चेतना, पर्यावरणीय चिंताएँ तथा डिजिटल युग में साहित्य और पत्रकारिता की भूमिका जैसे विषयों पर प्रस्तुत आलेख न केवल ज्ञानवर्धक हैं, बल्कि विचारोत्तेजक भी हैं। इन आलेखों में शोधकर्ताओं की दृष्टि तथ्यात्मक प्रामाणिकता के साथ—साथ संवेदनात्मक गहराई को भी उजागर करती है।

बोहल शोध मंजूषा का उद्देश्य मात्र प्रकाशन नहीं, बल्कि शोध की गुणवत्ता, मौलिकता और सामाजिक उपयोगिता को प्राथमिकता देना है। आज जब शोध प्रकाशन की संख्या बढ़ी है, वहाँ गुणवत्ता, संदर्भबद्धता और नैतिकता पर विशेष ध्यान देना आवश्यक हो गया है। यह पत्रिका शोध की इसी जिम्मेदारी को समझते हुए पियर—रिव्यू की प्रक्रिया के माध्यम से गंभीर और प्रामाणिक लेखन को मंच प्रदान करती है।

यह भी उल्लेखनीय है कि यह पत्रिका नवोदित शोधार्थियों और अनुभवी विद्वानों—दोनों के लिए समान अवसर उपलब्ध कराती है। नव शोधकर्ताओं की ताजा दृष्टि और वरिष्ठ विद्वानों के अनुभव का संगम ही किसी भी अकादमिक परंपरा को समृद्ध बनाता है। इस अंक में यह संतुलन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

आज के दौर में जब भाषा, संस्कृति और मानवीय मूल्यों पर अनेक प्रश्नचिह्न खड़े किए जा रहे हैं, तब शोध पत्रिकाओं की भूमिका और भी जिम्मेदार हो जाती है। बोहल शोध मंजूषा भारतीय भाषाओं, विशेषकर हिंदी, के माध्यम से वैश्विक विमर्श में सार्थक हस्तक्षेप करने का प्रयास कर रही है। यह प्रयास न केवल भाषा की गरिमा को बनाए रखता है, बल्कि भारतीय चिंतन परंपरा को भी सशक्त करता है।

अंत में, हम सभी लेखकों, शोधकर्ताओं, समीक्षकों और पाठकों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं, जिनके सहयोग से बोहल शोध मंजूषा निरंतर अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर है। आशा है कि जनवरी 2026 का यह अंक पाठकों को चिंतन, संवाद और शोध के नए आयामों की ओर प्रेरित करेगा तथा अकादमिक जगत में अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज कराएगा।

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 10-16
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत में निर्वाचन नामावली के विशेष गहन पुनरीक्षण की प्रक्रिया, उपयोगिता एवं प्रभाव का अध्ययन

प्रोफेसर चन्द्रशेखर सिंह
समाजकार्य विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

सार (Abstract) :

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है, जहाँ प्रत्येक नागरिक को संविधान द्वारा मतदान का मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है। किंतु यह अधिकार तभी प्रभावी रूप से प्रयोग किया जा सकता है, जब नागरिक का नाम निर्वाचन नामावली में सही रूप में दर्ज हो। निर्वाचन नामावली में त्रुटियों, अपूर्णता और पुरानी प्रविष्टियों के कारण अनेक योग्य मतदाता मतदान से वंचित रह जाते हैं। इसी समस्या के समाधान हेतु भारत निर्वाचन आयोग समय–समय पर विशेष गहन पुनरीक्षण (Special Intensive Revision) अथवा विशेष सार पुनरीक्षण (Special Summary Revision) आयोजित करता है। इस शोध–लेख में इस प्रक्रिया के विधिक आधार, कार्यप्रणाली, सामाजिक प्रभाव, चुनौतियों तथा सुधार की संभावनाओं का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यह प्रक्रिया लोकतांत्रिक प्रणाली की शुचिता, पारदर्शिता और विश्वसनीयता बनाए रखने में अत्यंत सहायक है।

कुंजी शब्द : निर्वाचन नामावली, विशेष पुनरीक्षण, लोकतंत्र, निर्वाचन आयोग, मतदाता सूची, SSR

भूमिका (Introduction) :

लोकतंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि नागरिकों को अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रयोग का वास्तविक अवसर कितना मिलता है। भारत में आम चुनाव तथा राज्य स्तर के चुनावों में मतदान के अधिकार के प्रयोग के लिए सबसे पहली और अनिवार्य शर्त यह है कि नागरिक का नाम निर्वाचन नामावली में दर्ज हो। यदि नाम सूची में शामिल नहीं है, तो नागरिक कानूनी रूप से चाहे जितना भी पात्र हो, वह मतदान नहीं कर सकता। इसीलिए निर्वाचन नामावली की शुद्धता किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था की रीढ़ मानी जाती है। भारत जैसे विशाल, विविधतापूर्ण और जनसंख्या–बहुल देश में प्रवास, शहरीकरण, मृत्यु, विवाह, नाम परिवर्तन, उम्र पूरी होने जैसे अनेक कारक मतदाता सूचियों को प्रभावित करते हैं। इन परिवर्तनों के कारण सूची में मृत व्यक्तियों के नाम रह जाते हैं, कुछ लोगों के नाम दोहराव में आ जाते हैं, तो कई योग्य नागरिकों के नाम छूट जाते हैं। इस समस्या को दूर करने के लिए भारत निर्वाचन आयोग नियमित रूप से विशेष गहन पुनरीक्षण आयोजित करता है, जिसे अधिकांश राज्यों में Special Summary Revision (SSR) के नाम से भी जाना जाता है। यह प्रक्रिया केवल तकनीकी कार्यवाही भर नहीं है, बल्कि लोकतांत्रिक सशक्तिकरण का महत्वपूर्ण माध्यम है।

यह सुनिश्चित करती है कि प्रत्येक पात्र नागरिक का नाम सूची में शामिल हो और निर्वाचन प्रक्रिया निष्पक्ष एवं समावेशी बने। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है, जहाँ लोकतंत्र केवल एक राजनीतिक व्यवस्था नहीं, बल्कि नागरिक जीवन का अभिन्न अंग है। लोकतंत्र की मूल आत्मा "जन भागीदारी" में निहित है, और यह भागीदारी मुख्यतः मतदान के अधिकार के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। भारत के संविधान ने प्रत्येक वयस्क नागरिक (18 वर्ष या उससे अधिक आयु) को मतदान का अधिकार प्रदान किया है, किंतु इस अधिकार का प्रयोग तभी संभव है जब उस नागरिक का नाम निर्वाचन नामावली (Electoral Roll) में विधिवत रूप से दर्ज हो। यदि पात्र नागरिक का नाम मतदाता सूची में नहीं है, तो वह मतदान नहीं कर सकता—चाहे वह कानूनी रूप से कितना ही योग्य क्यों न हो। इस प्रकार निर्वाचन नामावली केवल दस्तावेज भर नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक अधिकारों का प्रवेश—द्वार है। भारत जैसे विशाल और विविधता से परिपूर्ण देश में जनसंख्या निरंतर परिवर्तित होती रहती है।

ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों या एक राज्य से दूसरे राज्य में पलायन, मृत्यु, विवाह के कारण नाम परिवर्तन, नागरिकों के निवास स्थान में बदलाव तथा नई आयु में प्रवेश करने वाले युवाओं की निरंतर बढ़ती संख्या— ये सभी कारक निर्वाचन नामावली को लगातार प्रभावित करते हैं। यदि इन परिवर्तनों को समय—समय पर अपडेट न किया जाए तो सूची में मृत व्यक्तियों के नाम बने रहते हैं, कुछ नागरिकों के नाम अलग—अलग स्थानों पर दोहराव के साथ दर्ज हो जाते हैं तथा कई योग्य नागरिकों के नाम सूचियों से छूट जाते हैं। इससे न केवल निर्वाचन प्रक्रिया की शुचिता प्रभावित होती है, बल्कि नागरिकों का चुनावों के प्रति विश्वास भी डगमगाता है। इन्हीं चुनौतियों का समाधान करने के लिए भारत निर्वाचन आयोग (Election Commission of India) द्वारा समय—समय पर विशेष गहन पुनरीक्षण (Special Intensive Revision) या विशेष सार पुनरीक्षण (Special Summary Revision – SSR) की प्रक्रिया चलाई जाती है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत मतदाता सूचियों का व्यापक स्तर पर परीक्षण, संशोधन, सत्यापन और अपडेट किया जाता है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सूची में केवल वही व्यक्ति शामिल हों जो कानूनी रूप से पात्र हैं, और किसी भी पात्र नागरिक का नाम छूटने न पाए। विशेष गहन पुनरीक्षण सामान्य पुनरीक्षण से अधिक व्यापक और सघन होता है, जिसमें Booth Level Officers (BLOs) घर—घर जाकर सत्यापन करते हैं, दावे—आपत्तियाँ आमंत्रित की जाती हैं और नागरिकों को शिविरों व डिजिटल माध्यमों के द्वारा आवेदन करने के अवसर प्रदान किए जाते हैं।

हाल के वर्षों में तकनीकी प्रगति ने इस प्रक्रिया को और अधिक पारदर्शी और सुलभ बनाया है। National Voters' Service Portal (NVSP), Voter Helpline App तथा ऑनलाइन आवेदन प्रणालियाँ ऐसे साधन हैं जिनके माध्यम से युवा मतदाता और शहरी वर्ग आसानी से पंजीकरण करवा सकते हैं। साथ ही, आयोग द्वारा जागरूकता अभियानों, विशेष मतदाता दिवस, स्कूल—कॉलेज आउटरीच कार्यक्रमों तथा महिला एवं हाशिये के समुदायों के लिए लक्षित पहलों के माध्यम से समावेशी मतदाता सूची तैयार करने का प्रयास लगातार जारी है फिर भी, यह प्रक्रिया अनेक चुनौतियों से मुक्त नहीं है। प्रवासी मजदूरों, असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों, दूरदराज और आदिवासी क्षेत्रों के निवासियों, तथा सामाजिक—आर्थिक रूप से वंचित समूहों तक इस अभियान की पहुँच अपेक्षाकृत कम रहती है।

डिजिटल साक्षरता का अभाव, दस्तावेजों की उपलब्धता से जुड़ी कठिनाइयाँ तथा प्रशासनिक संसाधनों की सीमाएँ इस प्रक्रिया को और जटिल बनाती हैं। इसके बावजूद यह निर्विवाद सत्य है कि विशेष गहन पुनरीक्षण

की प्रक्रिया भारतीय लोकतंत्र की पवित्रता, विश्वसनीयता और वैधता को बनाए रखने में केंद्रीय भूमिका निभाती है। यह केवल सूची सुधार का तकनीकी कार्य नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक अधिकार सुनिश्चित करने का सशक्त माध्यम है। सटीक और अद्यतन निर्वाचन नामावली ही निष्पक्ष, मुक्त एवं पारदर्शी चुनावों का आधार प्रदान करती हैकृऔर इसी आधार पर एक सशक्त लोकतांत्रिक समाज का निर्माण संभव होता है।

अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of the Study) :

इस शोध लेख के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

1. भारत में विशेष गहन/सार पुनरीक्षण की अवधारणा और प्रक्रिया का अध्ययन करना।
2. इसके विधिक एवं प्रशासनिक ढांचे को समझना।
3. निर्वाचन नामावली की शुद्धता पर इस प्रक्रिया के प्रभाव का विश्लेषण करना।
4. नागरिक सहभागिता और लोकतंत्र पर इसके सामाजिक प्रभावों की समीक्षा करना।
5. इस प्रक्रिया से जुड़ी चुनौतियों और सुधार के उपायों को चिह्नित करना।

शोध प्रश्न (Research Questions) :

1. क्या विशेष गहन पुनरीक्षण से निर्वाचन नामावली की शुद्धता और विश्वसनीयता में सुधार होता है?
2. क्या यह प्रक्रिया वंचित, ग्रामीण, प्रवासी और युवा मतदाताओं के पंजीकरण में सहायक सिद्ध होती है?
3. इस प्रक्रिया के क्रियान्वयन के दौरान किन–किन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है?
4. बेहतर परिणामों के लिए कौन–से सुधारात्मक कदम उठाए जा सकते हैं?

साहित्य समीक्षा (Literature Review) :

पिछले कुछ दशकों में चुनावी सुधारों पर किए गए अध्ययनों में यह पाया गया है कि निर्वाचन नामावली में त्रुटियाँ लोकतांत्रिक भागीदारी पर नकारात्मक प्रभाव डालती हैं। भारत निर्वाचन आयोग की वार्षिक रिपोर्टें, 'हैंडबुक फॉर इलेक्ट्रोरल रोल्स' तथा विभिन्न राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अध्ययनों में यह रेखांकित किया गया है कि Electoral Roll Purity लोकतांत्रिक चुनावों की वैधता का मूल आधार है।

अनेक अध्ययनों ने यह भी स्पष्ट किया है कि वंचित समूहों – जैसे ग्रामीण महिलाएँ, आदिवासी समुदाय, प्रवासी मजदूर और दिव्यांग नागरिक के नाम सूची में छूट जाने की संभावना अधिक होती है। ऐसे में विशेष पुनरीक्षण कार्यक्रम लोकतांत्रिक समावेशन के महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में उभरते हैं। निर्वाचन नामावली की शुद्धता एवं अद्यतनता लोकतांत्रिक व्यवस्था की आधारशिला मानी जाती है। इस विषय पर राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अनेक अध्ययनों ने यह स्पष्ट किया है कि यदि मतदाता सूची में त्रुटियाँ हों तो चुनाव प्रक्रिया की वैधता और नागरिकों का विश्वास दोनों प्रभावित होते हैं। भारत के संदर्भ में यह मुद्दा और भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि यहाँ जनसंख्या अधिक, सामाजिक–आर्थिक विषमता व्यापक तथा प्रवासन की दर उल्लेखनीय है। ऐसे में निर्वाचन नामावली के विशेष गहन/सार पुनरीक्षण (Special Intensive/Summary Revision) की आवश्यकता और प्रभावशीलता पर पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है। सबसे पहले भारत निर्वाचन आयोग (ECI) की वार्षिक एवं थीमैटिक रिपोर्टों में निर्वाचन नामावली की प्रक्रियाओं, चुनौतियों एवं सुधारों का विस्तार से उल्लेख मिलता है। आयोग द्वारा प्रकाशित Handbook for Electoral Rolls तथा संबंधित ऑपरेशनल गाइडलाइंस में यह बताया गया है कि मतदाता सूची की शुद्धता बनाए रखने हेतु नियमित पुनरीक्षण के साथ–साथ विशेष पुनरीक्षण भी अनिवार्य

है। इन दस्तावेजों में यह भी रेखांकित किया गया है कि घर–घर सत्यापन, दावे–आपत्तियों की सुनवाई एवं तकनीकी उपकरणों के उपयोग से सूची की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार होता है।

विभिन्न चुनाव सुधार समितियों और विशेषज्ञ समूहों ने भी निर्वाचन नामावली की शुद्धता पर व्यापक कार्य किया है। National Commission to Review the Working of the Constitution (2002) की रिपोर्ट में यह कहा गया कि चुनावी कदाचार को रोकने के लिए डुप्लीकेट, मृत एवं फर्जी प्रविष्टियों को हटाना अत्यंत आवश्यक है। इसी प्रकार Administrative Reforms Commission की रिपोर्टों में भी मतदाता सूचियों की शुद्धता को लोकतांत्रिक सुदृढ़ीकरण से सीधे जोड़ा गया है।

अकादमिक स्तर पर किए गए अध्ययनों में यह पाया गया है कि प्रवासी मजदूर, शहरी गरीब, महिलाएँ, आदिवासी एवं हाशिये के समुदाय अपेक्षाकृत अधिक संख्या में सूची से वंचित पाए जाते हैं। कुछ शोधों में यह भी उल्लेख है कि महिलाओं के नाम घरेलू स्थिति, विवाहोपरांत स्थान परिवर्तन तथा दस्तावेजों की कमी के कारण सूची से छूट जाते हैं। इस संदर्भ में विशेष पुनरीक्षण अभियान इन समूहों को सूची से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी निर्वाचन नामावली की शुद्धता पर अनेक शोध हुए हैं। International IDEA और ACE Electoral Knowledge Network की रिपोर्टों के अनुसार चुनावी सूचियों की गुणवत्ता चुनाव की विश्वसनीयता का प्राथमिक संकेतक मानी जाती है। कई देशों में इलेक्ट्रॉनिक डेटाबेस, बायोमेट्रिक सत्यापन तथा नागरिक रजिस्ट्रियों के साथ एकीकृत प्रणालियाँ अपनाई गई हैं। भारतीय संदर्भ में इन अनुभवों का उपयोग करते हुए EPIC (Electors Photo Identity Card) तथा डिजिटल रोल मैनेजमेंट सिस्टम विकसित किए गए हैं, जिससे त्रुटियों में कमी आई है।

विशेष गहन पुनरीक्षण पर उपलब्ध साहित्य यह भी इंगित करता है कि Booth Level Officer (BLO) की भूमिका प्रक्रिया की सफलता में निर्णायक होती है। BLO का स्थानीय समुदाय से जुड़ाव उन्हें सामाजिक–आर्थिक रूप से कमजोर समूहों तक पहुँचने में सक्षम बनाता है। अनेक राज्यों से प्राप्त अध्ययन यह दर्शाते हैं कि जहाँ BLO सक्रिय एवं प्रशिक्षित रहे, वहाँ दावे–आपत्तियों की संख्या बढ़ी और सूची की गुणवत्ता में सुधार हुआ। वहीं, संसाधनों की कमी, कार्यभार की अधिकता और प्रशिक्षण के अभाव में उनकी प्रभावशीलता कम हो जाती है।

तकनीकी दृष्टि से भी पर्याप्त शोध उपलब्ध है। विभिन्न अध्ययनों में NVSP पोर्टल, Voter Helpline App, ERONET एवं Garuda App को परिवर्तन के महत्वपूर्ण उपकरणों के रूप में देखा गया है। इनसे पारदर्शिता, ट्रैकिंग और डेटा–इंटीग्रेशन में सुधार हुआ है। फिर भी, डिजिटल साक्षरता के निम्न स्तर एवं इंटरनेट पहुँच की सीमाओं के कारण ग्रामीण व वंचित समुदायों में डिजिटल माध्यमों का उपयोग अभी भी सीमित है–यह बात कई शोधों में सामने आई है।

कई अध्ययन यह भी दर्शाते हैं कि मतदाता सूची की त्रुटियाँ केवल प्रशासनिक समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक समानता से जुड़ा प्रश्न भी हैं। यदि किसी समुदाय के नाम लगातार सूची से छूटते हैं तो वह चुनावी प्रक्रिया में कम प्रतिनिधित्व प्राप्त करता है। इसलिए विशेष पुनरीक्षण केवल डेटा–क्लीनिंग का कार्य नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक समावेशन का औजार है।

हालाँकि कुछ विद्वानों ने आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए यह इंगित किया है कि दावे–आपत्तियों

की समय सीमा, दस्तावेजों की अनिवार्यता, तथा जागरूकता की कमी कई बार पात्र नागरिकों को पंजीकरण से रोकती है। इसके अतिरिक्त शहरी क्षेत्रों में अस्थायी निवास व्यवस्था और ग्रामीण क्षेत्रों में भू–स्थानिक बिखराव भी चुनौती बनता है। कुछ अध्ययनों में यह भी पाया गया है कि विशेष पुनरीक्षण के दौरान राजनीतिक दलों की सक्रिय भागीदारी से कई बार प्रक्रिया पक्षपातपूर्ण होने का जोखिम भी उत्पन्न हो सकता है–हालाँकि निर्वाचन आयोग के निगरानी तंत्र और कानूनी व्यवस्थाएँ इस जोखिम को सीमित करने का प्रयास करती हैं।

विधिक आधार (Legal Framework) :

भारत में निर्वाचन नामावली से संबंधित प्रावधान मुख्यतः निम्नलिखित अधिनियमों और नियमों के तहत आते हैं–

- जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950
- जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951
- चुनाव आचरण नियम, 1961
- भारत निर्वाचन आयोग द्वारा जारी दिशा–निर्देश और परिपत्र।

इन प्रावधानों के अंतर्गत पात्रता आयु 18 वर्ष निर्धारित है। विशेष पुनरीक्षण के दौरान यदि कोई पात्र नागरिक अपना नाम दर्ज कराना चाहता है तो वह निर्धारित फॉर्म भरकर आवेदन कर सकता है। यह पूरी प्रक्रिया विधिक रूप से बाध्यकारी और पारदर्शी मानी जाती है।

विशेष गहन/सार पुनरीक्षण की प्रक्रिया (Process of Special Intensive / Summary Revision) :

विशेष पुनरीक्षण को चरणबद्ध तरीके से आयोजित किया जाता है–

1. ड्राफ्ट रोल का प्रकाशन :

निर्वाचन आयोग द्वारा संशोधित प्रारूप मतदाता सूची प्रकाशित की जाती है। इस सूची में वर्तमान प्रविष्टियाँ दर्शाई जाती हैं, ताकि नागरिक त्रुटियाँ देख सकें।

2. दावे एवं आपत्तियों की अवधि :

निर्धारित समयावधि में नागरिक निम्न फॉर्म के माध्यम से आवेदन करते हैं–

- Form–6 : नया नाम जोड़ने हेतु।
- Form–7 : गलत या मृत नाम हटाने हेतु।
- Form–8 : सुधार एवं परिवर्तन हेतु।

3. घर-घर सत्यापन :

Booth Level Officer (BLO) घर–घर जाकर सत्यापन करते हैं। यह चरण विशेष गहन पुनरीक्षण का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है।

4. विशेष शिविर दिवस :

मतदान केंद्रों पर विशेष शिविर लगाए जाते हैं ताकि नागरिक आसानी से आवेदन कर सकें।

5. दावों का निपटान :

आवेदनों की जांच कर उचित निर्णय लिया जाता है।

6. **अंतिम प्रकाशन :**

जांच और संशोधन के बाद अंतिम मतदाता सूची प्रकाशित की जाती है।

कार्यप्रणाली (Methodology) :

यह अध्ययन वर्णनात्मक (Descriptive Research) प्रकृति का है। इसमें मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों–जैसे सरकारी रिपोर्टें, नीतिगत दस्तावेज, अकादमिक लेख का उपयोग किया गया है। विषय–वस्तु विश्लेषण (Content Analysis) की विधि अपनाई गई है ताकि प्रक्रिया से जुड़े विभिन्न पहलुओं की समग्र समझ विकसित की जा सके।

भारत के संदर्भ में विशेष परिप्रेक्ष्य :

भारत में SSR सामान्यतः हर वर्ष आयोजित होता है। इसके लिए किसी एक निश्चित तिथि (जैसे–1 जनवरी) को कट–ऑफ डेट घोषित किया जाता है। इस दिन या उससे पहले 18 वर्ष की आयु पूर्ण करने वाले नागरिक आवेदन कर सकते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में BLO की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है। वहीं शहरी क्षेत्रों में झुग्गी बस्तियों, प्रवासी बस्तियों और नए बसे इलाकों पर विशेष फोकस दिया जाता है। कई राज्यों में कॉलेजों और स्कूलों के माध्यम से युवा मतदाताओं को जोड़ने के अभियान चलाए जाते हैं।

मुख्य निष्कर्ष (Indicative Findings) :

अध्ययन से निम्नलिखित बिंदु उभरकर सामने आते हैं–

1. **मतदाता सूची की शुद्धता बढ़ती है :**

   मृत या स्थानांतरित व्यक्तियों के नाम हटने से डुप्लीकेसी घटती है।

2. **नए युवा मतदाताओं का बड़े पैमाने पर पंजीकरण :**

   18 आयु वर्ग की भागीदारी में वृद्धि होती है।

3. **तकनीक की मदद से पारदर्शिता बढ़ी है :**

   ऑनलाइन पोर्टल और मोबाइल ऐप्स ने आवेदन प्रक्रिया सरल बना दी है।

4. **चुनाव प्रक्रिया में नागरिकों का विश्वास बढ़ता है :**

   सटीक और अद्यतित सूची लोकतंत्र की वैधता को मजबूत करती है।

चुनौतियाँ (Challenges) :

यद्यपि यह प्रक्रिया अत्यंत उपयोगी है, परंतु कुछ चुनौतियाँ लगातार बनी हुई हैं–

- दूरदराज, पहाड़ी और आदिवासी क्षेत्रों तक पहुँच की कठिनाई।
- प्रवासी मजदूरों और अस्थायी निवासियों का पंजीकरण।
- महिलाओं, विशेषकर ग्रामीण महिलाओं की कम सहभागिता।
- डिजिटल साक्षरता की कमी।
- दस्तावेज संबंधी जटिलताएँ।
- मानव संसाधन और प्रशासनिक दबाव।

इन चुनौतियों के कारण कई बार पात्र नागरिकों के नाम छूट जाते हैं, जबकि कुछ स्थानों पर डुप्लीकेट

प्रविष्टियाँ भी रह जाती हैं।

सामाजिक एवं लोकतांत्रिक प्रभाव (Social & Democratic Impact) :

विशेष गहन पुनरीक्षण का समाज और लोकतंत्र पर अत्यंत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है–

- मतदाता सूची की शुद्धता से चुनावों की विश्वसनीयता बढ़ती है।
- वंचित वर्गों के नाम जुड़ने से समतामूलक लोकतंत्र सशक्त होता है।
- युवा नागरिकों में राजनीतिक भागीदारी का भाव बढ़ता है।
- नागरिक अधिकारों के प्रति जागरूकता में वृद्धि होती है।

इस प्रकार यह प्रक्रिया केवल प्रशासनिक कदम नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक सशक्तिकरण का उपकरण है।

सुझाव (Recommendations) :

अध्ययन के आधार पर कुछ महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत हैं–

1. डिजिटल और ऑफलाइन दोनों माध्यम समानांतर चलें।
2. स्कूल–कॉलेजों में मतदाता शिक्षा कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ।
3. BLOs के लिए नियमित प्रशिक्षण और प्रोत्साहन प्रणाली विकसित की जाए।
4. हाशिये के समुदायों के लिए विशेष अभियान चलाए जाएँ।
5. बहुभाषीय फॉर्म और सरल भाषा का उपयोग हो।
6. शिकायत निवारण तंत्र को और मजबूत बनाया जाए।

निष्कर्ष (Conclusion) :

अंततः यह कहा जा सकता है कि विशेष गहन/सार पुनरीक्षण भारतीय लोकतंत्र की जीवनरेखा है। यह प्रक्रिया सुनिश्चित करती है कि प्रत्येक पात्र नागरिक का नाम निर्वाचन नामावली में सम्मिलित हो और कोई भी व्यक्ति केवल प्रशासनिक त्रुटियों के कारण मतदान के अपने संवैधानिक अधिकार से वंचित न रह जाए। विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में भारत के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि मतदाता सूचियाँ सटीक, अद्यतन और समावेशी हों। विशेष पुनरीक्षण इस लक्ष्य की प्राप्ति का सशक्त माध्यम है। यदि इस प्रक्रिया को और अधिक तकनीकी, पारदर्शी, सहभागी एवं संवेदनशील बनाया जाए, तो भारतीय लोकतंत्र की मजबूती और भी बढ़ेगी।

संदर्भ :–

1. Election Commission of India. (Various Years). Handbook for Electoral Rolls.
2. Election Commission of India. (2023). Annual Report.
3. Government of India. (1950). Representation of the People Act, 1950.
4. Government of India. (1951). Representation of the People Act, 1951.
5. Various policy papers and academic articles on electoral reforms in India.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 17-21
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिंदी उपन्यासों में वृद्ध जीवन का आर्थिक संदर्भ

पूजा गुप्ता
शोधार्थी, हिंदी विभाग
वर्द्धमान विश्वविद्यालय।

समकालीन[1] हिंदी उपन्यासों में वृद्ध जीवन का मनोवैज्ञान एक गहन और बहुआयामी विषय है। आज के सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश में वृद्धावस्था केवल शारीरिक दृष्टि से नहीं, बल्कि मानसिक और भावनात्मक दृष्टि से भी विशिष्ट चुनौतियों और संवेदनाओं का दौर है। वृद्ध व्यक्तियों का जीवन अक्सर अकेलापन, असुरक्षा, निराशा और सामाजिक उपेक्षा जैसी स्थितियों से प्रभावित होता है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में वृद्ध जीवन का मनोवैज्ञान को निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर प्रस्तुत किया गया है : वृद्ध जनों के मनोभाव, उपदेशात्मका बातों में रूची, गाँव की मिट्टी से अनुराग व आत्मीयता, मृत्युबोध और जीने की अटूट आकांक्षा, बढ़ा–चढ़ा कर अतीत की बातों को रूपायित करना, शारीरिक दुर्बलता एवं स्वास्थ की चिंता, एकाकीपन और सुरक्षा की चिंता आदि।

उपन्यासकार वृद्ध पात्रों के मनोवैज्ञानिक अनुभवों के माध्यम से जीवन के व्यापक और दार्शनिक प्रश्नों को भी उद्‌घाटित करते हैं। मृत्यु का भय, जीवन की सीमितता, व्यर्थता की अनुभूति और स्वयं की पहचान की पुनः खोज ये सभी पहलू मनोवैज्ञानिक यथार्थ का हिस्सा हैं। कई बार यह मानसिक संघर्ष और आत्मपरीक्षण ही उपन्यास की कथावस्तु को गहन बनाता है। वृद्ध पात्रों के आंतरिक संवाद, उनकी स्मृतियाँ और भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ उपन्यास में वृद्ध जीवन की जटिलता और गहराई को उजागर करती हैं। इसके अलावा, समकालीन हिंदी उपन्यासों में वृद्ध जीवन का मनोवैज्ञानिक यथार्थ[2] केवल नकारात्मक पहलुओं तक सीमित नहीं है। कई उपन्यासों में यह भी दिखाया गया है कि वृद्धावस्था में व्यक्ति अपनी आंतरिक शक्ति, धैर्य, जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण और अनुभवजन्य बुद्धिमत्ता का सहारा लेकर मानसिक संतुलन बनाए रखता है। उपन्यासकार इस अवस्था में अनुभवी दृष्टिकोण, आत्मसाक्षात्कार और जीवन की अंतर्निहित सुंदरता को भी प्रदर्शित करते हैं।

समकालीन हिंदी उपन्यासों में वृद्ध जीवन की दशा और दिशा का यथार्थपरक चित्रण विशेष महत्त्व रखता है। वृद्धावस्था जीवन का अंतिम पड़ाव है, जहाँ व्यक्ति अपने जीवन–भर के अनुभव, सफलताओं और असफलताओं के आधार पर आत्ममूल्यांकन करता है। किंतु यह आत्ममूल्यांकन अधिकांशतः निराशाजन्य अतृप्त भावनाओं में परिणत हो जाता है, क्योंकि जीवन की अनेक इच्छाएँ, अपेक्षाएँ और आकांक्षाएँ अधूरी रह जाती हैं। आधुनिक सामाजिक संरचना, परिवार का विघटन, आर्थिक असुरक्षा, भावनात्मक रिक्तता और उपेक्षा की पीड़ा इस

स्थिति को और गहरा बना देती है।

समकालीन हिंदी उपन्यासों में 'वृद्ध जीवन के मनोभाव और बदलते रिश्ते' एक अत्यंत संवेदनशील और सामाजिक रूप से प्रासंगिक विषय के रूप में उभर कर सामने आया है। आज का हिंदी उपन्यास केवल सामाजिक यथार्थ का दस्तावेज नहीं रह गया है, बल्कि वह व्यक्ति की भीतरी दुनिया, उसकी भावनाओं, एकाकीपन और आत्म–संघर्षों का भी सशक्त माध्यम बन गया है। वृद्ध जीवन के संदर्भ में यह विशेष रूप से स्पष्ट होता है, जहाँ लेखकों ने वृद्धावस्था की व्यथा, अनुभव, उपेक्षा, गरिमा और आत्म–सम्मान के द्वंद्व को गहराई से उकेरा है। समकालीन समाज में संयुक्त परिवारों के विघटन, बढ़ते नगरीकरण, आर्थिक प्रतिस्पर्धा और पीढ़ियों के बीच संवादहीनता ने बुजुर्गों की स्थिति को जटिल बना दिया है। पहले जहाँ वृद्ध परिवार के केंद्र में होते थे, वहीं अब वे धीरे–धीरे हाशिए पर जा रहे हैं। हिंदी उपन्यासों में इस बदलते सामाजिक परिदृश्य का सशक्त चित्रण मिलता है। निर्मल वर्मा, गोविंद मिश्र, सूरज सिंह नेगी और काशीनाथ सिंह जैसे लेखकों ने वृद्ध पात्रों को केवल स्मृति या प्रतीक के रूप में नहीं, बल्कि अनुभवशील सामाजिक इकाई के रूप में प्रस्तुत किया है। बुजुर्ग पात्र अपने बच्चों के बदलते व्यवहार, रिश्तों में घटती आत्मीयता और समाज की उपेक्षा से आहत होते हैं। फिर भी, उनके भीतर जीवन के प्रति आशा की भावना जीवित रहती है।

'रेहन पर रग्घू' उपन्यास का प्रमुख पात्र और मुखिया रघुनाथ प्रसाद की स्थिति अत्यंत सोचनीय है। उनके प्रति संतानों का लगाव उदासीन है। उनका एक बेटा नौकरी करता है जबकि दूसरा पुत्र बेरोजगारी में भी उनसे दूरी बनाये रखता है। रघुनाथ अपने आप से इतने पीड़ित है कि अपहरणकर्ता को स्वंय फिरौती देकर अपहरण करने का सुझाव देते हुए कहते हैं, "मुझे ले चलो! अगवा करो मुझे और फिरौती माँगों दो लाख! कौन देगा तुम्हारे जैसे सड़े गले बुड्ढे का दो लाख? सिर्फ दो लाख इसलिए कि रकम नहीं अखरेगी देने में। मिल भी जाएगी और हत्या से भी बच जाओगे?"[3]

मस्तराम कपूर के उपन्यास 'विषय–पुरुष' में समकालीन भारतीय समाज में पारिवारिक संरचना, विवाह की परंपराओं और बदलते सामाजिक मूल्यों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। लेखक यह स्पष्ट किया है कि आज का समाज पहले जैसा संयुक्त परिवार प्रधान समाज नहीं रहा। पहले विवाह केवल दो व्यक्तियों का नहीं, दो परिवारों का मिलन माना जाता था। विवाह के बाद स्त्री ससुराल के हर सदस्य के साथ तालमेल बिठाने की जिम्मेदारी निभाती थी। सास–ससुर, देवर, देवरानी, जेठ और जेठानी जैसे रिश्तों की एक विस्तृत श्रृंखला स्त्री के जीवन का अनिवार्य हिस्सा थी। वह इन संबंधों के बीच अपने को समर्पित करके परिवार की एकता बनाए रखती थी। लेकिन आज के समाज में यह तस्वीर बदल चुकी है। उपन्यासकार ने इस तथ्य पर आलोकपात करते हुए लिखा है, "लड़के को शादी करनी ही है चाहे वह हमारी पसंद की लड़की से करे या अपनी पसंद की लड़की से। शादी के बाद वह माँ–बाप के साथ नहीं रहेगा। वह रहना भी चाहे तो लड़की नहीं रहने देगी। हमारा समाज अब वह पुराना समाज नहीं रह गया है जिसमें लड़की सास–ससुर, देवर–देवरानी, जेठ–जेठानी वाले परिवार में अपने को एडजस्ट कर ले। उसे आजादी चाहिए। उसे ही नहीं, लड़के को भी आजादी चाहिए। हमारे जाने–अनजाने समाज बदल गया है।"[4] लेखक के अनुसार, अब नई पीढ़ी अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सर्वोपरि मानती है। लड़का हो या लड़की–दोनों ही 'आजादी' को अपने जीवन का आवश्यक तत्व मानने लगे हैं।

हृदयेश ने भी अपने चर्चित उपन्यास 'चार दरवेश' में भारतीय समाज में पीढ़ियों के बीच घटते हुए सम्मान,

संस्कार और अनुशासन की भावना पर तीखा व्यंग्य प्रस्तुत किया है। पहले के समय में संतान अपने माता–पिता के प्रति श्रद्धा और सेवा–भाव रखती थी। बेटा सुबह उठकर सबसे पहले माता–पिता के चरण स्पर्श कर उनका आशीर्वाद लेता था। यह केवल परंपरा नहीं, बल्कि गहरे संस्कारों और सम्मान की अभिव्यक्ति थी। माता–पिता के लिए ताजा पानी निकालना, उनके छोटे–बड़े कार्य करना, उनके सामने संयमित व्यवहार रखना–ये सब उस समय के पारिवारिक अनुशासन और स्नेह के प्रतीक थे। पहले बेटा अपने पिता के सामने बीड़ी–सिगरेट पीने का साहस नहीं करता था। यह केवल डर नहीं था, बल्कि पिता के प्रति मर्यादा और आदर का भाव था। आज वही बेटा अपने पिता की जलती बीड़ी से अपनी बीड़ी सुलगाता है–यह चित्र अत्यंत प्रतीकात्मक है। यह न केवल सम्मान की कमी दर्शाता है, बल्कि उस पीढ़ीगत अंतर और नैतिक पतन की ओर भी संकेत करता है, जहाँ संतानें अब परंपरा, संस्कार और अनुशासन की सीमाएँ पार कर चुकी हैं। हृदयेश के शब्दों में, "जब तक माता–पिता जीवित थें, वह खाट से उठकर सबसे पहले उनके पाँव छूते थे। कुल्ला–दातौन के लिए कुएँ से ताजा पानी निकाल कर रख देते थें। पहले बेटा बाप के सामने बीड़ी–सिगरेट नहीं पीता था जबकि आज बेटा बाप की जलती बीड़ी से बीड़ी सुलगाता है।"[5] इस प्रकार हम देखते है कि उपन्यासकार हृदयेश ने भारतीय समाज में बदलते पारिवारिक मूल्यों के यथार्थ को प्रस्तुत किया है।

चित्रा मुद्‌गल के उपन्यास 'गिलिगडु'[6] में वृद्ध जनों की आर्थिक असुरक्षा और मानसिक उपेक्षा के यथार्थ को अत्यंत संवेदनशीलता से उजागर करता है। सेवानिवृत्ति के बाद व्यक्ति का संसार अचानक सिमट जाता है–जहाँ कभी नियमित वेतन के सहारे आत्मनिर्भरता और गरिमा थी, वहाँ अब पेंशन की तारीखघें की प्रतीक्षा और खर्चों की चिंता शेष रह जाती है। यह बदलाव केवल आर्थिक नहीं, बल्कि मानसिक स्तर पर भी गहरी चोट पहुँचाता है। दवा, किराया, बिजली और राशन जैसे दैनिक व्यय जीवन की प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं, जिनके पूरा होने के बाद वृद्धों के पास स्वयं पर खर्च करने के लिए कुछ नहीं बचता। उम्र के साथ शरीर कमजोर होता है, चिकित्सा खर्च बढ़ता है, पर आय का स्रोत सीमित रह जाता है। यह आर्थिक असुरक्षा उन्हें दूसरों पर निर्भर बनाती है। सबसे अधिक पीड़ा तब होती है जब वे अपने ही बच्चों के लिए 'बोझ'[7] बन जाते हैं। वह घर, जिसे उन्होंने अपने श्रम और प्रेम से बसाया था, अब उनके लिए पराया–सा हो जाता है। लेखिका लिखती है, "रिटायरमेंट के बाद की दुनिया कितनी संकरी हो जाती है, इसका अंदाजा किसी युवा को नहीं हो सकता। तनख्वाह की जगह अब पेंशन की तारीखद्वें आने लगती हैं।दवा, बिजली, किराया और राशन के बाद कुछ बचता ही नहीं।उम्र के साथ जरूरतें घटती हैं पर खर्च बढ़ जाते हैं। बच्चों के लिए अब वे 'बोझ' बन गए हैं। अपने ही घर में वे मेहमान–से होकर रह गए हैं।"[8]

समकालीन हिंदी उपन्यासों में वृद्ध व्यक्तियों की यह जातिगत चेतना और उसका परिणाम स्पष्ट रूप से चित्रित किया गया है। वृद्धावस्था में व्यक्ति का मानसिक स्वरूप अधिक रूढ़िवादी हो जाता है। जो मूल्य और संस्कार उन्होंने युवावस्था में देखे–सुने होते हैं, वही उनके जीवन दृष्टिकोण का हिस्सा बन जाते हैं। अतः जातिगत श्रेष्ठता या जातिगत हीनता की सोच उनके व्यवहार और पारिवारिक निर्णयों में झलकती है। जातिगत अभिमान के कई रूप समकालीन उपन्यासों में देखे जा सकते हैं–कृष्णा सोबती के उपन्यास 'समय सरगम' में भारतीय समाज में पीढ़ियों के बीच दृष्टिकोण के गहरे अंतर को उजागर करता है, विशेषतः विवाह और जातिगत मर्यादा के संदर्भ में। लेखिका के शब्दों में, "घर के बुजुर्गों के लिए विवाह केवल दो व्यक्तियों का नहीं, दो कुलों

का मेल था। वे कहते—'हमारे खानदान में जात की मर्यादा सबसे ऊँची है।'[9] जब बच्चों ने अपनी पसंद बताई, तो बुजुर्गों के चेहरे सख्त हो गए। 'हमारी रग में जो लहू बहता है, उसे मिलावट नहीं चाहिए।' उनकी दृष्टि में प्रेम क्षणिक था, पर जात स्थायी पहचान। नई पीढ़ी के लिए यह आग्रह दीवार जैसा था, पर पुराने लोग उसे अपनी अस्मिता का किला मानते थे।"[10] उद्धरण में वृद्धों की जाति आग्रह की भावना उनके भय, असुरक्षा और सांस्कृतिक पहचान की रक्षा की इच्छा से जुड़ी है, जो बदलते समय के सामने खुद को टिकाए रखने का प्रयास करती है।

वृद्धावस्था जीवन का एक ऐसा पड़ाव है, जिसमें शारीरिक क्षमताओं में कमी, स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का बढ़ना और मानसिक असुरक्षा के भाव सामान्यतः स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। रमेशचन्द्र शाह के 'कथा सनातन' में वृद्धावस्था के शारीरिक क्षय और उससे उपजने वाली आत्मिक पीड़ा का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। लेखक ने लिखा है, 'जहाँ उठते ही सुबह–सुबह पूरे छह मील का फर्राटा लगाते थे, वहाँ अब मुश्किल डेढ़ मील चल पाते हैं। तो क्या अब इतने से भी गए? बुढ़ापा क्या इसी को कहते हैं? यह जरा–सी चढ़ाई में हाँफने लगना? पर यह तो चढ़ाई भी नहीं, उतार है सीधा। चलो, सीधा नहीं, उबड़–खाबड़ ही सही। परन्तु... इससे क्या? हजारों बार रौंदा होगा यह रास्ता उन्होंने–इन्हीं–इन्हीं पाँवों से। आँखों पै पट्टी भी बाँध दे कोई, तो भी ये पाँव... अपने जाने–पहचाने रास्ते को आप से आप ढूँढ़ लेंगे–खुद अपनी आँख बनके।'[11]

'आखिरी मंजिल' में भी वृद्धावस्था के शारीरिक क्षय, मानसिक असुरक्षा और जीवन के ढलते पड़ाव की सूक्ष्म अनुभूति को व्यक्त किया गया है। यहाँ एक वृद्ध व्यक्ति अपने शरीर में हो रहे परिवर्तनों को लेकर निरंतर शंका और चिंता से घिरा रहता है। कभी दिल की तेज धड़कन, कभी पीठ का दर्द, कभी गठिया की पीड़ा–ये सब उसे अपने स्वास्थ्य को लेकर अस्थिर बनाए रखते हैं। वह बार–बार सोचता है कि कहीं कोई गंभीर बीमारी तो नहीं, परंतु हर बार दर्द अपने आप ठीक हो जाने पर वह भूल भी जाता है। उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है, 'इन दिनों उन्हें अपने शरीर को लेकर काफी शक होने लगा था। कभी लगता कि दिल कुछ ज्यादा तेजी से धड़क रहा है। ऐसा अक्सर बिस्तर पर लेटे हुए महसूस होता था। तब वे करवट बदल लेते और दिल सम् पर आ जाता। कभी पीठ में दर्द होता और उन्हें सन्देह होता कि कैन्सर तो नहीं है। जब तक वे डॉक्टर के पास जाने की सोचते, दर्द ठीक हो जाता था और वे भूल जाते थे। दायें घुटने में गठिया पुराना और पुश्तैनी था। जब तक खूब ठण्ड रही, वे घुटनों के ऊनी मोजे पहनते रहे और ठीक रहे। ठंडी उतरी तो उन्होंने मोजे उतार दिये। उन्हें लगा कि घुटनों में जान नहीं बची जैसे घुटनों की जान उनके मोजों में हो। पता नहीं यह इत्तफाक था या नहीं कि जिस रात उन्होंने अपनी लम्बी कविता की अन्तिम पंक्ति लिखी, उसी के बाद अगली सुबह ठण्ड कम होने लगी। वह पहली सुबह थी जब उन्होंने खिड़की के बाहर गुलमोहर को नंगा होते देखा था।'[12]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी उपन्यास वृद्ध व्यक्तियों की शारीरिक दुर्बलता और स्वास्थ्य चिंता को उनके मानसिक और सामाजिक जीवन के संदर्भ में प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं। यह चित्रण पाठक को न केवल वृद्धावस्था के शारीरिक पहलुओं की जानकारी देता है, बल्कि मानसिक असुरक्षा, आर्थिक निर्भरता और सामाजिक असमानताओं की भी चेतना कराता है। इस दृष्टि से यह साहित्य न केवल मनोरंजन का साधन है, बल्कि समाज और परिवार में वृद्ध व्यक्तियों की स्थिति के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने का एक प्रभावशाली माध्यम भी है।

संदर्भ :

1. वर्मा, रामचंद्र (संपा.), बृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 2012 ई. पृष्ठ संख्या–557
2. वर्मा, धीरेंद्र (संपा.), हिंदी साहित्य कोश, भाग–2, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, संस्करण–2020 ई., पृष्ठ संख्या–474
3. सिंह, काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, संस्करण–2016 ई. पृष्ठ संख्या–47
4. हृदयेश, चार दरवेश, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, संस्करण–2011, पृष्ठ संख्या–25–26
5. मुद्गल, चित्रा, गिलिगडु, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2014, पृष्ठ संख्या –78
6. वही, पृष्ठ संख्या–112
7. वही, पृष्ठ संख्या–113
8. वही, पृष्ठ संख्या–116
9. सोबती, कृष्णा, समय सरगम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2012, पृष्ठ संख्या–71
10. वही, पृष्ठ संख्या–112
11. शाह, रमेशचंद्र, कथा सनातन, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, संस्करण–2016, पृष्ठ संख्या–19
12. वर्मा, रवींद्र, अंतिम अरण्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2005 ई., पृष्ठ संख्या–46

ईमेल– guptapuja20031992@gmail.com

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 22-26
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी. एड. पाठ्यचर्या के प्रति प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन

सुरेश कुमार मौर्य
सहायक आचार्य
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ, शाहपुरा बाग, आमेर रोड़, जयपुर (राज.)

सारांश –

चार वर्षीय एकीकृत कार्यक्रमों की सार्थकता देखने के लिए अनेक अध्ययन किये गये। मुख्य निष्कर्ष यह है कि इन कार्यक्रमों द्वारा तैयार अध्यापक परम्परागत एक वर्षीय बी.एड. कार्यक्रम द्वारा तैयार अध्यापकों से बहुत बेहतर होते हैं। अब राज्य सरकारों द्वारा भी चार वर्षीय एकीकृत अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम का आरम्भ किया गया है। अतः चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी. एड. पाठ्यचर्या के प्रति प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन करना आवश्यक है। प्रस्तुत शोध कार्य का उद्देश्य चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी. एड. पाठ्यचर्या के प्रति बी.ए., बी.एड. के प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन करना। चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी. एड. पाठ्यचर्या के प्रति बी.एससी., बी. एड. के प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन करना। प्रस्तुत शोध कार्य में 100 प्रशिक्षणार्थियों को लिया गया है। दत्तों के विश्लेषण हेतु शून्य परिकल्पनाओं का निर्माण कर टी–परीक्षण सांख्यिकी का प्रयोग किया गया है। शोध के निष्कर्ष में पाया कि चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी. एड. पाठ्यचर्या के प्रति बी.ए., बी.एड. के प्रशिक्षणार्थियों (छात्र एवं छात्राओं) की अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी. एड. पाठ्यचर्या के प्रति बी.एससी., बी.एड. के प्रशिक्षणार्थियों (छात्र एवं छात्राओं) की अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

मुख्य शब्द – चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी. एड. पाठ्यचर्या, प्रशिक्षणार्थी, अभिवृत्ति।

प्रस्तावना –

अध्यापक शिक्षा एक व्यापक प्रक्रिया है, जिसे किसी कौशल या कार्य के निष्पादन तक सीमित नहीं किया जा सकता। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति में निहित आतंरिक क्षमताओं का विकास समग्र रूप से करने के साथ ही वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय दृष्टि या सन्दर्भ में उपयोगी तथा संसाधन सम्पन्न व्यक्तित्व के लिए प्रयत्न किया जाता है।

हमारी शिक्षा की सबसे बड़ी समस्या है, इसके द्वारा बच्चों पर लादा गया बोझ। यह बोझ पाठ्यचर्या की असंबद्ध संरचना का परिणाम तो है ही। हमारी शिक्षा व्यवस्था में जहाँ बच्चे को पर्याप्त जगह देने की बात स्वीकार की जा रही है, वहीं शिक्षकों को अभी भी उचित जगह नहीं दी जा रही है।

जिससे बच्चों के जीवन और उनकी संस्कृति से कोई मतलब नहीं होता। ये बच्चों से ठीक से जुड़ नहीं पाते हैं तथा न ही बच्चों की जरूरत के अनुसार अपनी तरफ से रचनात्मक एवं जरूरी पहल करते हैं। हमारी शिक्षा व्यवस्था में जहां बच्चे को पर्याप्त जगह देने की बात स्वीकार की जा रही है शिक्षक का सबलीकरण इस हद तक तो जरूरी है कि वे बच्चे के द्वारा घर एवं परिवेश में सीखे गये अनुभवों को पहचान तथा महत्व दे सके तथा तद्नुसार उसे खोजने, सीखने एवं विकसित होने का अवसर प्रदान कर सकें। स्कूली शिक्षा में परिवर्तन की प्रक्रिया में शिक्षक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसी सन्दर्भ में चट्टोपाध्याय आयोग ने कहा कि "यदि स्कूली शिक्षकों से उम्मीद की जाती है कि वे पढ़ाने के उपागम में क्रांति लाएँ, तो वह क्रांति पहले 'शिक्षा कॉलेजों' में होनी चाहिए।"

शिक्षक–शिक्षा को हमारे देश में शुरू हुए 100 साल से ऊपर हो गए। शिक्षकों पर राष्ट्रीय आयोग सम्बन्धी चट्टोपाध्याय समिति रिपोर्ट (1983–85) के अनुसार लगभग सभी शिक्षण महाविद्यालयों और प्रशिक्षण संस्थानों में जो मिलता है। वह शोचनीय रूप से अपर्याप्त है। अगर शिक्षक शिक्षा को नये शिक्षक की भूमिका और दायित्वों के सन्दर्भ में प्रासंगिक बनाना है तो माध्यमिक स्तर के शिक्षक के प्रशिक्षण की अवधि 12वीं के बाद कम से कम 5 वर्ष की होनी चाहिए। इसकी आवश्यकता बताते हुए आयोग ने लिखा है कि इससे सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा को एक समान भाव से आगे चलाया जा सकता है। आयोग ने सिफारिश की कि आरम्भ में हम 4 सालों की एकीकृत शिक्षा का कार्यक्रम आरम्भ कर सकते हैं। जिसे सावधानीपूर्वक तैयार किया जाना चाहिए।

चार वर्षीय एकीकृत कार्यक्रमों की सार्थकता देखने के लिए अनेक अध्ययन किये गये। मुख्य निष्कर्ष यह है कि इन कार्यक्रमों द्वारा तैयार अध्यापक परम्परागत एक वर्षीय बी.एड. कार्यक्रम द्वारा तैयार अध्यापकों से बहुत बेहतर होते हैं। इन कार्यक्रमों की प्रभावशीलता में अन्तर के कई कारण हो सकते हैं जैसे मेधावी विद्यार्थियों का चुनाव, अधिक अवधि, एकीकृत पाठ्यचर्या के साथ–साथ विषय वस्तु को पढ़ना और शिक्षण की विधियों को सीखना, आदि। ठोस संकल्पित आधार विकसित देशों में इनकी सार्थकता तथा अनुभवों के ठोस प्रमाण तथा अनेक विशेषज्ञ समितियों की सिफ़ारिशों के बावजूद ये नवाचार मुख्य धारा से जुड़ने के बजाय सिर्फ, एन.सी.ई. आर.टी. के चार शिक्षा संस्थानों तक ही सीमित रह गये। अब राज्य सरकारों द्वारा भी चार वर्षीय एकीकृत अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम का आरम्भ किया गया है। अतः चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी. एड. पाठ्यचर्या के प्रति प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन करना आवश्यक है।

समस्या का औचित्य –

यह तथ्य सर्वविदित है कि बालक के मानसिक एवं चारित्रिक विकास की जिम्मेदारी प्रभावशील प्रशिक्षण योजना के अभाव में अध्यापक को निभाना असम्भव है। अध्यापक का व्यवसाय अत्यधिक पेचीदा है और उसमें सफलता के लिए एक व्यक्ति को विशेष प्रकार की दक्षता प्राप्त करना आवश्यक है। प्रशिक्षण संस्थाओं में उस व्यावसायिक कुशलता प्रदान करने की अवधि एक या अधिक से अधिक दो वर्ष रखी गई है। यह सोचने का विषय है कि इतनी अल्प अवधि में प्रशिक्षण के आधार पर अध्यापक, एक डॉक्टर, इंजीनियर अथवा अन्य उच्च व्यवसायों से किस प्रकार व्यावसायिक दक्षता के आधार पर अपनी तुलना कर सकता है। प्रशिक्षण की इतनी अल्प अवधि निर्धारित करने के पीछे शायद यह दृष्टिकोण रहा है कि अध्यापक बनने के लिए केवल दो बातों का होना जरूरी है– एक विषय–सामग्री की जानकारी, दूसरे पठन विधि का ज्ञान। विषय–वस्तु की जानकारी प्रशिक्षणार्थी

अपने विद्यार्थी काल में कर लेता है तथा पठन विधि के ज्ञान के लिए प्रशिक्षण संस्थाओं में एक वर्ष की अवधि पर्याप्त मान ली गई है परन्तु समाज द्वारा स्कूल में अध्यापक के सफल उत्तरदायित्व को निभाने एंव प्रशिक्षण संस्थाओं द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर अध्यापक से जो व्यावसायिक दक्षता अपेक्षित है, उसे एक अथवा दो वर्ष की अवधि में प्रदान करना न केवल दुष्कर बल्कि असम्भव कार्य प्रतीत होता है।

परन्तु अब सरकार द्वारा बी.एड. पाठ्यक्रम चार वर्षीय कर दिया गया है। अब 12वीं के बाद चार वर्षीय बी. एड. में दाखिला एम.बी.बी.एस. एवं इंजीनियरिंग की तर्ज पर होगा। अब तक स्नातक उत्तीर्ण करने के बाद सरकारी–गैर सरकारी स्कूलों में अध्यापन के लिए हम दो वर्षीय बी. एड. का विकल्प चुनते आ रहे थे लेकिन अब विद्यार्थियों को 12वीं के बाद ही यह विकल्प लेना होगा कि वह शिक्षा के क्षेत्र में कॅरियर बनाना चाह रहे है। कला एवं विज्ञान संकाय में 12वीं उत्तीर्ण करने के साथ ही छात्र–छात्राओं को यदि वह शिक्षक बनना चाहते हैं तो चार वर्षीय एकीकृत अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में सीधे ही दाखिला लेना होगा। बताया जा रहा है कि नये संशोधन के मुताबिक आने वाले दो वर्ष के बाद शिक्षक प्रशिक्षण यथा बी. एड., एस.टी.सी. या डी. एल. एड. जैसे पाठ्यक्रम अलग से नहीं कराये जायेंगे। यह ठीक उसी तरह है जैसे– चिकित्सक बनने के लिए 12वीं के बाद ही चार वर्षीय एम.बी.बी.एस. तथा इंजीनियर बनने के लिए इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम करवाये जा रहे है। इसके तहत अलग से अब बी.एस.टी.सी. एवं बी. एड. नहीं होकर एक साथ चार वर्षीय पाठ्यक्रम लागू होगा। पूर्व में हुए शोध कार्यों के अध्ययन से भी पता चला है कि चार वर्षीय एकीकृत अध्यापक–शिक्षा कार्यक्रम अभी आरम्भिक स्तर पर होने के कारण इस विषय पर अभी तक शोध कार्य का अभाव है।

अतः प्रस्तुत शोध के माध्यम से चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी. एड. पाठ्यचर्या के प्रति प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति जानने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध से प्राप्त परिणाम शिक्षा के क्षेत्र में सुधार लाने में सहायक सिद्ध होंगे। अतः प्रस्तुत शोध कार्य औचित्यपूर्ण है। इस विषय पर अध्ययन किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है।

समस्या कथन –

"चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी.एड. पाठ्यचर्या के प्रति प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन।"

शोध के उद्देश्य –

1. चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी.एड. पाठ्यचर्या के प्रति बी.ए., बी.एड. के प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
2. चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी.एड. पाठ्यचर्या के प्रति बी.एससी., बी.एड. के प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पनाएँ–

1. चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी.एड. पाठ्यचर्या के प्रति बी.ए., बी.एड. के प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
2. चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी.एड. पाठ्यचर्या के प्रति बी.एससी., बी.एड. के प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

शोध विधि –

प्रस्तुत शोध के लिए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या एवं न्यादर्श –

प्रस्तुत शोध अध्ययन के अन्तर्गत जयपुर जिले के शिक्षा महाविद्यालयों में अध्ययनरत चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी. एड. पाठ्यचर्या के प्रशिक्षणार्थियों का चयन किया गया है। अतः चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी. एड. पाठ्यचर्या में अध्ययनरत प्रशिक्षणार्थी प्रस्तुत शोध की जनसंख्या है।

न्यादर्श हेतु राजस्थान राज्य के जयपुर जिले के चार वर्षीय बी.एड. पाठ्यचर्या में अध्ययनरत 100 (छात्र एवं छात्राएँ) प्रशिक्षणार्थियों को लिया गया है। जिसके अन्तर्गत बी.ए. बी.एड. (चारों वर्ष) के 50 प्रशिक्षणार्थी एवं बी.एससी. बी.एड. (चारों वर्ष) के 50 प्रशिक्षणार्थी को लिया गया है। जिसका विवरण निम्न प्रकार है–

कुल प्रशिक्षणार्थी
100

बी.ए. बी.एड. प्रशिक्षणार्थी
50

बी.एससी. बी.एड. प्रशिक्षणार्थी
50

शोध के उपकरण –

प्रस्तुत शोध को पूर्ण करने हेतु शोधकर्त्ता द्वारा स्वनिर्मित उपकरण "चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड पाठ्यचर्या के प्रति प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति मापनी" का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकी –

प्रस्तुत शोध में मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–परीक्षण सांख्यिकी विधि का प्रयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या –

परिकल्पना संख्या 1– चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी.एड. पाठ्यचर्या के प्रति बी.ए., बी.एड. के प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

तालिका संख्या 4.1

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी–परीक्षण	स्वीकृत / अस्वीकृत
बी.ए., बी.एड. के छात्र	25	16.60	1.35	1.14	स्वीकृत
बी.ए., बी.एड. की छात्राएँ	25	16.12	1.59		

0.05 स्तर पर टी–मान = 2.01 स्वतंत्रता के अंश = 48

0.01 स्तर पर टी–मान = 2.68

तालिका संख्या 4.1 में स्वतंत्रता के अंश 48 पर टी का मान 1.14 प्राप्त हुआ। जो 0.05 एवं 0.01 स्तर पर सार्थक टी–मान 2.01 एवं 2.68 से कम है। अतः परिकल्पना "चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी. एड. पाठ्यचर्या के प्रति बी.ए., बी.एड. के प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है" दोनों स्तर पर स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना संख्या 2 – चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी.एड. पाठ्यचर्या के प्रति बी.एससी., बी.एड. के प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

तालिका संख्या 4.2

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी–परीक्षण	स्वीकृत / अस्वीकृत
बी.एससी., बी.एड. के छात्र	25	14.76	1.56	0.78	स्वीकृत
बी.एससी., बी.एड. की छात्राएँ	25	15.08	1.35		

0.05 स्तर पर टी–मान = 2.01 स्वतंत्रता के अंश = 48

0.01 स्तर पर टी–मान = 2.68

तालिका संख्या 4.2 में स्वतंत्रता के अंश 48 पर टी का मान 0.78 प्राप्त हुआ। जो 0.05 एवं 0.01 स्तर पर सार्थक टी–मान 2.01 एवं 2.68 से कम है। अतः परिकल्पना "चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी.एड. पाठ्यचर्या के प्रति बी.एससी., बी.एड. के प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है" दोनों स्तर पर स्वीकृत की जाती है।

शोध से प्राप्त निष्कर्ष –

1. चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी. एड. पाठ्यचर्या के प्रति बी.ए., बी.एड. के प्रशिक्षणार्थियों (छात्र एवं छात्राओं) की अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।
2. चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी. एड. पाठ्यचर्या के प्रति बी.एससी., बी.एड. के प्रशिक्षणार्थियों (छात्र एवं छात्राओं) की अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. भार्गव, महेश (1991) : मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, आगरा, एच. पी. भार्गव बुक हाउस।
2. बघेला एवं व्यास (1999) : शाला संगठन एवं शिक्षा समस्याएँ, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर।
3. भटनागर, सुरेश, वशिष्ठ कमला, सिंह, एम. के. (1996) : ''शैक्षिक प्रबन्ध और शिक्षा की समस्यायें'' सूर्या पब्लिकेशन।
4. भारद्वाज, दिनेश चन्द्र (2005) : भारतीय शिक्षा की आधुनिक समस्याएँ, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर।
5. सरीन शशीकला और सरीन (2004) : ''शैक्षिक अनुसंधान की विधियाँ'' आगरा, विनोद पुस्तक अंजलि मन्दिर।

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 27-28
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नई शिक्षा नीति 2020 और मातृभाषा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. संजय गोस्वामी
एसो. प्रोफेसर, राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ।

Abstract (सारांश)

नई शिक्षा नीति (NEP) 2020 भारतीय शिक्षा प्रणाली में एक क्रांतिकारी परिवर्तन है, जो मातृभाषा और क्षेत्रीय–भाषाओं में शिक्षा को बढ़ावा देने पर विशेष बल देती है। यह नीति प्राथमिक स्तर की शिक्षा को मातृभाषा में प्रदान करने की सिफारिश करती है, जिससे बच्चों की संज्ञानात्मक क्षमता और सीखने की दक्षता बढ़े। यह शोध पत्र NEP 2020 में मातृभाषा की भूमिका, इसके प्रभावों, चुनौतियों और संभावित समाधानों का विश्लेषण करता है। इस अध्ययन का उद्देश्य मातृभाषा आधारित शिक्षा की प्रभावशीलता को समझना और उसके कार्यान्वयन की व्यावहारिकता की समीक्षा करना है।

Introduction (परिचय)

भारत एक बहुभाषी देश है, जहाँ सैकड़ों भाषाएँ बोली जाती हैं। शिक्षा में भाषा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह सीखने और समझने की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। नई शिक्षा नीति 2020 ने मातृभाषा को प्राथमिक शिक्षा का माध्यम बनाने की सिफारिश की है। इससे छात्रों को विषयों को बेहतर तरीके से समझने में मदद मिलेगी और उनकी तार्किक और आलोचनात्मक सोच विकसित होगी। हालाँकि, इस नीति के कार्यान्वयन में कई चुनौतियाँ भी हैं, जिनमें शिक्षकों की उपलब्धता, बहुभाषी कक्षाओं का प्रबंधन और पाठ्यपुस्तकों का विकास शामिल है।

Methodology (कार्यप्रणाली)

यह अध्ययन गुणात्मक (Qualitative) और मात्रात्मक (Quantitative) शोध पद्धतियों का उपयोग करता है। डेटा एकत्र करने के लिए विभिन्न सरकारी दस्तावेज, शिक्षा नीति रिपोर्ट, शिक्षाविदों के इंटरव्यू और छात्रों व शिक्षकों के सर्वेक्षण का विश्लेषण किया गया है। विभिन्न राज्यों में मातृभाषा में शिक्षा लागू करने से संबंधित केस स्टडी भी इस शोध में सम्मिलित की गई हैं।

Analysis (विश्लेषण)

NEP 2020 के अनुसार, प्राथमिक स्तर तक शिक्षा मातृभाषा में प्रदान करने से छात्र की बौद्धिक क्षमता में –वृद्धि होती है। विभिन्न देशों के अनुभवों से यह स्पष्ट होता है कि मातृभाषा आधारित शिक्षा से बच्चों की

साक्षरता दर और समझने की क्षमता में वृद्धि होती है। हालाँकि, भारत में इसकी सफलता शिक्षकों की उपलब्धता, माता–पिता की जागरूकता और बहुभाषी राज्यों में इसके क्रियान्वयन की रणनीति पर निर्भर करती है।

Discussion (चर्चा)

नीति का मुख्य उद्देश्य भाषा के माध्यम से शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारना है, लेकिन इसके कार्यान्वयन में कई व्यावहारिक समस्याएँ सामने आ सकती हैं। उदाहरण के लिए, शहरी क्षेत्रों में जहाँ मिश्रित भाषाई पृष्ठभूमि के छात्र होते हैं, वहाँ मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य हो सकता है। इसके अलावा, अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव और वैश्विक अवसरों को देखते हुए कई अभिभावक मातृभाषा की बजाय अंग्रेजी को प्राथमिकता देते हैं। अतः नीति को सफल बनाने के लिए अभिभावकों और समाज में जागरूकता बढ़ाना आवश्यक है।

Conclusion (निष्कर्ष)

नई शिक्षा नीति 2020 में मातृभाषा आधारित शिक्षा का प्रस्ताव भारत में शिक्षा प्रणाली को अधिक समावेशी और प्रभावी बना सकता है। हालांकि, इस नीति को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए सरकार को शिक्षकों का उचित प्रशिक्षण, पाठ्यपुस्तकों का विकास और बहुभाषी कक्षाओं के लिए एक प्रभावी रणनीति बनानी होगी। यदि इन चुनौतियों का समाधान किया जाता है, तो यह नीति भारत की शिक्षा प्रणाली को अधिक समृद्ध बना सकती है।

References (संदर्भ)

1. National Education Policy 2020, Ministry of Education, Government of India.
2. UNESCO (1953). The Use of Vernacular Languages in Education.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 29-32

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महिला सशक्तिकरण में बिहार सरकार की योजनाएँ

डॉ० श्वेता कुमारी
इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना।

सारांश :

महिला सशक्तिकरण किसी भी समाज के सतत, समावेशी और संतुलित विकास का एक अनिवार्य आधार है। महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक तथा राजनीतिक रूप से सशक्त बनाए बिना सामाजिक न्याय एवं समग्र विकास की कल्पना संभव नहीं है। भारत जैसे विकासशील देश में, जहाँ सामाजिक असमानता और लैंगिक भेदभाव जैसी समस्याएँ विद्यमान हैं, महिला सशक्तिकरण एक प्रमुख नीतिगत प्राथमिकता बनकर उभरा है। भारत के संघीय ढाँचे में राज्य सरकारों की भूमिका महिला सशक्तिकरण की योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण होती है। इसी संदर्भ में यह शोध–पत्र बिहार सरकार द्वारा संचालित महिला सशक्तिकरण से संबंधित विभिन्न योजनाओं का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन का उद्देश्य यह मूल्यांकन करना है कि ये योजनाएँ महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, आर्थिक आत्मनिर्भरता तथा निर्णय–निर्माण क्षमता को किस हद तक सुदृढ़ करती हैं। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना, जीविका योजना, महिला उद्यमिता तथा स्वास्थ्य एवं पोषण से जुड़ी योजनाओं ने बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने, महिलाओं की आर्थिक स्थिति मजबूत करने और उनके आत्मविश्वास में वृद्धि करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

मुख्य शब्द – महिला सशक्तिकरण, महिला कल्याण योजनाएँ, आर्थिक आत्मनिर्भरता, सामाजिक विकास, लैंगिक समानता।

भूमिका :

महिलाएँ समाज की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करती हैं, परंतु ऐतिहासिक रूप से उन्हें समान अधिकार, अवसर और संसाधन प्राप्त नहीं हो पाए। पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना, अशिक्षा, आर्थिक निर्भरता और सामाजिक रूढ़ियाँ महिला सशक्तिकरण की राह में प्रमुख बाधाएँ रही हैं।[1] महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य केवल महिलाओं को आर्थिक सहायता प्रदान करना नहीं है, बल्कि उन्हें आत्मनिर्भर बनाना, निर्णय–निर्माण में भागीदार बनाना, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराना तथा उन्हें सामाजिक सम्मान दिलाना भी है।[2] बिहार राज्य सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से लंबे समय तक पिछड़ा माना जाता रहा है। यहाँ महिलाओं की स्थिति विशेष रूप से चिंताजनक रही है–कम साक्षरता दर, बाल विवाह, मातृ मृत्यु दर और सीमित रोजगार अवसर इसकी प्रमुख समस्याएँ रही हैं। इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए बिहार सरकार ने महिला सशक्तिकरण को अपनी नीतियों का केंद्रीय तत्व बनाया है और अनेक योजनाएँ प्रारंभ की हैं।[3]

महिला सशक्तिकरण की अवधारणा :

महिला सशक्तिकरण एक बहुआयामी अवधारणा है। इसके प्रमुख आयाम निम्नलिखित हैं –

1. **शैक्षणिक सशक्तिकरण :** महिलाओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराना।
2. **आर्थिक सशक्तिकरण :** रोजगार, स्वरोजगार एवं वित्तीय स्वतंत्रता।
3. **सामाजिक सशक्तिकरण :** सामाजिक भेदभाव से मुक्ति और समान अधिकार।
4. **राजनीतिक सशक्तिकरण :** निर्णय–निर्माण में सक्रिय भागीदारी।
5. **स्वास्थ्य सशक्तिकरण :** मातृ एवं बाल स्वास्थ्य की सुरक्षा।

बिहार सरकार की योजनाएँ इन सभी आयामों को समग्र रूप से संबोधित करने का प्रयास करती हैं।[4]

अध्ययन के उद्देश्य :

इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य बिहार सरकार द्वारा संचालित महिला सशक्तिकरण से संबंधित विभिन्न योजनाओं का समग्र एवं विस्तृत अध्ययन करना है। अध्ययन के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि ये योजनाएँ महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक जीवन पर किस प्रकार प्रभाव डाल रही हैं। साथ ही, महिलाओं के जीवन–स्तर में आए परिवर्तनों, उनकी आत्मनिर्भरता, निर्णय–निर्माण क्षमता तथा सामाजिक स्थिति में हुए सुधार का मूल्यांकन करना भी इस शोध का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

बिहार सरकार की प्रमुख महिला सशक्तिकरण योजनाएँ :

मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना –

यह योजना बालिकाओं को जन्म से लेकर स्नातक शिक्षा तक आर्थिक सहायता प्रदान करती है। इसका उद्देश्य बालिका शिक्षा को प्रोत्साहन देना, बाल विवाह रोकना तथा लड़कियों में आत्मविश्वास विकसित करना है। इस योजना के कारण बालिकाओं के विद्यालय नामांकन और उच्च शिक्षा में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है।[5]

जीविका योजना –

जीविका योजना के अंतर्गत स्वयं सहायता समूहों (SHG) का गठन कर महिलाओं को स्वरोजगार से जोड़ा जाता है। इससे ग्रामीण महिलाओं की आय बढ़ी है और वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनी हैं। यह योजना महिला नेतृत्व को भी प्रोत्साहित करती है।[6]

मुख्यमंत्री नारी शक्ति योजना –

इस योजना का उद्देश्य महिलाओं को सामाजिक और राजनीतिक रूप से सशक्त बनाना है। पंचायत स्तर पर महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है, जिससे स्थानीय शासन में महिलाओं की भूमिका सुदृढ़ हुई है।

मुख्यमंत्री महिला उद्यमी योजना –

इस योजना के अंतर्गत महिलाओं को उद्योग एवं व्यवसाय स्थापित करने के लिए वित्तीय सहायता, प्रशिक्षण और मार्गदर्शन दिया जाता है। इससे महिला उद्यमिता को बढ़ावा मिला है।[7]

स्वास्थ्य एवं पोषण से जुड़ी योजनाएँ –

मातृ स्वास्थ्य, पोषण और सुरक्षित प्रसव को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न योजनाएँ चलाई गई हैं, जिससे मातृ मृत्यु दर में कमी आई है।

योजनाओं का प्रभाव –

शैक्षणिक प्रभाव :

- बालिकाओं की साक्षरता दर में वृद्धि।
- उच्च शिक्षा में नामांकन बढ़ा।

आर्थिक प्रभाव :

- महिलाओं की आय एवं बचत में वृद्धि।
- स्वरोजगार के अवसर बढ़े।

सामाजिक प्रभाव :

- आत्मविश्वास में वृद्धि।
- घरेलू एवं सामाजिक निर्णयों में भागीदारी।

राजनीतिक प्रभाव :

- पंचायतों में महिला नेतृत्व को बल।
- निर्णय–निर्माण में सक्रिय भूमिका।

सुझाव :

- योजनाओं के प्रति जन–जागरूकता बढ़ाई जाए।
- डिजिटल एवं पारदर्शी प्रणाली को मजबूत किया जाए।
- कौशल विकास एवं प्रशिक्षण पर अधिक बल दिया जाए।
- सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध निरंतर अभियान चलाए जाएँ।

निष्कर्ष :

इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि बिहार सरकार द्वारा प्रारंभ की गई महिला सशक्तिकरण योजनाओं ने न केवल महिलाओं की भौतिक परिस्थितियों में सुधार किया है, बल्कि उनके आत्मसम्मान और सामाजिक पहचान को भी मजबूती प्रदान की है। बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने, महिलाओं को स्वरोजगार से जोड़ने तथा स्वास्थ्य और पोषण सेवाओं तक उनकी पहुँच सुनिश्चित करने से महिलाओं की भूमिका पारंपरिक घरेलू सीमाओं से आगे बढ़कर सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र तक विस्तृत हुई है। इससे महिलाओं में आत्मविश्वास का विकास हुआ है और वे अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति अधिक सजग हुई हैं।

सन्दर्भ :

1. Ministry of Education, Government of India. विद्यालयी शिक्षा में लैंगिक समावेशन। भारत सरकार, 2019.
2. NITI Aayog. एसडीजी इंडिया इंडेक्स : लैंगिक समानता एवं महिला सशक्तिकरण। भारत सरकार, 2021, www.niti.gov.in.
3. World Bank. ग्रामीण भारत में महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण। वर्ल्ड बैंक प्रकाशन, 2019, www.worldbank.org.

4. UN Women. सतत विकास के लिए महिलाओं का सशक्तिकरण. संयुक्त राष्ट्र, 2020, www.unwomen.org.
5. Government of Bihar. मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना : दिशा–निर्देश एवं प्रगति रिपोर्ट. शिक्षा विभाग, बिहार सरकार, 2022, education.bihar.gov.in.
6. Government of Bihar. जीविका : बिहार ग्रामीण आजीविका संवर्धन सोसायटी. ग्रामीण विकास विभाग, बिहार सरकार, 2021, www.brlps.in.
7. Government of Bihar. मुख्यमंत्री महिला उद्यमी योजना. उद्योग विभाग, बिहार सरकार, 2022, industries.bihar.gov.in.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 33-35
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्राथमिक निजी विद्यालयों के विस्तार के कारणों का अध्ययन

आरती कुमारी, शोधार्थी,
शिक्षाशास्त्र विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।
प्रो० (डॉ०) श्याम रंजन प्रसाद सिंह, विभागाध्यक्ष,
दर्शनशास्त्र विभाग, बी० एम० डी० कॉलेज, दयालपुर (वैशाली)

सार :

वर्तमान समय में भारत में प्राथमिक स्तर पर निजी विद्यालयों की संख्या में तीव्र वृद्धि देखने को मिल रही है। यह विस्तार केवल शहरी क्षेत्रों तक सीमित नहीं है, बल्कि ग्रामीण एवं अर्ध–शहरी क्षेत्रों में भी निजी प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना तेजी से हो रही है। इस शोध पत्र का उद्देश्य प्राथमिक निजी विद्यालयों के विस्तार के प्रमुख कारणों का अध्ययन करना है। अध्ययन में यह विश्लेषण किया गया है कि सरकारी विद्यालयों की स्थिति, अभिभावकों की अपेक्षाएँ, शिक्षा की गुणवत्ता, प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण, आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन तथा सरकारी नीतियाँ किस प्रकार निजी विद्यालयों के विस्तार को प्रभावित कर रही हैं। यह शोध पत्र वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है तथा द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों का उपयोग किया गया है।

मुख्य शब्द : प्राथमिक शिक्षा, निजी विद्यालय, सरकारी विद्यालय, शिक्षा की गुणवत्ता, अभिभावक अपेक्षाएँ।

भूमिका :

शिक्षा किसी भी राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास का आधार होती है। प्राथमिक शिक्षा वह चरण है, जिसमें बालक के व्यक्तित्व, चरित्र और बौद्धिक विकास की नींव पड़ती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21(क) के अंतर्गत 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार प्रदान किया गया है।[1] इसके बावजूद, देश में प्राथमिक स्तर पर निजी विद्यालयों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। पिछले कुछ दशकों में यह देखा गया है कि अनेक अभिभावक सरकारी विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों को प्राथमिकता देने लगे हैं। इस प्रवृत्ति ने शिक्षा व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन को जन्म दिया है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि प्राथमिक निजी विद्यालयों के विस्तार के कारणों का गहन अध्ययन किया जाए।

अध्ययन के उद्देश्य :

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

1. प्राथमिक निजी विद्यालयों के विस्तार के कारणों की पहचान करना।

2. सरकारी एवं निजी विद्यालयों की गुणवत्ता की तुलनात्मक समीक्षा करना।

3. अभिभावकों की बदलती सोच एवं अपेक्षाओं का अध्ययन करना।

4. निजी विद्यालयों के विस्तार के सामाजिक एवं शैक्षिक प्रभावों का विश्लेषण करना।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्त्व :

प्राथमिक निजी विद्यालयों के विस्तार ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था को एक नई दिशा दी है। एक ओर यह शिक्षा में विकल्प एवं प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देता है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक असमानता एवं शिक्षा के व्यवसायीकरण जैसे प्रश्न भी उत्पन्न करता है। इस विषय पर अध्ययन से नीति–निर्माताओं, शिक्षाविदों एवं प्रशासकों को शिक्षा व्यवस्था में सुधार हेतु उपयोगी सुझाव प्राप्त हो सकते हैं।[2]

प्राथमिक निजी विद्यालयों के विस्तार के कारण :

सरकारी विद्यालयों की गिरती गुणवत्ता –

कई सरकारी विद्यालयों में शिक्षकों की कमी, अनियमित उपस्थिति, आधारभूत सुविधाओं का अभाव तथा कमजोर शैक्षिक वातावरण पाया जाता है। इन कारणों से अभिभावकों का सरकारी विद्यालयों से विश्वास कम हुआ है।[3]

शिक्षा की गुणवत्ता के प्रति बढ़ती जागरूकता –

वर्तमान समय में अभिभावक अपने बच्चों के भविष्य को लेकर अधिक जागरूक हो गए हैं। वे ऐसी शिक्षा चाहते हैं जो केवल पाठ्यपुस्तकों तक सीमित न होकर सर्वांगीण विकास पर आधारित हो, जिसे वे निजी विद्यालयों में अधिक उपयुक्त मानते हैं।[4]

अंग्रेजी माध्यम शिक्षा की माँग –

निजी विद्यालयों के विस्तार का एक प्रमुख कारण अंग्रेजी माध्यम शिक्षा की बढ़ती माँग है। अभिभावक यह मानते हैं कि अंग्रेजी भाषा में दक्षता से रोजगार के बेहतर अवसर प्राप्त होते हैं।

बेहतर अनुशासन एवं प्रबंधन –

निजी विद्यालयों में अनुशासन, समयपालन एवं प्रशासनिक नियंत्रण अपेक्षाकृत बेहतर होता है। विद्यालय प्रबंधन अभिभावकों के प्रति उत्तरदायी होता है, जिससे विश्वास में वृद्धि होती है।

प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण –

निजी विद्यालयों में प्रतिस्पर्धा का वातावरण छात्रों को बेहतर प्रदर्शन के लिए प्रेरित करता है। परीक्षा परिणाम, सहशैक्षणिक गतिविधियाँ एवं पुरस्कार प्रणाली छात्रों के विकास में सहायक मानी जाती हैं।[5]

शहरीकरण एवं आर्थिक विकास –

शहरीकरण, मध्यम वर्ग का विस्तार तथा आय में वृद्धि के कारण लोग निजी शिक्षा पर खर्च करने में सक्षम हो गए हैं। इससे निजी विद्यालयों के विस्तार को प्रोत्साहन मिला है।

सरकारी नीतियाँ एवं उदारीकरण –

उदारीकरण एवं निजीकरण की नीतियों के अंतर्गत शिक्षा क्षेत्र में निजी भागीदारी को बढ़ावा मिला है। इससे निजी विद्यालयों की स्थापना एवं विस्तार आसान हुआ है।[6]

प्राथमिक निजी विद्यालयों के विस्तार के प्रभाव :

सकारात्मक प्रभाव –

- शिक्षा में विकल्पों की उपलब्धता।
- गुणवत्ता सुधार हेतु प्रतिस्पर्धा।
- अभिभावकों की संतुष्टि।

नकारात्मक प्रभाव –

- शिक्षा का व्यवसायीकरण।
- सामाजिक एवं आर्थिक असमानता।
- सरकारी विद्यालयों की उपेक्षा।

सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालयों की तुलनात्मक स्थिति :

सरकारी विद्यालय जहाँ निःशुल्क शिक्षा, मध्याह्न भोजन एवं सामाजिक समावेशन पर बल देते हैं, वहीं निजी विद्यालय गुणवत्ता, अनुशासन एवं आधुनिक सुविधाओं पर केंद्रित होते हैं। दोनों की अपनी–अपनी सीमाएँ एवं विशेषताएँ हैं।[7]

सुधार हेतु सुझाव :

1. सरकारी विद्यालयों की गुणवत्ता में सुधार किया जाए।
2. शिक्षकों की नियुक्ति एवं प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाए।
3. निजी विद्यालयों पर उचित नियंत्रण एवं विनियमन किया जाए।
4. अभिभावकों में सरकारी विद्यालयों के प्रति विश्वास बढ़ाया जाए।

निष्कर्ष :

प्राथमिक निजी विद्यालयों का विस्तार अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक कारणों का परिणाम है। यह प्रवृत्ति जहाँ एक ओर शिक्षा में गुणवत्ता एवं प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देती है, वहीं दूसरी ओर समानता एवं सामाजिक न्याय के समक्ष चुनौतियाँ भी प्रस्तुत करती है। अतः आवश्यक है कि सरकारी एवं निजी दोनों क्षेत्रों में संतुलन स्थापित करते हुए प्राथमिक शिक्षा को सुदृढ़ किया जाए।

सन्दर्भ :

1. भारत सरकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, 2020
2. कोठारी, डी. एस. शिक्षा और राष्ट्रीय विकास : शिक्षा आयोग की रिपोर्ट (1964–66), भारत सरकार, 1966
3. अग्रवाल, जे. सी. शिक्षा के सिद्धांत एवं आधार, विकास पब्लिशिंग हाउस, 2010
4. तिलक, जंध्याला बी. जी. "भारत में निजी शिक्षा : प्रवृत्तियाँ एवं मुद्दे" जर्नल ऑफ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन, खंड 27, अंक 1, 2013, पृ. 1–20
5. किंगडन, गीता गांधी, "सार्वजनिक एवं निजी शिक्षा की गुणवत्ता और दक्षता : शहरी भारत का एक अध्ययन" ऑक्सफोर्ड बुलेटिन ऑफ इकॉनॉमिक्स एंड स्टैटिस्टिक्स, खंड 59, अंक 1, 1997, पृ. 57–82
6. टूलि, जेम्स, और पॉलीन डिक्सन, गरीबों के लिए निजी शिक्षा : निम्न आय वाले देशों में निजी विद्यालयों का अध्ययन, कैटो इंस्टिट्यूट, 2005
7. दास, बी. एन. शिक्षा की आधारशिलाएँ, कल्याणी पब्लिशर्स, 2012

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642 January 2026 Page No. : 36-38
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

श्री नाथद्वारा (श्रीनाथजी की हवेली)

डॉ. चन्द्रकान्ता कुमावत
पी०एच०डी. स्कॉलर (ज्योतिषाचार्या)
डॉ. अलकनन्दा शर्मा, विभाभागाध्यक्ष (ज्योतिषाचार्या)
ज्योतिष एवम् वास्तु संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ टाउन हॉल परिसर, उदयपुर (राज.)

मेवाड़ की वीर प्रसूता धरती को शत–शत नमन। यह धरती वीरों की पुण्यतम् धरती के साथ ही साथ धार्मिक रूप से भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

मेवाड़ के चारों धाम श्री एकलिंगनाथ, श्री चारभुजा नाथ, श्रीनाथ द्वारा व श्री केसरिया जी सभी अपनी धार्मिक महत्ता के कारण प्रसिद्ध है।

आज इस राष्ट्रीय संगोष्ठी जिसका विषय है –

''हिन्दू धर्म में पवित्र स्थलों का उद्भव एवम् इतिहास : भौगोलिक, पुरातात्विक एवम् धार्मिक स्थापत्य के आलोक में।''

इसी विषय के अन्तर्गत मैं आज मेवाड़ की ब्रज भूमि श्री नाथ द्वारा हवेली में लेकर चलती हूँ। मेवाड़ रियासत के उत्तरपश्चिम दिशा में श्री नाथद्वारा ठिकाना अपने. धार्मिक महत्त्व के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

पूर्वकाल में यह ठिकाना सिंहाड़ गाँव के नाम से जाना जाता था।

संवत् 1929 (ई. 1672) में ब्रज क्षेत्र के प्रभु गोवर्धन नाथ जिन्हें कालान्तर में श्रीनाथ जी कहा जाने लगा इस ठिकाने पर स्थापित होने पर सिंहाड़ कस्बे को श्रीनाथ द्वारा कहा जाने लगा।

भौगोलिक दृष्टिकोण –

भौगोलिक दृष्टिकोण से श्री नाथ द्वारा ठिकाना दक्षिणी राजस्थान में अरावली की पहाड़ियों के बीच, बनारस नदी के किनारे 24°56* उत्तरी अंक्षाश तथा 73°49* पूर्वी देशान्तर के मध्य समुद्रतल से 585 मीटर ऊँचाई पर बसा हुआ है।

श्रीनाथ द्वारा ठिकाना पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय की प्रधान पीठ रहा है। इस सम्प्रदाय के उद्भव में आचार्य वल्लभ महत्त्वपूर्ण योगदान था।

वल्लभाचार्य आचार्य वल्लभ ने अपने अपने सिद्धान्त के आचरण पक्ष पुष्टिमार्ग और सैद्धान्तिक पक्ष शैद्वाद्वेतवाद के माध्यम से अपने सिद्धान्तों को जनसामान्य के सामने रखकर मध्ययुग की अन्धकारमय धार्मिक परिस्थितियों में लोगों को मुक्ति का नया मार्ग दिखाया।

श्री गणेशायः नमः

धर्म सम्बन्धित जानकारी

सम्बद्दता – हिन्दूधर्म देवता

देवता – श्रीनाथजी (श्रीकृष्ण)

त्यौहार – जन्माष्टमी, होली, दिवाली आदि।

अवस्थिति जानकारी

अवस्थिति – नाथद्वारा

जिला – राजसमन्द

राज्य – राजस्थान

देश – भारत

वास्तु विवरण

प्रकार – राजपूताना

निर्माता – दामोदर दास वैरागी

निर्माण पूर्व– सन् 1672

नाथद्वारा में भगवान श्रीनाथ जी का मन्दिर हवेली एक किलेनुमा महल के भीतर स्थित है। बाहरी भाग में स्थित महल का निर्माण सिसोदिया वंश के राजपूत राजाओं द्वारा करवाया गया।

मुख्य मन्दिर का वास्तु वृंदावन में स्थित भगवान श्री कृष्ण के पिता नंद बाबा को समर्पित मन्दिर के वास्तु से प्रभावित है।

पुष्टि मार्गिय वैष्णव सम्प्रदाय में श्री नाथ को एक व्यक्ति मानकर पूजा जाता है। अतः इस मंदिर क श्री नाथ जी की हवेली कहा जाता है। तथा यहाँ की पूजा पद्धति भी भिन्न है।

जिस रथ पर भगवान श्रीनाथजी का विग्रह लाया गया था, उसे भी मुख्य वाहन के रूप में प्रदर्शित किया गया है। नाथद्वारा मुख्य परिसर में भगवान मदनमोहन जीव नवीन प्रिया को समर्पित दो मन्दिर बने हुये।

नाथद्वारा शब्द दो शब्दों से मिलकर बना नाथ+द्वार अर्थात् नाथ का द्वार है।

7 वर्ष के बालक के रूप में दर्शाया गया है।

– वल्लमसम्प्रदाय के लोग मन्दिर नहीं मानकर नंदरायजी का घर. मानते है।

मंदिर पर कोई शिखर नहीं है।

श्रीनाथजी का विग्रह दुर्लभ काले संगमरमर के पत्थर से बना हुआ है।

बायां हाथ ऊपर उठा हुआ है, दाहिना हाथ कमर पर टिकाया हुआ है।

होठों के नीचे हीरा चमचमाता है। विग्रह के साथ एक शेर, दो गाय, एक साँप, दो तोते, दो मोर है तथा तीन ऋषि मुनियों के चित्र भी विग्रह के पास रखे हैं।

– भोजन को प्रसाद कहा जाता है– मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, आरती, शयन।

श्रृंगार आरती में श्रीनाथजी का बहुत है सुन्दर और हाथ से बने, रेशम के कपड़ों से सजाया जाता है। भगवान् के सभी वस्त्रों पर जरी और कुढ़ाई का बहुत महीन काम किया होता है।

फूलघर, पानघर, शाकघर, घीघर, दूधघर, मेवा घर आदि।

ध्वजाजी

विक्रम संवत् 1566 वैशाख शुक्ल पद्वा तृतीया के दिन मन्दिर बनाने की शुरुआत हुई। शिखर पर 7 विविध ध्वजा लहराती है।

– मेघश्याम ध्वजा – श्रीनाथ के भाव से।

– पीली ध्वजा– श्री स्वामिनी जी के भाव से।

– श्याम ध्वजा– यमुनाजी के भाव से।

– सफेद ध्वजा– श्री चंद्रवलि के भाव से।

– हरी ध्वजा – श्री राधा सहचरि जी के भाव से।

– जांबली ध्वजा– श्री गिरिराज जी के भाव से।

– गुलाबी ध्वजा –श्री गोपीजनों के भाव से।

श्री सुदर्शन चक्र– श्रीजी मन्दिर की अखण्ड चौकी करते है।

– दो कलश है बड़ा श्री महाप्रभु का तथा स्वामिनी के भाव दर्शाता है। छोटा कलश श्री गुंसाईजी तथा चंद्रवली के भाव दर्शाते है।

सुदर्शनजी निज भक्तों के सेवार्थ बिराजते है एवं कलश के नीचे चार सिंह बिराजते है।

– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के भाव से।

श्रीनाथ जी का अधिदैविक स्वरुप श्रीजी साक्षात् है। श्री ध्वजाजी अधिदैविक स्वरूप श्री स्वामिनीजी के रूप है।

संदर्भ :

1. श्री नाथ द्वारा जागीर का इतिहास, डी. आशुतोष गुर्जर, राजस्थानी ग्रन्थाकार, जोधपुर।
2. नाथद्वारीय चित्रकला और चित्रकार, चिरजींवलाल शर्मा कलाकार।
3. उत्सव दर्शन–कीर्तन माला, सम्पादक –पन्नालाल कीर्तनकार
   प्रकाशक : श्रीमद्वल्लभ अष्ट सखा स्मृति ट्रस्ट, नाथद्वारा (राजस्थान)

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 39-47
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और नामवर सिंह का जीवन संघर्ष (इनकी जीवनियों के आधार पर)

अमन कुमार
वरिष्ठ शोधार्थी, गुजरात केंद्रीय विश्वविद्यालय।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और नामवर सिंह–दोनों ही हिंदी साहित्य के ऐसे व्यक्तित्व हैं, जिनके जीवन में संघर्षों ने उनके विचार, दृष्टिकोण और रचनात्मकता को विशेष गहराई दी। साधारण ग्रामीण परिवेश से निकलकर उच्च साहित्यिक शिखरों तक पहुँचना इन दोनों विद्वानों के जीवन की साझा धारा रही।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म एक सामान्य ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आर्थिक सीमाएँ और गाँव की पारंपरिक संरचना उनके प्रारंभिक जीवन की विशेषताएँ थीं। परंतु ज्ञान के प्रति उनकी जिज्ञासा बचपन से ही उन्हें अलग पहचान देती थी। परिवार की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ न होने के बावजूद उन्होंने कठिन परिस्थितियों में शिक्षा प्राप्त की। निजी संघर्षों, सीमित संसाधनों और साधारण सामाजिक पृष्ठभूमि के बावजूद उन्होंने संस्कृत, इतिहास, दर्शन और साहित्य का गहन अध्ययन किया। अपने श्रम, अनुशासन और आत्मविश्वास के बल पर वे बनारस हिंदू विश्वविद्यालय जैसे संस्थान में महत्वपूर्ण पदों तक पहुँचे। उनका साहित्यिक संघर्ष मुख्यतः परंपरा और आधुनिकता के समन्वय का था जिसे वे अपनी रचनाओं में सृजनात्मक रूप से उकेरते रहे।

नामवर सिंह का जीवन संघर्ष भी कम उल्लेखनीय नहीं है। गाँव के एक किसान परिवार में जन्मे नामवर सिंह के सामने आर्थिक कठिनाइयाँ हमेशा रही। प्रारंभिक जीवन में शिक्षा जारी रखना भी उनके लिए चुनौती भरा था। परिवार की जिम्मेदारियाँ, संसाधनों की कमी और सीमित अवसरों ने उनकी राह कई बार रोकी, परंतु उनकी बौद्धिक जिज्ञासा और अध्ययन के प्रति दृढ़ता ने उन्हें आगे बढ़ाया। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में पढ़ते समय भी वे कठिन परिस्थितियों से जूझते रहे, पर उनकी लगन ने उन्हें हिंदी आलोचना का विशिष्ट स्वर बना दिया। उनके संघर्ष का मूल सार था–साहित्यिक ईमानदारी, वैचारिक स्पष्टता और आलोचना को ज्ञानात्मक अनुशासन की तरह स्थापित करना।

विश्वनाथ त्रिपाठी हजारी प्रसाद द्विवेदी की जीवनी 'व्योमकेश दरवेश' में उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि और संकट को इस तरह से दर्शाते हैं– ''द्विवेदी जी स्वयं निष्कृष्ट दारिद्र्य की विभीषिकाओं को निकट से देख ही नहीं भोग भी चुके थे। उन्होंने मुझे बताया था कि 'आरत दूबे के छपरा' से विद्याध्ययन हेतु काशी के लिए प्रस्थान करते समय वे अपने खर्चे के लिए एक रुमाल में कौड़ियाँ भी बाँधकर लाए थे। उन दिनों तक कौड़ियों का उपयोग मुद्रा के रूप में होता रहा होगा। द्विवेदी जी अपने बाल्यकाल के दारिर्द्य को आजीवन नहीं भूले। वे उसका बार–बार स्मरण करते। हमें बताते भी। मैंने पंडितजी से कई बार सुना है–तुम लोग सोच नहीं सकते

अगर कभी एक कुर्ता भी बनवाना होता तो उसके लिए घर में कितना हंगामा मचता। बताते कि एक बार हम दोनों भाई (विश्वनाथ द्विवेदी और हजारीप्रसाद द्विवेदी), खेत में बैठकर रोते रहे कि हम पढ़ाई कैसे चला पाएँगे। बस पढ़ने की ललक थी। सम्भवतः इसी आत्मानुभव के कारण ही अभावग्रस्त व्यक्ति, विशेष रूप से छात्रों को देखकर अनायास करुणा–द्रवित हो जाते। मानो अपना ही पुराना व्यक्तित्व मिल गया, ऐसा अपनापा देते। अपने आँसुओं अतः बिम्बित। देखे हैं अपने ही मुख–चित।''[1] इस विवरण से स्पष्ट होता है कि द्विवेदी जी का बचपन 'निष्कृष्ट दारिर्द्य' से घिरा हुआ था। ऐसा दारिर्द्य जो केवल देखा नहीं जाता, बल्कि मन और स्मृति में स्थायी रूप से बस जाता है। काशी पढ़ने जाते समय उनका एक रूमाल में कौड़ियाँ बाँधकर ले जाना उस समय की आर्थिक विपन्नता और संघर्ष का मूर्त प्रतीक बन जाता है। यह प्रसंग बताता है कि साधारण–सी मुद्रा भी उनके लिए कितनी महत्त्वपूर्ण थी। इसी प्रकार, नए कुर्ते के लिए घर में हंगामा का होना उस परिवार की सीमित आय और संसाधनों पर निर्भर जीवन शैली को स्पष्ट करता है, जहाँ आवश्यकताओं का प्रबन्ध भी कठिन था। द्विवेदी जी और उनके भाई का खेत में बैठकर रोना इस संकट की सबसे मार्मिक झलक है। यह केवल आर्थिक विवशता का चित्र नहीं, बल्कि शिक्षा के प्रति गहरी लालसा और अपनी असहाय स्थिति का दर्द है। गरीबी ने उनकी राहें भले रोकी हों, पर अध्ययन की प्यास ने उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। इन्हीं अनुभवों ने आगे चलकर उनके व्यक्तित्व में करुणा और संवेदना को गहरा बनाया। अभावग्रस्त छात्रों को देखकर उनका मन सहज करुणा से भर उठना इस बात का प्रमाण है कि उनके अपने बचपन का संघर्ष दूसरों के दुख से उन्हें आत्मीय रूप से जोड़ देता था। मानो वे अपने भीतर के उसी छोटे, संघर्षरत बालक को उनमें देख लेते हों। द्विवेदी जी का पारिवारिक संकट केवल आर्थिक अभाव का वर्णन नहीं है, बल्कि यह बताता है कि कैसे निजी पीड़ा मानवता, उदारता और महानता का आधार बन सकती है।

इसी तरह की आर्थिक समस्या का सामना नामवर सिंह ने भी किया है। जीवन में अनेक दुखों का वहन करने के लिए नामवर सिंह हमेशा तत्पर रहे। अंकित नरवाल नामवर सिंह की जीवनी 'अनल पाखी' में लिखते हैं– ''नामवर सिंह के लिए ये कठोर दिन थे। उनकी नौकरी जा चुकी थी। छोटे भाई काशीनाथ एम.ए. के अंतिम वर्ष की परीक्षा दे रहे थे। उनका भी आगे का कुछ पता नहीं था। छात्रवृत्ति का भी कोई ठिकाना न था। मझले भाई भी बी.ए. में दूसरी बार फेल हो गए थे। थे। वे पहले शहीद गाँव हाईस्कूल में पढ़ा रहे थे, किन्तु अब वे भी वहाँ की मैनेजमेंट से झगड़ा करके उससे अलग हो गए थे। पिताजी भी रिटायर्ड हो चुके थे। घर में पैसे की नितांत आवश्यकता थी। ऐसे में नामवर की अस्थाई नौकरी भी जाती रही। इससे पिताजी खासे नाराज हुए और उन्होंने बनारस आने से भी मना कर दिया। वे गाँव में ही रहने का कौल भर चुके थे।''[2] यह वर्णन नामवर सिंह के जीवन के उस कठिन दौर को उजागर करता है, जब आर्थिक संकट ने पूरे परिवार को गहरे अस्थिर वातावरण में ला खड़ा किया था। नामवर सिंह की नौकरी का जाना केवल व्यक्तिगत विफलता नहीं बल्कि पूरे परिवार की आर्थिक रीढ़ टूट जाने जैसा था। नियमित आय का कोई स्थायी स्रोत शेष नहीं था। ऐसे समय में नामवर की अस्थायी नौकरी भी समाप्त हो गई, जिसने परिवार को लगभग निराशा की कगार पर ला दिया। इस स्थिति की गंभीरता केवल आर्थिक अभाव तक सीमित नहीं है, बल्कि पारिवारिक तनाव भी इसमें जुड़ जाता है। पिता का नाराज होना और नामवर को बनारस न आने देना इस संकट का भावनात्मक आयाम सामने लाता है। यह घटना दिखाती है कि नामवर सिंह का जीवन शुरुआती संघर्षों से भरा था और साहित्य, शिक्षा तथा चिंतन

के शिखर तक पहुँचने से पहले उन्हें विषम परिस्थितियों से बार–बार जूझना पड़ा। यहां यह भी संकेत है कि नामवर की जीवटता और बौद्धिक प्रतिबद्धता ऐसे ही संघर्षों से घिरी थी। उनके लिए यह संकट केवल बाधा नहीं बल्कि आत्मनिर्माण की प्रक्रिया का एक अहम हिस्सा बना, जिसने आगे चलकर उनके आलोचनात्मक स्वभाव और सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टि को और प्रखर किया।

नामवर सिंह के जीवन की अन्य विपत्तियों को रेखांकित करते हुए जीवनीकार आगे लिखते हैं– ''इन दिनों उनका जीवन घोर विपत्तियों में गुजर रहा था। वे बताते कि 'रोटी–नमक, रोटी–प्याज, जाड़े में सिर्फ एक कम्बल, ओढ़ो भी बिछाओ भी, ठंड ज्यादा लग रही हो तो गाँव के किनारे या बीच में पेड़ पर भोंपू लेकर बैठ जाओ– 'हँसिया वाली जिन्दाबाद।' साइकिल मिली तो मिली, नहीं पैदल, जिले भर का चप्पा–चप्पा छान रहे हैं। ऐसे–ऐसे घर, ऐसे–ऐसे आदमियों को देखा कि क्या बताया जाए? जब भूख बर्दाश्त न हो और घर में कुछ न हो तो सुर्ती फाँको।

इन्हीं दिनों चुनाव के प्रचार में नामवर को पान न मिलने से सुर्ती फाँकने की लत लग गयी थी।

नौकरी छूटने से पहले भी नामवर सिंह के हालात कुछ ज्यादा अच्छे नहीं थे। उन दिनों उनकी हालत यह थी कि उनके पास एक ही कुर्ता था, उसी को धो कर, सुखा कर, पहन कर वे विभाग आया करते थे। उन्हें तनख्वाह भी नहीं मिल रही थी। उनके पास फूटी कौड़ी तक न थी। घर से सहायता लेना उन्होंने पहले ही बंद कर दिया था। उन्होंने अपने खाने की व्यवस्था मेस में कर रखी थी। विभाग तक वे पैदल ही चलकर जाया करते थे। किंतु उनके उत्साह में कमी न थी।''[3] अंकित नरवाल नामवर सिंह के जीवन में आए आर्थिक संघर्षों और अभावों की उस कठोर वास्तविकता को सामने लाते हैं, जिसने उनके व्यक्तित्व और वैचारिक दृढ़ता को गढ़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यहाँ उनका जीवन केवल गरीबी की कथा नहीं कह रहा, बल्कि धैर्य, जिजीविषा और आत्मसम्मान का दस्तावेज बनकर उभरता है। रोटी–नमक और रोटी–प्याज पर गुजारा, ठिठुरती सर्दियों में एकमात्र कंबल में रात काटना, भूख मिटाने के लिए सुर्ती फाँकना–ये प्रसंग बताते हैं कि अभाव उनके लिए रोजमर्रा की वास्तविकता थी। चुनाव प्रचार के दौरान साइकिल तक उपलब्ध न होना और जिलों में पैदल घूमना उनकी कठिन परिस्थितियों को और तीव्र रूप में प्रस्तुत करता है।

नौकरी छूटने से पहले की स्थिति भी कुछ भिन्न नहीं थी। एक ही कुर्ते को धोकर प्रतिदिन पहनना और बिना वेतन के विभाग पहुँचना उनकी आर्थिक तंगी की चरम अवस्था को दर्शाता है। घर से सहायता न लेने का उनका निर्णय उनके आत्मसम्मान और आत्मनिर्भरता की भावना को प्रकट करता है। सीमित साधनों में मेस से भोजन की व्यवस्था करना और पैदल चलकर विभाग पहुँचना यह दिखाता है कि वे परिस्थितियों से टूटने के बजाय स्वयं को संभालने का प्रयास करते रहे। इन कठिनतम परिस्थितियों के बावजूद उनके उत्साह और कर्मनिष्ठा में कमी न आना अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह दर्शाता है कि आर्थिक विपत्तियाँ उनके संकल्प को डिगा नहीं सकीं बल्कि इन्हीं संघर्षों ने उनके विचार, दृष्टि और साहित्यिक व्यक्तित्व को और सुदृढ़ बनाया। इस प्रकार नामवर सिंह का जीवन अभावों से जूझते हुए भी निरंतर आगे बढ़ने की प्रेरक गाथा बन जाता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी जीवन में अनेक संकट वहन किए। विशेष रूप से आर्थिक संकट से तो वे हमेशा ही जूझते रहे। अपने पूर्व दिनों को याद करते हुए वे कहते हैं– ''अपने घर की आर्थिक स्थिति के बारे में लिखा है कि 'उसकी बात न करना ही ठीक है। पिताजी ने बड़ी मुश्किल से गाँव के किसी आदमी

से चालीस रुपये उधार लिए और उससे इंटरमीडिएट में एडमिशन हुआ।' एडमिशन तो हो गया लेकिन हर महीने फीस का इन्तजाम नहीं हो सकता था। लिखा है कि उन दिनों ऐसे बहुत निर्धन विद्यार्थी थे जो क्लास में बैठते लेकिन फीस नहीं दे पाते। परीक्षा देने के समय मालवीय जी और प्रिंसिपल ध्रूव की उदारता से उनका उद्धार हो जाता। यानी उनकी फीस माफ कर दी जाती। लिखा है 'कई बार फीस देने की चेतावनी मिली लेकिन मेरे पास फीस के पैसे नहीं थे। संस्कृत कॉलेज में 15 रुपये की वृत्ति मिलती थी और पाँच रुपये का ट्यूशन करता था। कुछ खाता था कुछ बचाकर घर भेज देता था।' घर की बात करना ठीक नहीं था लेकिन लिखा भी है, 'बड़ी दयनीय थी, आज भी याद करता हूँ तो रोएँ खड़े हो जाते हैं।'

सब लोग कहते थे कि प्रिंसिपल ध्रुव के पास जाने से फीस माफ हो जाती है, उदार हैं। द्विवेदी जी भी गए। 'मैं डरते–डरते प्रिंसिपल ध्रूव के कमरे में गया। वे कुछ झल्लाए हुए थे, शायद मेरे जैसे और भी लक्ष्मी के त्यक्त पुत्र उनकी सेवा में हाजिर हो चुके थे। मैंने अपनी कहानी सुनाई। बीच में ही झल्लाकर बोल उठे–जाओ, मैं नहीं सुनना चाहता। यूनिवर्सिटी गरीबों के लिए नहीं है। जाओ ईंटा ढोओ।''[4] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के जीवन की आर्थिक विपत्तियाँ केवल व्यक्तिगत संघर्ष नहीं थीं, बल्कि उस दौर के ग्रामीण, प्रतिभाशाली और निर्धन विद्यार्थियों की वास्तविकता का जीवंत दस्तावेज भी हैं। यह अवतरण स्पष्ट करता है कि उनके परिवार की आर्थिक दशा इतनी दयनीय थी कि इंटरमीडिएट की पढ़ाई शुरू होने से पहले ही पिता को गाँव के किसी व्यक्ति से उधार लेकर मात्र चालीस रुपये जुटाने पड़े। यह शुरुआती संघर्ष ही आगे आने वाली कठिनाइयों का संकेत था। उनकी स्थिति इतनी विषम थी कि माहवार चेतावनी मिलने पर भी उनके पास फीस का पैसा नहीं होता था। कॉलेज से मिलने वाली वृत्ति से वे स्वयं का गुजारा करते और उसी में से कुछ बचाकर घर भेज देते थे। यह आर्थिक अनुशासन और परिवार के प्रति जिम्मेदारी उनकी संवेदनशीलता का परिचायक है। घर की दयनीय हालत उन्हें भीतर तक व्यथित करती थी, इसीलिए वे लिखते हैं कि उसे याद कर आज भी रोएँ खड़े हो जाते हैं।

सबसे मार्मिक प्रसंग वह है जहाँ वे हिम्मत जुटाकर प्रिंसिपल ध्रूव के पास फीस माफी के लिए जाते हैं, पर उनकी झल्लाहट और 'यूनिवर्सिटी गरीबों के लिए नहीं है, जाओ ईंटा ढोओ' जैसी कठोर टिप्पणी निर्धन प्रतिभा के प्रति सामाजिक असंवेदनशीलता का उदाहरण है। यह अपमान उस समय की व्यवस्था की क्रूरता का दर्पण भी है, जिसमें आर्थिक अभाव को योग्यता पर प्राथमिकता दी जाती थी। इन तमाम विपत्तियों से स्पष्ट है कि द्विवेदी जी का बौद्धिक उत्थान संघर्षों की उस भट्ठी से निकला था, जहाँ गरीबी ने उन्हें तोड़ने के बजाय दृढ़, सहनशील और जीवन के प्रति गहन संवेदनशील बनाया।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने जीवन के अनेक आर्थिक संकटों को सामना युक्ती से किया। वे फीस के पैसों के लिए एवं घर का खर्च चलाने के लिए कथा तक बांचने लगे थे। ऐसा ही एक प्रसंग जीवनीकार विश्वनाथ त्रिपाठी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की जीवनी में उल्लिखित करते हैं– ''छात्र हजारीप्रसाद द्विवेदी के पास न फीस, न ओढ़ने–बिछाने के कपड़े। फीस चाहिए और माँगने का साहस टूट चुका था। भीख माँग नहीं सकते थे। दलित–पुत्र होते तो पता नहीं क्या होता। गाड़ी शायद ही आगे बढ़ पाती। ब्राह्मणत्व काम आया।

'सो मैंने बगल में पोथी दबाई और कथा बाँचने चला गया। मेरे एक मित्र थे। श्री सीताराम द्विवेदी। इस अगस्त आन्दोलन में (1942 के अगस्त आन्दोलन से तात्पर्य होगा) वे गिरफ्तार हुए और जेल में स्वर्ग सिधार गए।

उन्होंने कोआथ (आरा) में मेरी कथा बैठा दी। वे खुद आर्यसमाजी थे पर मेरी सहायता के लिए उन्होंने इस बात की परवाह नहीं की। कथा सात दिनों तक हुई।''[5]

यहां आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के जीवन का वह संघर्षपूर्ण पक्ष सामने आता है, जहाँ आर्थिक अभाव केवल परिस्थितिगत दिक्कत नहीं, बल्कि अस्तित्व का प्रश्न बन गया था। छात्र जीवन में उनके पास न फीस थी, न पहनने–ओढ़ने का पर्याप्त सामान। पैसे माँगने का साहस टूट चुका था और आत्मसम्मान इतनी दृढ़ता से उनके भीतर बैठा था कि वे भीख नहीं माँग सकते थे। यह स्थिति केवल आर्थिक तंगी का नहीं बल्कि मानसिक क्लेश और सामाजिक दबाव का भी द्योतक है। इस कथन में द्विवेदी जी की सामाजिक संवेदना और व्यवस्था की असमानताओं के प्रति सजग दृष्टि निहित है। आर्थिक संकट से निकलने का उपाय उन्होंने कथा–वाचन में खोजा। यह कदम केवल जीविका का साधन नहीं बल्कि सांस्कृतिक और वैचारिक परंपरा से उनकी गहरी जुड़ाव का प्रमाण भी है। मित्र सीताराम द्विवेदी का सहयोग–जो आर्यसमाजी होते हुए भी उनकी सहायता के लिए कथा बैठवाते हैं–जीवन की कठिन घड़ी में मित्रता, मनुष्यता और सहकार की शक्ति को रेखांकित करता है। सात दिनों तक कथा बाँचकर उन्होंने न केवल फीस और घरखर्च का प्रबंध किया बल्कि जीवन की चुनौती को आत्मसम्मानपूर्वक संभालने की क्षमता भी प्रदर्शित की। यह प्रसंग दिखाता है कि हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व का निर्माण संघर्षों की उसी कड़ा चट्टान पर हुआ था, जहाँ आत्मसम्मान, श्रम, प्रतिभा और सामाजिक चेतना एक साथ मिलकर उनके चरित्र को गढ़ते हैं। आर्थिक संकट ने उन्हें तोड़ा नहीं, बल्कि और दृढ़ बनाया।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के शिष्य नामवर सिंह ने भी जीवन में अनेक समस्याओं को वहन किया। लेकिन वे तंगी में भी अपने स्वाभिमान के साथ डटे रहे। ऐसा ही प्रसंग जीवनीकार बताते हैं–''इन्हीं दिनों काशीनाथ ने अपने बचाए हुए पैसों से एक साइकिल खरीदी और कुछ बचे हुए पैसों में से एक रुपया नामवर सिंह की जेब में डाल दिया। काशी को लगता था कि भैया वैसे तो न पैसे माँगेंगे और न ही उन्हें सामने से ही वह पैसे दे सकेंगे। एक शाम को नामवर सिंह जब हर रोज की तरह बाहर जाने लगे तो आदतन उन्होंने अपने कुर्ते की जेब टटोली। उन्हें वहाँ एक रुपया मिला। उन्हें काशी पर संदेह हुआ तो पूछा, 'यह जेब में कैसे आया?'

काशीनाथ के मुँह से बोल न फूटे। कभी इधर देखें, कभी उधर।

उन्होंने काफी देर तक चुप्प रहने के बाद कहा, 'सुनो! मुझे रोज केवल चार आने की जरूरत पड़ती है। दो आने पान के लिए और दो आने चाय के लिए। गदौलिया पैदल आता–जाता हूँ। और उतने पैसे कम–से–कम दो साल के लिए हैं मेरे पास। मेरे लिए न तुम्हें चिंता करने की जरूरत है, न रामजी को। तुम लोग घर देखो और वहाँ भी जरूरत है तो मुझे कहो।'

इसके बाद वे चुप हो गए। उनकी आँखों में कुछ अजीब तरह का भाव था। उन्होंने काशी के सामने अपनी हथेली फैलाई और कहा, 'देखो। ये इससे ज्यादा की मुझे जरूरत नहीं।' वे काशी को अपनी रोजमर्रा की लागत चवन्नी दिखा रहे थे।''[6] नामवर सिंह के जीवन में व्याप्त आर्थिक तंगी के साथ–साथ उनके अदम्य स्वाभिमान और आत्मानुशासन को अत्यंत मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। कठिन परिस्थितियों में रहने के बावजूद वे अपने आत्मसम्मान से कभी समझौता नहीं करते। काशीनाथ द्वारा जेब में चुपके से रखा गया एक रुपया, जो भाई के स्नेह और चिंता का प्रतीक है, नामवर के भीतर छिपी उस स्वाभिमानी चेतना को उजागर करता है जो किसी भी प्रकार की अनावश्यक सहायता स्वीकार करने को तैयार नहीं थी।

काशीनाथ की झिझक और मौन, फिर उनका संकोचपूर्ण उत्तर–परिवार के भीतर उस भावनात्मक तादात्म्य को दर्शाता है जहाँ एक भाई दूसरे के संघर्ष को जानता है, पर उसे आहत किए बिना मदद करना चाहता है। किंतु नामवर सिंह का उत्तर अधिक गहरी बात कहता है। यह सरल, संयमित और अनुशासित जीवन उनके आत्मनिर्णय का प्रतीक है। उनके कथन में आत्मनिर्भरता का अडिग भाव दिखाई देता है। वे न केवल अपने खर्च की सीमा तय करते हैं, बल्कि परिवार की बड़ी जरूरतों को प्राथमिकता देकर जिम्मेदारी का भाव भी प्रकट करते हैं। जब वे अपनी हथेली आगे कर चवन्नी दिखाते हैं, यह दृश्य उनके जीवन–दर्शन का सार प्रतीत होता है–अल्प साधनों में भी गरिमा, संतोष और दृढ़ता के साथ जीना। यह प्रसंग दिखाता है कि आर्थिक तंगी ने नामवर सिंह को कमजोर नहीं किया बल्कि कठोर परिस्थितियों ने उनके स्वाभिमान, सादगी और आत्मनिर्भरता को और प्रखर बनाया।

जीवन के कठोर संकटों के मध्य भी नामवर सिंह ने अपने गुरू द्विवेदी जी से जीवन का व्यावहारिक सच सीखा। जीवनीकार अंकित नरवाल लिखते हैं–''नामवर सिंह अकसर शाम के समय आचार्य द्विवेदी जी के साथ टहलने चले जाते। वहीं देश–दुनिया, साहित्य–संस्कृति, विचार–व्यवहार आदि की ढेरों बातें होतीं। इन्हीं दिनों व्यवहार–पद्धति को लेकर गुरु–शिष्य के बीच एक गहन बातचीत हुई–'यह सन् 1951 की बात होगी। आचार्य द्विवेदी, हमारे गुरुदेव शान्ति निकेतन से आए हुए थे और उन दिनों मुझ पर मार्क्सवाद का नया रंग या नशा चढ़ रहा था, जो आम तौर पर नये लोगों में होता है.....उस समय कुछ चीजों को लेकर विचारों में बड़ी टकराहट चल रही थी, अतः मैंने शाम को घूमते समय उनसे तुलसीदास का हवाला देते हुए कहा, 'तुलसीदास तो मानते थे कि 'नाते सबै राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं। जाके प्रिय न राम वैदेही। तजिए तजिए ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।' पंडित जी ठिठक गए, बोले, 'मैं इसे नहीं मानता।' एक सहज–सी बात थी। बोले, 'तुलसीदास बैरागी आदमी थे। मैं गृहस्थ हूँ। उनके औरत नहीं, बीवी–बच्चे नहीं, उन्हें समाज में रहना नहीं था। वे नाते सबै राम के साथ चला सकते थे। मैं गृहस्थ हूँ। गृहस्थ में तो इतने अन्तर–वैयक्तिक सम्बन्ध होते हैं।' यही नहीं बल्कि जिसे आगे चलकर एक उपन्यास में उन्होंने लिखा है। भागवत का कोई श्लोक सुनाया, फिर गीता का सुनाया और कहने लगे कि देखो, 'मन तो स्वयं पूरा–का–पूरा किसी से नहीं मिलता। मेघदूत का एक श्लोक उन्होंने उद्धृत किया जो कालिदास के यक्ष की वेदना थी। वह अपनी प्रिया का उपमान ढूँढ़ता है। कुछ नदी में मिल जाता है, कुछ लता में मिल जाता है, कुछ चन्द्रमा में मिलता है, लेकिन 'हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चंडि सादृश्यमस्ति।' अर्थात् ऐसा कुछ भी नहीं है, सुन्दरी, जिसके साथ तुम्हारा पूरा सादृश्य हो। इकट्ठा एक जगह से सारी चीजें नहीं मिलती, जिनसे मन मिले। इकट्ठा एक आदमी कोई ऐसा दुनिया में नहीं मिलता जिससे आपका पूरा मन मिले। कुछ किसी में मिलता है, तो कुछ किसी में मिलता है। इसलिए भगवान के भी कई स्वरूप होते हैं। कोई सोलह कला के होते हैं तो कोई बारह कला के ही होते हैं।' इसके बाद पंडित जी बोले, 'इसलिए तुलसीदास के लिए उनकी बात ठीक है लेकिन अपने लिए मेरा धर्म यह है कि जब अपने अत्यन्त निकट–से–निकट व्यक्तियों से... मेरी पत्नी से मेरा मन सोलह आने नहीं मिलता, अपने भाइयों से नहीं मिलता, अपने गुरु से नहीं मिलता, तो जितनी दूर तक जिससे मन मिलता है उतनी दूर उससे निभाना यही मानवीय धर्म है। हम देवता नहीं हैं, हम मनुष्य हैं।' यह कहकर पंडित जी ने मुझे व्यवहार की पद्धति समझाई।''[7]

यहां नामवर सिंह के जीवन के उस महत्वपूर्ण चरण को उजागर किया गया है जहाँ आर्थिक और

सामाजिक संकटों के बीच वे केवल पुस्तक–ज्ञान ही नहीं, बल्कि व्यवहार–ज्ञान सीख रहे थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के साथ नियमित सायंकालीन भ्रमण उनके लिए पाठशाला से अधिक जीवन का जीवंत विद्यालय था। द्विवेदी जी केवल साहित्याचार्य नहीं थे, बल्कि जीवन के सूक्ष्म, जटिल और मानवीय आयामों के अनूठे शिक्षक भी थे। जब युवा नामवर सिंह मार्क्सवाद के आकर्षण और नए वैचारिक उत्साह में थे, तब तुलसीदास के प्रसंग को लेकर उनकी गुरु से हुई टकराहट यह दर्शाती है कि वे विचारों को लेकर अत्यंत सजग और प्रश्नकारी स्वभाव के थे। किंतु द्विवेदी जी उनके व्यवहारिक दृष्टिकोण की जड़ में स्थित जीवन की वास्तविकता को सामने लाता है। इस विचार से वे नामवर को सिखाते हैं कि आदर्शवाद और जीवन की यथार्थ स्थितियों में संतुलन आवश्यक है।

द्विवेदी जी द्वारा भागवत, गीता और मेघदूत के श्लोकों का उद्धरण देते हुए यह समझाना कि मन किसी एक व्यक्ति से पूरी तरह नहीं मिलता, और यह कि मानवीय संबंध विभिन्न हिस्सों में विभिन्न व्यक्तियों से जुड़ते हैं–यह शिक्षण नामवर के लिए वैचारिक परिपक्वता की एक महत्वपूर्ण अवस्था थी। इसे नामवर सिंह ने अपने संघर्षपूर्ण जीवन में आत्मसात किया। आर्थिक तंगी, सामाजिक संघर्ष और वैचारिक उथल–पुथल के बीच मिली यह सीख उनके व्यक्तित्व को संतुलित, सहनशील और मानवीय बनाती है।

जब नामवर सिंह की अस्थाई नौकरी चली गई और घर में पिता सेवानिवृत हो गए, छोटे भाई की भी नौकरी चली गई। ऐसी स्थिति में जब वे बेराजगार थे तो हजारी प्रसाद द्विवेदी उनकी नौकरी के लिए बहुत चिंता करते थे। जीवनीकार लिखते हैं– ''हालाँकि, आचार्य द्विवेदी जी अपने सबसे योग्य व प्रिय शिष्य की चिंता में रहते। उनसे उनकी बेकारी देखी न जाती। वे अपने सहयोगियों को लिखते कि एक होनहार विद्यार्थी अपने वामपंथी विचारों के कारण मारा–मारा फिर रहा है। उसको कहीं जगह दिलवाई जाए। शिवमंगल सिंह समुन से भी उन्होंने एक–दो बार मित्रवत यही निवेदन किया।''[8] यहां गुरु–शिष्य संबंध की उस मानवीय संवेदना को उजागर किया गया है, जिसमें केवल शैक्षणिक मार्गदर्शन ही नहीं, बल्कि व्यक्तिगत जीवन की कठिनाइयों में भी गहरा सहभाग दिखाई देता है। स्वयं नामवर बेरोजगार थे और जीवन की दिशा अनिश्चित हो गई थी। ऐसी विकट स्थिति में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का चिंतित होना यह प्रमाणित करता है कि वे नामवर को केवल शिष्य नहीं, बल्कि एक उत्तरदायित्व की तरह देखते थे।

द्विवेदी जी की चिंता केवल भावनात्मक सहानुभूति नहीं थी। उसमें सक्रियता और प्रयास का भी गहन तत्व है। जीवनीकार बताते हैं कि वे अपने सहयोगियों को लिखते थे कि उनका एक अत्यंत योग्य छात्र अपने वामपंथी विचारों के कारण उपेक्षित और संघर्षरत है, और उसे कोई उपयुक्त स्थान मिलना चाहिए। इससे यह स्पष्ट होता है कि वे नामवर की प्रतिभा को किसी भी राजनीतिक विचारधारा से ऊपर रखते थे और मानते थे कि ऐसे मेधावी व्यक्ति को बेरोजगारी के दलदल में नहीं फँसना चाहिए। शिवमंगल सिंह 'सुमन' जैसे प्रतिष्ठित साहित्यकार से मित्रवत निवेदन करना यह दर्शाता है कि द्विवेदी जी केवल गुरु के रूप में औपचारिक चिंता नहीं कर रहे थे, बल्कि अपने निजी संबंधों और प्रभाव का उपयोग करके अपने शिष्य के लिए एक सम्मानजनक भविष्य सुनिश्चित करना चाहते थे। यह व्यवहार उनकी मानवीय उदारता और जिम्मेदारी की भावना को उजागर करता है।

द्विवेदी जी जीवन पर्यन्त आर्थिक समस्या से जूझते रहे लेकिन प्रलोभन में कभी नहीं आए। अपने कर्तव्य

से कभी उन्होंने समझौता नहीं किया। ऐसे ही एक प्रसंग के लिए विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं– ''आपको किसी ने गलत खबर दे दी है कि मैं हिन्दी भवन छोड़ रहा हूँ... काशी से निमंत्रण आया था, रुपये का प्रलोभन भी था और अपनी मातृ संस्था की गोद में पहुँचने का आकर्षण भी। पिताजी तथा अन्य गुरुजनों का आग्रह भी था। परन्तु इस बार तो आपके आशीर्वाद से मैं विचलित नहीं हुआ। गुरुदेव की इस पुण्यभूमि का बन्धन ज्यादा मजबूत साबित हुआ।''[9] यह उदाहरण आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व की उस विशेषता को रेखांकित करता है, जो उनके संपूर्ण जीवन में दिखाई देती है। अडिग नैतिकता, कर्तव्यनिष्ठा और प्रलोभनों से अप्रभावित रहकर अपनी प्रतिबद्धता निभाने का साहस। आर्थिक तंगी ने उन्हें जीवन के हर चरण में चुनौती दी, किंतु इन चुनौतियों के बावजूद वे कभी अवसरवादिता, पदलोलुपता या लोभ की ओर नहीं झुके।

द्विवेदी जी को काशी से प्राप्त निमंत्रण केवल एक सामान्य आमंत्रण नहीं था उसमें आर्थिक आकर्षण भी निहित था, जो उनके जैसे आर्थिक संकट झेलते व्यक्ति के लिए महत्त्वपूर्ण हो सकता था। इसके साथ ही वह काशी उनकी मातृ संस्था भी थी। जहाँ से उन्होंने शिक्षा प्राप्त की, जहाँ उनके शुरुआती संस्कार निर्मित हुए। पिताजी और अन्य गुरुजनों का आग्रह भी इस प्रस्ताव को और भावनात्मक गहराई देता है। यह सब मिलकर ऐसा वातावरण बनाते हैं जहाँ किसी भी व्यक्ति का मन डोल सकता था। किन्तु इन सबसे कहीं अधिक महत्वपूर्ण था उनका कर्तव्य, उनकी निष्ठा और वह भावनात्मक व बौद्धिक संबंध जो उन्हें हिन्दी भवन और अपने कार्यस्थल से जोड़े हुए थे। वे जानते थे कि साहित्यिक और सांस्कृतिक जगत में स्थिरता और गंभीरता उन्हीं के पास रह सकती है जो प्रलोभनों के क्षणिक लाभों को नजरअंदाज कर अपने मूल दायित्वों को प्राथमिकता देते हैं। यह प्रसंग द्विवेदी जी की चरित्र–गांभीर्य, संकल्पशक्ति और अपनी कर्मभूमि के प्रति समर्पण का उदाहरण है। आर्थिक कठिनाईयों से जूझते हुए भी उन्होंने सिद्ध किया कि सच्चा मूल्य हमारी निष्ठा में है, न कि अवसरों की चमक में। यही नैतिक दृढ़ता उन्हें एक आदर्श आचार्य और मानव बनाती है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और नामवर सिंह दो पीढ़ियों से जुड़े ये गुरु–शिष्य न केवल हिंदी आलोचना और साहित्य के बड़े हस्ताक्षर हैं, बल्कि जीवन–संघर्ष के भी अद्भुत उदाहरण हैं। जीवनीयों के आधार पर दोनों के जीवन की पृष्ठभूमि देखी जाए तो स्पष्ट होता है कि आर्थिक अभाव, सामाजिक सीमाएँ, पारिवारिक जिम्मेदारियाँ और वैचारिक संघर्ष–ये सब उनके जीवन में निरंतर उपस्थित रहे। फिर भी, दोनों ने कभी अपने आत्मसम्मान, निष्ठा और बौद्धिक ईमानदारी से समझौता नहीं किया।

द्विवेदी जी ने छात्र जीवन से लेकर अंतिम दिनों तक आर्थिक कठिनाइयों का बोझ उठाया, परंतु किसी भी प्रलोभन के आगे उनके सिद्धांत नहीं टूटे। उन्होंने जीवन को आदर्शवाद और व्यवहार बुद्धि दोनों के संतुलन से जिया। सीमित साधनों के बावजूद उनकी गंभीरता, नैतिक दृढ़ता और साहित्यिक समर्पण ने उन्हें महान आचार्य का दर्जा दिया।

दूसरी ओर, नामवर सिंह ने युवावस्था में बेरोजगारी, अवसरों की कमी और परिवार की आर्थिक बदहाली का सामना किया। लेकिन कठिन परिस्थितियों में भी उनका स्वाभिमान, सादगी और ज्ञान के प्रति अविचल आस्था बनी रही। द्विवेदी जी का सान्निध्य उन्हें केवल साहित्यिक दिशा ही नहीं, जीवन का व्यवहारिक सत्य भी प्रदान करता रहा, जिसने उन्हें संतुलित और परिपक्व विचारक बनाया। जीवनियों में इन दोनों के जीवन–संघर्ष यह बताते हैं कि महानता केवल प्रतिभा से नहीं, बल्कि संकटों को गरिमा और विवेक के साथ सहने की क्षमता से

जन्म लेती है। कठिन परिस्थितियाँ उनके लिए बाधा नहीं, बल्कि आत्मनिर्माण और चरित्र–निर्माण की प्रक्रिया रहीं। इसीलिए दोनों का जीवन साहित्य–जगत में प्रेरणा का अमिट स्रोत बन जाता है। इस प्रकार, दोनों साहित्यकारों का जीवन हमें सिखाता है कि संघर्ष केवल चुनौतियाँ ही नहीं लाता, बल्कि दृष्टि, संवेदना और सृजनात्मकता को भी तीक्ष्ण बनाता है।

सन्दर्भ सूचि :–

1. त्रिपाठी, विश्वनाथ, व्योमकेश दरवेश–आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का पुण्य स्मरण, पृ.–37 राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–संस्करण–2017
2. नरवाल, अंकित, अनल पाखी, पृ.–25 आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा–2021
3. नरवाल, अंकित, अनल पाखी, पृ.–25 आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा–2021
4. त्रिपाठी, विश्वनाथ, व्योमकेश दरवेश–आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का पुण्य स्मरण, पृ.–41 राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–संस्करण–2017
5. त्रिपाठी, विश्वनाथ, व्योमकेश दरवेश–आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का पुण्य स्मरण, पृ.–42 राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–संस्करण–2017
6. नरवाल, अंकित, अनल पाखी, पृ.–25 आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा–2021
7. नरवाल, अंकित, अनल पाखी, पृ.–25 आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा–2021
8. नरवाल, अंकित, अनल पाखी, पृ.–25 आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा–2021
9. त्रिपाठी, विश्वनाथ, व्योमकेश दरवेश–आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का पुण्य स्मरण, पृ.–117 राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–संस्करण–2017

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 48-53
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਦੁਆਰਾ ਸਿਰਜਿਤ ਪ੍ਰਵਾਸੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦਾ ਦੁਖਾਂਤ : ਥੈਂਕਸ ਏ ਲੌਟ ਪੁੱਤਰਾ

ਅੰਮ੍ਰਿਤਪਾਲ ਸਿੰਘ
ਸਹਾਇਕ ਪ੍ਰੋਫੈਸਰ, ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਭਾਗ, ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਖਾਲਸਾ ਕਾਲਜ ਯਮੁਨਾਨਗਰ

ਰਿਸ਼ਤਾ-ਨਾਤਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਸਮਾਜਿਕ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦਾ ਇੱਕ ਜਾਲ ਹੈ ਜਿਸਦਾ ਹਿੱਸਾ ਲਗਭਗ ਸਾਰੇ ਸਭਿਆਚਾਰਾਂ ਦੇ ਲੋਕ ਹਨ। ਇਹ ਸਭਿਅਤਾ ਦੇ ਆਰੰਭ ਤੋਂ ਹੀ ਸਮਾਜ ਦਾ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਅੰਗ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਸ ਵਿਚ ਅਜਿਹੇ ਰਿਸ਼ਤੇ ਹਨ ਜਿਹੜੇ ਇੱਕੋ ਕਬੀਲੇ ਵਿੱਚ ਜਨਮ ਲੈਣ ਜਾਂ ਵਿਆਹ ਆਦਿ ਕਾਰਨ ਜੁੜਦੇ ਹਨ। ਕੁਝ ਰਿਸ਼ਤੇ ਇਨਸਾਨ ਦੇ ਪੈਦਾ ਹੁੰਦੇ ਹੀ ਬਣ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਕੁਝ ਰਿਸ਼ਤੇ ਅਜਿਹੇ ਹੁੰਦੇ ਹਨ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਵਿਅਕਤੀ ਆਪਣੀ ਸਮਝ ਅਤੇ ਲੋੜਾਂ ਦੇ ਆਧਾਰ 'ਤੇ ਕਾਇਮ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਕੁਝ ਰਿਸ਼ਤੇ ਸਰੀਰਕ ਖਿੱਚ ਅਤੇ ਲੋੜਾਂ 'ਤੇ ਆਧਾਰਿਤ ਹੁੰਦੇ ਹਨ, ਜਦੋਂ ਕਿ ਕੁਝ ਆਦਰਸ਼ਵਾਦੀ ਅਤੇ ਭਾਵਨਾਤਮਕ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਪੰਜਾਬੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਵਿਚ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਨੂੰ ਦੋ ਸ਼੍ਰੇਣੀਆਂ ਵਿਚ ਵੰਡਿਆ ਗਿਆ ਹੈ, ਖ਼ੂਨ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਰਿਸ਼ਤੇ ਅਤੇ ਵਿਆਹ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਰਿਸ਼ਤੇ। ਇਸ ਸੰਬੰਧ ਵਿਚ ਭੁਪਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਖਹਿਰਾ ਨੇ ਆਪਣੀ ਪੁਸਤਕ "ਲੋਕਧਾਰਾ ਭਾਸ਼ਾ ਅਤੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰ" ਵਿਚ ਲਿੱਖਿਆ ਹੈ ਕਿ, "ਵਿਆਹ ਦੁਆਰਾ ਸਿਰਜੇ ਗਏ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਨੂੰ ਸਕੀਰੀ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਖ਼ੂਨ ਦੁਆਰਾ ਸੰਬੰਧਤ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੇ ਪਸਾਰ ਨੂੰ ਸ਼ਰੀਕਾ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਸ਼ਰੀਕਾ ਆਮ ਤੌਰ ਤੇ ਪਿੰਡਾਂ ਵਿਚ ਹੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ, ਸਕੀਰੀਆਂ ਦੂਸਰੇ ਪਿੰਡਾ ਵਿਚ ਅਤੇ ਦੂਸਰੇ ਗੋਤਾਂ ਵਿਚ ਹੁੰਦੀਆਂ ਹਨ।"[1]

ਵੈਦਿਕ ਕਾਲ ਤੋਂ ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਸਾਂਝੇ ਪਰਿਵਾਰ ਦੀ ਪ੍ਰਥਾ ਪ੍ਰਚਲਿਤ ਹੋਣ ਦੇ ਪ੍ਰਮਾਣ ਮਿਲਦੇ ਹਨ। ਪਰ ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਸਦਕਾ ਸਾਂਝੇ ਪਰਿਵਾਰਾਂ ਦੀ ਪਰੰਪਰਾ ਖ਼ਤਮ ਹੁੰਦੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਪਹਿਲਾਂ ਪਰਿਵਾਰ ਪਿਤਾ ਪੁਰਖੀ ਧਾਰਨਾ ਅਨੁਸਾਰ ਚਲਦੇ ਸੀ, ਜਿਸ ਵਿਚ ਪਰਿਵਾਰ ਦਾ ਮੁਖੀਆ ਪਰਿਵਾਰ ਦੇ ਸੱਭ ਤੋਂ ਸਿਆਣੇ ਜਾ ਬਜ਼ੁਰਗ ਬੰਦੇ ਨੂੰ ਮੰਨਿਆ ਜਾਂਦਾ ਸੀ। ਭਾਰਤੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਜਾਂ ਪੰਜਾਬੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਵਿੱਚਲੀ ਰਿਸ਼ਤਾ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਵਿਸ਼ਾਲ ਘੇਰੇ ਵਿੱਚ ਫੈਲੀ ਹੋਈ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਵਿੱਚ ਰਿਸ਼ਤਾ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਵਿੱਚ ਹਰ ਰਿਸ਼ਤੇ ਲਈ ਇੱਕ ਵੱਖਰਾ ਸੰਕਲਪ ਹੈ, ਜਿਹੜਾ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਵਿੱਚਲੇ ਆਪਸੀ ਮੋਹ ਨੂੰ ਦਰਸਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਪਰੰਤੂ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦਾ ਸੁਭਾਅ ਪੱਛਮੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਵਿੱਚ ਵੇਖਣ ਨੂੰ ਨਹੀਂ ਮਿਲਦਾ, ਉੱਥੇ ਮਨੁੱਖੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦਾ ਦਾਇਰਾ ਸੰਕੁਚਿਤ ਹੋ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਸੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿੱਚ ਜੇਕਰ ਪੱਛਮੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਵਿੱਚ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰੀਏ ਤਾਂ ਪਤਾ ਲੱਗਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉੱਥੇ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਲਈ ਦੋ ਹੀ ਮੁੱਖ ਸੰਕਲਪ ਮੌਜੂਦ ਹਨ:- 'ਅੰਕਲ ਅਤੇ ਆਂਟੀ', ਪਰੰਤੂ ਭਾਰਤੀ ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਗਿਣਤੀ ਪੱਖੋਂ ਅਨੇਕਾਂ ਹੀ ਰਿਸ਼ਤੇ ਗਿਣਾਏ ਜਾ ਸਕਦੇ ਹਨ, ਜਿਵੇਂ:- ਭੂਆ-ਫੁੱਫੜ, ਮਾਮਾ-ਮਾਮੀ, ਚਾਚਾ-ਚਾਚੀ, ਤਾਇਆ-ਤਾਈ, ਭੈਣ-ਭਰਾ, ਮਾਸੜ-ਮਾਸੀ, ਦਿਓਰ ਜੇਠ, ਦਰਾਣੀਆਂ, ਜੇਠਾਣੀਆਂ

ਆਦਿ। ਮੁੱਖ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਭਾਰਤੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਵਿੱਚ ਪੰਜ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੇ ਰਿਸ਼ਤੇ ਵੇਖਣ ਨੂੰ ਮਿਲਦੇ ਹਨ:- ਖ਼ੂਨ ਦੇ ਰਿਸ਼ਤੇ, ਪਰਿਵਾਰਕ ਰਿਸ਼ਤੇ, ਪ੍ਰੋਹਣਾਚਾਰੀ ਜਾ ਭਾਵਨਾਤਮਕ ਰਿਸ਼ਤੇ, ਵਿਆਹ ਹੋਣ ਉਪਰੰਤ ਸਿਰਜੇ ਰਿਸ਼ਤੇ, ਅਪ੍ਰਵਾਨਿਤ ਰਿਸ਼ਤੇ। ਪਰੰਤੂ ਪੱਛਮੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਅਤੇ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਸਦਕਾ ਇਹ ਰਿਸ਼ਤਾ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਅੱਜ ਟੁੱਟਦੀ ਵੇਖੀ ਜਾ ਸਕਦੀ ਹੈ। ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਪਦਾਰਥਵਾਦੀ ਸੋਚ ਦਾ ਧਾਰਨੀ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਨਿੱਘੇ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਵਿੱਚ ਵੀ ਖਲਾਅ ਆ ਚੁੱਕਿਆ ਹੈ। ਜਿਸ ਸਦਕਾ ਮਨੁੱਖ ਇਕੱਲਤਾ ਦਾ ਸੰਤਾਪ ਹੰਢਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਅਸੀਂ ਅਜੋਕੇ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਬਦਲਦੇ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੇ ਸਰੂਪ ਨੂੰ ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਦੀ ਕਹਾਣੀ "ਥੈਂਕਸ ਏ ਲੌਟ ਪੁੱਤਰਾ" ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚ ਸਮਝਣ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕਰਾਂਗੇ। ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਦੀ ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਇੱਕ ਘਰ ਦੀ ਗੱਲ ਨਾ ਕਰਕੇ ਸਮੁੱਚੇ ਭਾਰਤੀ ਪੰਜਾਬੀ ਅਤੇ ਪ੍ਰਵਾਸੀ ਪੰਜਾਬੀਆਂ ਦੀ ਵਾਸਤਵਿਕ ਤਸਵੀਰ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ।

ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਮਾਨਵ ਦੀ ਪਦਾਰਥਵਾਦੀ ਪ੍ਰਵਿਰਤੀ ਨੂੰ ਦਰਸਾਉਂਦੀ ਹੈ, ਕਿ ਕਿਵੇਂ ਨਾ ਚਾਹੁੰਦਿਆਂ ਹੋਇਆਂ ਵੀ ਇਸ ਪ੍ਰਵਿਰਤੀ ਕਰਕੇ ਹੀ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਨਿਜੀ ਰਿਸ਼ਤੇ ਤਾਰ-ਤਾਰ ਹੁੰਦੇ ਵੇਖੇ ਜਾ ਸਕਦੇ ਹਨ। ਮਾਂ-ਪਿਓ, ਭੈਣ-ਭਰਾ ਵਰਗੇ ਖ਼ੂੰਨ ਦੇ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਵਿੱਚ ਵੀ ਤਨਾਵ ਦਿਨੋਂ ਦਿਨ ਵਧਦਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਪੈਸਾ ਕਮਾਉਣ ਤੇ ਪਦਾਰਥਕ ਸੁੱਖਾਂ ਨਾਲ ਲਬਰੇਜ਼ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਜਿਉਣ ਦੀ ਹੋੜ ਵਿਚ ਮਨੁੱਖ ਨਿੱਜੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਤੋਂ ਬੇਮੁੱਖ ਹੁੰਦਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਹਰਿਆਣਾ ਦੇ ਹਿਸਾਰ ਜ਼ਿਲ੍ਹੇ ਦਾ ਜੰਮਪਲ ਹੈ, ਜਿਸਨੇ ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਪਟਿਆਲਾ ਤੋਂ ਹਿੰਦੀ ਵਿੱਚ ਐੱਮ. ਏ. ਪਾਸ ਕੀਤੀ। ਇਸ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਉਸ ਨੇ ਰਾਜਸਥਾਨ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਤੋਂ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਅਤੇ ਜਨ-ਸੰਚਾਰ ਦੇ ਵਿਸ਼ੇ ਵਿੱਚ ਐਮ.ਏ. ਦੀ ਡਿਗਰੀ ਹਾਸਿਲ ਕੀਤੀ ਹੈ।[2] ਬਾਵਜ਼ੂਦ ਇਸਦੇ ਉਸਦਾ ਪਹਿਲਾ ਕਹਾਣੀ ਸੰਗ੍ਰਹਿ "ਰਾਮ ਕਿਸ਼ਨ ਬਨਾਮ ਸਟੇਟ ਹਾਜ਼ਿਰ ਹੋ" (2004) ਵਿੱਚ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਵਿਚ ਛਪਿਆ ਸੀ। ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਦੀ ਕਹਾਣੀ "ਥੈਂਕਸ ਏ ਲੌਟ ਪੁੱਤਰਾ" ਸਮਕਾਲੀ ਸਮਾਜ ਦੇ ਯਥਾਰਥ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਦੀ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਹਰਿਆਣੇ ਵਿੱਚ ਰਹਿੰਦਿਆਂ ਹੋਇਆ ਵੀ ਪਰਵਾਸ ਵਿੱਚ ਜੀਵਨ ਹੰਢਾ ਰਹੇ ਭਾਰਤੀ ਪੰਜਾਬੀ ਪਰਵਾਸੀਆਂ ਦੀ ਵੇਦਨਾ ਨੂੰ ਬੜੇ ਗਹਿਰੇ ਤਲ ਤੇ ਅਨੁਭਵ ਕਰਦਾ ਹੈ, ਉਸਦੀ ਕਲਪਨਾ ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਰਾਹੀਂ ਯਥਾਰਥਕ ਜਾਪਦੀ ਹੈ। ਕਹਾਣੀ ਦੇ ਪਾਠ ਤੋਂ ਇੰਜ ਲਗਦਾ ਹੈ ਜਿਵੇਂ ਇਹ ਉਸਦੀ ਅੱਖੀਂ ਡਿੱਠੀ ਘਟਨਾ ਹੈ ਜਿਸਨੂੰ ਇਸਨੇ ਪਲਾਟ ਵਿਚ ਬੰਨ੍ਹਿਆ ਹੈ। ਸਾਡੇ ਅਜੋਕੇ ਸਮਾਜ ਦੀ ਇਹ ਵਿਡੰਬਨਾ ਕਹੀ ਜਾ ਸਕਦੀ ਹੈ, ਕਿ ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਬਹੁਤਾ ਧਿਆਨ ਦਿਖਾਵੇ ਵਾਲੇ ਜੀਵਨ ਵੱਲ ਹੋ ਗਿਆ ਹੈ।

ਅੱਜ ਦੀ ਨਵੀਂ ਪੀੜ੍ਹੀ ਸੁੱਖ-ਸੁਵਿਧਾਵਾਂ ਦੀਆਂ ਵਸਤਾਂ ਇਕੱਤਰ ਕਰਨ ਕਰਕੇ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੇ ਅਸਲੀ ਰੁਮਾਂਸ ਤੇ ਆਨੰਦ ਤੋਂ ਵਾਂਝੀ ਹੁੰਦੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਵਿਦੇਸ਼ ਵਿੱਚ ਗਏ ਬੱਚਿਆਂ ਕੋਲ ਕੰਮਾਂ ਦੇ ਰੁਝੇਵਿਆਂ ਕਰਕੇ ਆਪਣੇ ਪਰਿਵਾਰਕ ਮੈਂਬਰਾਂ ਨਾਲ ਸੁੱਖਮਈ ਪੱਲ ਬਿਤਾਉਣ ਦਾ, ਫ਼ੁਰਸਤ ਨਾਲ ਮਿਲਣ ਦਾ ਵੀ ਸਮਾਂ ਨਹੀਂ ਹੈ, ਸਗੋਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਪੈਸਾ ਕਮਾਉਣ ਦੇ ਚੱਕਰ ਵਿੱਚ ਮਸ਼ੀਨ ਵਰਗੀ ਬਣਦੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਵਿਦੇਸ਼ਾਂ ਵਿੱਚ ਗਏ ਬੱਚੇ ਆਪਣੇ ਮਾਪਿਆਂ ਲਈ ਬਾਜ਼ਾਰ ਦੀਆਂ ਅਨੇਕਾਂ ਵਸਤਾਂ ਤਾਂ ਜ਼ਰੂਰ ਭੇਜਦੇ ਹਨ, ਪਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਤੋਂ ਬਗ਼ੈਰ ਪਿੱਛੇ ਬਜ਼ੁਰਗ ਮਾਪੇ ਇੱਥੇ ਇਕੱਲਤਾ ਦਾ ਸੰਤਾਪ ਹੰਢਾ ਰਹੇ ਹਨ। ਪੁਰਾਣੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੀ ਨਿੱਜਤਾ ਅਤੇ ਸੰਵੇਦਨਾ ਨੂੰ ਚੰਗੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਮਾਨਣ ਵਾਲੀ ਹੈ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਲਈ ਇਨ੍ਹਾਂ ਬਾਜ਼ਾਰੀ ਵਸਤੂਆਂ ਦੀ ਥਾਂ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੀ ਅਹਿਮੀਅਤ ਵੱਧ ਹੈ। ਬੱਚਿਆਂ ਦੀ ਕੜੀ ਮਿਹਨਤ ਕਰਕੇ ਮਾਪਿਆਂ ਕੋਲ਼ ਬਾਜ਼ਾਰ ਦੀਆਂ ਵਸਤੂਆਂ ਤਾਂ ਮੌਜੂਦ ਹਨ, ਪਰ ਵੱਸਤਾਂ ਸਦੀਵੀ ਆਨੰਦ ਤੋਂ ਵਾਂਝੀਆਂ ਹੁੰਦੀਆਂ ਹਨ। ਇੱਥੇ ਇੱਕ ਗੱਲ ਖਿਆਲ ਕਰਨ ਵਾਲੀ ਹੈ ਕਿ ਵਿਦੇਸ਼ ਜਾ ਕੇ ਮਿਹਨਤ ਕਰਨਾ ਕਈਆਂ ਲਈ ਤਾਂ ਮਜ਼ਬੂਰੀ ਹੈ ਤੇ ਬਹੁਤੀਆਂ ਲਈ ਇਹ ਰੁਝਾਨ ਸਿਰਫ ਲਗਜ਼ਰੀ ਜੀਵਨ ਜਾਂਚ ਅਪਣਾਉਣ ਕਰਕੇ ਵੀ ਵਧਿਆ ਹੈ, ਦੇਸ਼ ਵਿੱਚ ਰੋਜ਼ਗਾਰ ਦੀ ਘਾਟ ਵੀ ਇਸਦਾ ਇਕ ਕਾਰਣ ਹੈ। ਜਿਹੜੇ ਬੱਚੇ ਸਿਰਫ ਪੱਛਮ ਦੀ ਚਕਾਚੌਂਧ ਤੋਂ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਹੋ ਕੇ ਵਿਦੇਸ਼ ਵਲ ਰੁੱਖ ਕਰਦੇ ਹਨ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਹਿਰਦੇ ਵਿੱਚ ਪਿੱਛੇ ਰਹਿੰਦੇ ਮਾਪਿਆਂ ਲਈ ਜਾਂ ਹੋਰ

ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਲਈ ਮੋਹ ਘੱਟ ਹੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ, ਕਿਉਂਕਿ ਉਹ ਆਪਣੀ ਇੱਛਾ ਮੁਤਾਬਿਕ ਇਸ ਨੂੰ ਚੁਣਦੇ ਹਨ। ਵਿਚਾਰਾਧੀਨ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਨੇ ਵਿਦੇਸ਼ ਗਏ ਮੁੰਡੇ ਨੂੰ ਇਕ ਵਾਰੀ ਮਿਲਣ ਦੀ ਇੱਛਾ ਵਿੱਚ ਵਿਛੋੜੇ ਦਾ ਸੰਤਾਪ ਭੋਗ ਰਹੇ ਮਾਪਿਆਂ ਦੇ ਦੁੱਖ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਮੈਂ ਮੂਲਕ ਬਿਰਤਾਂਤ ਵਿਧੀ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ। ਵਿਦੇਸ਼ ਗਏ ਮੁੰਡੇ ਦਾ ਪਿਓ ਆਖਦਾ ਹੈ:-

"ਏ.ਸੀ., ਐਲ.ਸੀ.ਡੀ., ਫਰਿੱਜ, ਮਾਈਕਰੋਵੇਵ, ਬੇਟੇ ਨਾਲ ਵੀਡੀਓ ਕਾਲ ਕਰਨ ਲਈ ਸਮਾਰਟ ਫੋਨ, ਲੈਪਟੋਪ ਅਜਿਹੀਆਂ ਹੋਰ ਵੀ ਢੇਰਾਂ ਚੀਜ਼ਾਂ ਨਾਲ ਘਿਰੇ ਅਸੀਂ ਉਸ ਪਲ ਨੂੰ ਤਰਸਦੇ ਰਹਿੰਦੇ ਹਾਂ, ਜੋ ਸਾਨੂੰ ਖੁਸ਼ੀ ਜੋਸ਼ ਅਤੇ ਉਮੰਗ ਨਾਲ ਭਰ ਦੇਵੇ। ਕੁਝ ਪਲਾਂ ਲਈ ਹੀ ਸਹੀ ਸਾਨੂੰ ਕੱਢੇ ਇਸ ਠਹਿਰੀ ਹੋਈ ਰੁਟੀਨ ਚੋਂ।"[3]

ਇਨਸਾਨ ਦੀ ਤਰੱਕੀ ਜੇ ਉਸ ਨੂੰ ਸੁੱਖ ਦੇਣ ਦਾ ਕਾਰਨ ਬਣੀ ਹੈ ਤਾਂ ਇਹ ਉਸ ਲਈ ਦੁੱਖ ਦਾ ਕਾਰਨ ਵੀ ਬਣੀ ਹੈ। ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਨੇ ਸਮੁੱਚੇ ਸੰਸਾਰ ਵਿੱਚ ਰਹਿਣ ਵਾਲੇ ਮਨੁੱਖਾਂ ਨੂੰ ਇੰਟਰਨੈੱਟ ਦੇ ਰਾਹੀਂ ਇੱਕ ਪਿੰਡ ਦੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਇਕੱਠਾ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ, ਜਿਸਦੇ ਚੱਲਦਿਆਂ ਸਾਨੂੰ ਤਰੱਕੀ ਕਰਨ ਦੇ ਨਵੇਂ ਮੌਕੇ ਮਿਲੇ ਹਨ, ਇਸ ਰੁਚੀ ਅਤੇ ਉੱਨਤੀ ਦੀ ਲਾਲਸਾ ਨੇ ਸਾਡਾ ਰੁੱਖ ਬਾਹਰਲੇ ਮੁਲਕਾਂ ਵੱਲ ਮੋੜਿਆ ਹੈ ਤੇ ਮਾਂ-ਪਿਓ ਵੀ ਆਪਣੇ ਬੱਚਿਆ ਨੂੰ ਬਾਹਰਲੇ ਮੁਲਕਾਂ ਵਿੱਚ ਭੇਜਣ ਲਈ ਤਿਆਰ ਹਨ। ਪਰ ਧਿਆਨ ਨਾਲ ਵੇਖਿਆਂ ਇਸ ਪਿੱਛੇ ਸਾਡੇ ਦੇਸ਼ ਵਿਚ ਵੱਧ ਰਹੀ ਬੇਰੁਜ਼ਗਾਰੀ ਇੱਕ ਵੱਡਾ ਕਾਰਣ ਨਜ਼ਰ ਆਉਂਦੀ ਹੈ। ਜਿਸਦੇ ਚਲਦਿਆਂ ਮਾਪਿਆਂ ਨੂੰ ਮਜ਼ਬੂਰਨ ਆਪਣੇ ਬੱਚਿਆਂ ਨੂੰ ਵਿਦੇਸ਼ ਤੋਰਨਾ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਜਿਸ ਲਈ ਯੂਵਾ ਪੀੜ੍ਹੀ ਹਰ ਤਰੀਕੇ ਦਾ ਸਮਝੌਤਾ ਕਰਨ ਲਈ ਤਿਆਰ-ਬਰ-ਤਿਆਰ ਹੈ। ਪਰੰਤੂ ਉੱਥੇ ਕੁਝ ਸਮਾਂ ਬਿਤਾਉਣ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਪੱਛਮੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ, ਓਥੋਂ ਦਾ ਰਹਿਣ-ਸਹਿਣ ਉੱਚਾ ਪਦਾਰਥਕ ਜੀਵਨ ਪੱਧਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਤੇ ਅਪਣਾ ਪਰਭਾਵ ਪਾਉਣਾ ਆਰੰਭ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਕਹਾਣੀ ਦੇ ਪਾਤਰ ਦਾ ਇਕਲੌਤਾ ਪੁੱਤਰ ਜੋ ਕਿ ਬਾਹਰਲੇ ਦੇਸ਼ ਵਿੱਚ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਪੈਸਾ ਕਮਾਉਣ ਦੀ ਦੌੜ ਵਿੱਚ ਮਾਂ-ਪਿਉ ਵਰਗੇ ਨਿੱਘੇ ਰਿਸ਼ਤੇ ਨੂੰ ਅਣਦੇਖਾ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਰਿਸ਼ਤਾ ਵੀ ਔਲਾਦ ਲਈ ਅੱਜ ਰਸਮੀ ਹੋ ਗਿਆ ਜਾਪਦਾ ਹੈ। ਵਿਗਿਆਨਕ ਯੁੱਗ ਵਿੱਚ ਜਿੱਥੇ ਮਨੁੱਖ ਬਹੁਤ ਤਰੱਕੀ ਕਰ ਗਿਆ ਹੈ, ਉੱਥੇ ਕੰਮਾਂ ਦੇ ਕਰਕੇ ਨਵੀਂ ਪੀੜ੍ਹੀ ਕੋਲ ਸੁੱਖ-ਦੁੱਖ ਸਾਂਝੇ ਕਰਨ ਦਾ ਸਮਾਂ ਨਹੀਂ ਹੈ, ਜਿਸਦੇ ਚੱਲਦਿਆਂ ਨਵੀਂ ਪੀੜ੍ਹੀ ਮਾਪਿਆਂ ਪ੍ਰਤੀ ਫਰਜ਼ਾਂ ਤੋਂ ਬੇਮੁਖ ਹੋ ਰਹੀ ਹੈ। ਦੌਲਤ, ਸ਼ੋਹਰਤ ਕਮਾਉਣ ਦੀ ਲਾਲਸਾ ਨੇ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਅੰਦਰੋਂ ਰਿਸ਼ਤਿਆ ਦੀ ਸੰਵੇਦਨਾ ਨੂੰ ਖ਼ਤਮ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਮਨੁੱਖ ਚਲਦੀ-ਫਿਰਦੀ ਮਸ਼ੀਨ ਵਾਂਗੂੰ ਹਰ ਰੋਜ਼ ਦੇ ਕਾਰਜ ਤਾਂ ਕਰਦਾ ਹੈ ਪਰ ਉਸਦੇ ਹਿਰਦੇ ਵਿੱਚੋਂ ਮਾਨਵੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੀਆਂ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਖ਼ਤਮ ਹੋ ਗਈਆਂ ਹਨ। ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਵਿਦੇਸ਼ ਗਿਆ ਮੁੰਡਾ ਇਸੇ ਪਦਾਰਥਵਾਦੀ ਦੌੜ ਵਿੱਚ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹੈ। ਉਹਦੇ ਕੋਲ ਆਪਣੇ ਮਾਂ-ਪਿਓ ਲਈ ਵੀ ਵਿਹਲ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਜਦੋਂ ਪਿਓ ਕੋਲ ਉਸਦਾ ਫ਼ੋਨ ਆਉਂਦਾ ਹੈ, ਕਿ ਉਹ ਭਾਰਤ, ਕੰਪਨੀ ਦੇ ਕਿਸੇ ਕੰਮ ਲਈ ਆ ਰਿਹਾ ਹੈ ਤਾਂ ਲਗੇ ਹੱਥੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਵੀ ਮਿਲ ਕੇ ਜਾਵੇਗਾ! ਇਹ ਖ਼ਬਰ ਸੁਣਕੇ ਉਸਦੇ ਪਿਓ ਨੂੰ ਲਗਦਾ ਹੈ, ਜਿਵੇਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਵਰ੍ਹਿਆਂ ਤੋਂ ਖਲੋਤੀ ਜਿੰਦਗੀ ਵਿੱਚ ਨਵੀਂ ਬਹਾਰ ਆ ਗਈ ਹੋਵੇ ਜਿਸਨੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਨੂੰ ਇੱਕ ਰਵਾਨਗੀ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕੀਤੀ ਹੋਵੇ। ਪਿਓ ਦੇ ਇਹ ਸ਼ਬਦ ਉਸਦੇ ਅੰਦਰਲੇ ਚਾਅ ਨੂੰ ਬਿਆਨ ਕਰਦੇ ਹਨ, ਉਹ ਆਖਦਾ ਹੈ:-

"ਮੈਨੂੰ ਚਾਅ ਚੜ੍ਹ ਗਿਆ ਹੈ ਪਾਰਕ ਵਿਚ ਕ੍ਰਿਕਟ ਖੇਡ ਰਹੇ ਬੱਚਿਆਂ ਵੱਲ ਦੇਖਿਆ। ਜਿਵੇਂ ਕਿ ਇਹ ਖੁਸ਼ੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨਾਲ ਸਾਂਝੀ ਕਰਨੀ ਚਾਹੁੰਦਾ ਹੋਵਾਂ, ਪਰ ਇਹ ਖੁਸ਼ੀ ਤਾਂ ਮੈਂ ਕਿਸੇ ਖਾਸ ਨਾਲ ਸਾਂਝੀ ਕਰਨੀ ਸੀ।"[4]

ਪੁੱਤਰ ਦੇ ਆਉਣ ਦੀ ਖੁਸ਼ੀ ਉਸਦਾ ਪਿਓ ਆਪਣੀ ਘਰ ਵਾਲੀ ਨਾਲ ਸਾਂਝਾ ਕਰਦਾ ਹੈ, ਦੋਵਾਂ ਨੂੰ ਚਾਅ ਚੜ੍ਹ ਜਾਂਦਾ ਹੈ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਖੁਸ਼ੀ ਦਾ ਕੋਈ ਟਿਕਾਣਾ ਨਹੀਂ ਰਹਿੰਦਾ। ਪੁੱਤਰ ਦੇ ਆਉਣ ਦੀ ਖ਼ਬਰ ਸੁਣ ਕੇ ਮਾਂ ਪੁੱਤਰ ਲਈ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਪਕਵਾਨ ਬਨਾਉਣ ਬਾਰੇ ਸੋਚਣ ਲਗਦੀ ਹੈ। ਉਸਦੀ ਮਮਤਾ ਡੁੱਲ੍ਹ-ਡੁੱਲ੍ਹ ਪੈਂਦੀ ਹੈ। ਪਿਓ ਬਜ਼ਾਰ ਤੋਂ ਸਾਮਾਨ ਲਿਆਉਣ ਲਈ ਲਿਸਟ

ਬਣਾਉਣ ਲੱਗਦਾ ਹੈ। ਘਰ ਵਿੱਚ ਖੁਸ਼ੀ ਦਾ ਮਾਹੌਲ ਛਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਵੱਖੋ ਵੱਖ ਢੰਗ ਦੇ ਖਾਣੇ ਬਣਾਏ ਜਾਂਦੇ ਨੇ। ਮਾਂ-ਪਿਓ ਇਨ੍ਹਾਂ ਬੇਸ਼ਕੀਮਤੀ ਪਲਾਂ ਨੂੰ ਖੁੱਲ੍ਹ ਕੇ ਮਾਣ ਰਹੇ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਪਰ ਅਚਾਨਕ ਹੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਮੁੰਡੇ ਦਾ ਘਰ ਨਾ ਆਉਣ ਸੰਬੰਧੀ ਮੈਸੇਜ ਮਾਂ-ਪਿਓ ਤੇ ਬਿਜਲੀ ਵਾਂਗ ਗਿਰਦਾ ਹੈ। ਵਰ੍ਹਿਆਂ ਬਾਅਦ ਆਉਣ ਵਾਲੀ ਖੁਸ਼ੀ ਪਲਾਂ ਵਿੱਚ ਹੀ ਉਦਾਸੀ ਵਿੱਚ ਬਦਲ ਜਾਂਦੀ ਹੈ, ਜਦੋਂ ਪੁੱਤਰ ਦੱਸਦਾ ਹੈ:-

"ਸੌਰੀ ਪਾਪਾ! ਇੱਕ ਜ਼ਰੂਰੀ ਕੰਮ ਨਿਕਲ ਆਇਆ! ਆ ਨਹੀਂ ਹੋਣਾ ਮੰਮਾ ਨੂੰ ਦੱਸ ਦੇਣਾ ਪਲੀਜ਼।"[5]

ਮਾਂ-ਪਿਓ ਦੀ ਜਿੰਦਗੀ ਵਿੱਚੋਂ ਪਲਾਂ ਵਿੱਚ ਪੈਦਾ ਹੋਏ ਖ਼ੁਸ਼ੀ ਤੇ ਚਾਅ ਦੇ ਪੱਲ ਛਿਣਾਂ ਵਿੱਚ ਦੁੱਖ ਵਿੱਚ ਬਦਲ ਜਾਂਦੇ ਹਨ, ਜਦੋਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਮੁੰਡਾ ਕੰਮ ਦੇ ਰੁਝੇਵਿਆਂ ਕਰਕੇ ਘਰ ਆਉਣ ਤੋਂ ਮਨਾ ਕਰ ਦਿੰਦਾ ਹੈ। ਅਜੋਕੇ ਦੌਰ ਵਿੱਚ ਜਿੰਦਗੀ ਵਿੱਚ ਭੱਜ-ਨੱਠ ਇੰਨੀ ਵੱਧ ਚੁੱਕੀ ਹੈ ਕਿ ਆਦਮੀ ਲਈ ਨਾ ਚਾਹੁੰਦਿਆਂ ਵੀ ਕੰਮ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਤੋਂ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੋ ਗਏ ਹਨ। ਕੰਮਾਂ ਦੇ ਰੁਝੇਵਿਆਂ ਤੋਂ ਪਰਿਵਾਰ ਲਈ ਵੀ ਫ਼ੁਰਸਤ ਨਹੀਂ। ਸ਼ੋਹਰਤ ਦੇ ਨਸ਼ੇ ਦੀ ਚਕਾਚੌਂਧ ਨੇ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਕੰਮ ਕਰਨ ਵਾਲੀ ਸਵੇਂਦਨਹੀਨ ਮਸ਼ੀਨ ਬਣਾ ਦਿੱਤਾ ਹੈ, ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਮਨੁੱਖ ਸਿਰਫ਼ ਆਪਣੇ ਨਿੱਜ ਬਾਰੇ ਸੋਚਦਾ ਹੈ। ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਵਿੱਚ ਮਾਪਿਆਂ ਦੀਆਂ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਦੀ ਕਦਰ ਬੱਚਿਆਂ ਲਈ ਘੱਟਦੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਕਾਮਯਾਬੀ ਤੇ ਧੰਨ ਕਮਾਉਣ ਦੀ ਲਾਲਸਾ ਨੇ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਅੰਨ੍ਹਾ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਇਸਲਈ ਬੱਚੇ, ਜਨਮ ਦੇਣ ਵਾਲੇ ਮਾਪਿਆਂ ਨੂੰ ਵੀ ਅਣਗੌਲਿਆਂ ਕਰ ਰਹੇ ਹਨ। ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਪ੍ਰਵਾਸ ਵਿੱਚ ਰਹਿ ਰਹੇ ਬੱਚਿਆਂ ਅਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਮਿਲਣ ਲਈ ਤਰਸਦੇ ਮਾਪਿਆਂ ਦੇ ਦੁੱਖਾਂ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ, ਕਿ ਕਿਵੇਂ ਪ੍ਰਦੇਸ਼ ਵਿੱਚ ਗਏ ਮੁੰਡੇ ਕੁੜੀਆਂ ਦੀ ਅਜੋਕੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੇ ਫ਼ਰਜ਼ਾਂ ਤੋਂ ਬੇਮੁੱਖ ਹੋ ਗਈ ਹੈ। ਘਰ ਨਾ ਆਉਣ ਦੀ ਸੂਚਨਾ ਇੱਕ ਮੈਸੇਜ ਰਾਹੀਂ ਦੇਣਾ, ਪੁੱਤਰ ਦਾ ਆਪਣੇ ਮਾਪਿਆਂ ਵੱਲੋਂ ਬੇਮੁੱਖ ਹੋਣਾ ਹੀ ਦਰਸਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਪੁਰਾਣੀ ਅਤੇ ਨਵੀਂ ਪੀੜ੍ਹੀ ਵਿਚਲੇ ਪੀੜ੍ਹੀ-ਪਾੜੇ (Generation Gap) ਨੂੰ ਵੀ ਦਰਸਾਇਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਇੱਕ ਪੀੜ੍ਹੀ ਤੇਜ ਗਤੀ ਵਾਲੀ ਵਿਕਸਿਤ ਜਿੰਦਗੀ ਕਰਕੇ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਤੋਂ ਬੇਮੁੱਖ ਹੋ ਕੇ ਜੀਅ ਰਹੀ ਹੈ, ਦੂਜੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਉਹ ਬਜ਼ੁਰਗ ਪੀੜ੍ਹੀ ਹੈ ਜੋ ਇੱਕ-ਦੂਜੇ ਦੇ ਸੁੱਖਾਂ-ਦੁੱਖਾਂ ਵਿੱਚ ਮੋਢਾ ਲਾ ਖਲੋਂਦੀ ਨਜ਼ਰ ਆਉਂਦੀ ਹੈ। ਘੱਟ ਪੜ੍ਹੀ-ਲਿੱਖੀ ਇਹ ਪੀੜ੍ਹੀ ਇੱਕ ਦੂਜੇ ਦੀ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਦੀ ਕਦਰ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਪੁੱਤਰ ਦੇ ਘਰ ਨਾ ਆਉਣਾ ਦਾ ਮੈਸੇਜ ਆਪਣੀ ਪਤਨੀ ਤੋਂ ਕੁੱਝ ਸਮਾਂ ਛੁੱਪਾ ਕੇ ਰੱਖਣਾ ਮੁੱਖ ਪਾਤਰ ਦੀ ਮਜ਼ਬੂਰੀ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਆਪਣੀ ਜੀਵਨ ਸਾਥਣ ਦੀ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਦੀ ਕਦਰ ਕਰਨਾ ਤੇ ਉਸਦੀ ਪਰਵਾਹ ਕਰਨਾ ਹੈ। ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਦੋ ਪੀੜ੍ਹੀਆਂ ਦੀ ਸੋਚ ਅਤੇ ਸਮਝ ਨੂੰ ਰੂਪਮਾਨ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਮੈਂ ਪਾਤਰ (ਮੁੰਡੇ ਦਾ ਪਿਓ) ਆਪਣੇ ਪਿਓ ਵਾਲੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਨੂੰ ਯਾਦ ਕਰਦਾ ਹੈ, ਕਿ ਅਨਪੜ੍ਹ ਕਹੀ ਜਾਣ ਵਾਲੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੀ ਸਾਂਝ ਵਿੱਚ ਵਿਸ਼ਵਾਸ ਰੱਖਦੀ ਸੀ। ਮੈਂ ਪਾਤਰ ਦਾ ਜਦੋਂ ਵਿਆਹ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਉਸ ਦਾ ਪਿਓ ਪੁੱਤਰ ਦੇ ਬਿਨ ਬੋਲੇ ਹੀ ਪੁੱਤਰ ਦੇ ਦਿਲ ਦੀ ਸਮਝ ਲੈਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ:- "ਯਾਰ ਤੂੰ ਇਉਂ ਕਰ....."

"ਹਾਂ ਜੀ"
"ਬਹੂ ਨੂੰ ਨਾਲ ਈ ਲੈਜਾ"
"ਹਾਂ ਜੀ"
"ਹਾਂ ਜੀ ਕਿ?"
"ਨਹੀਂ ਜੀ, ਮੇਰਾ ਮਤਲਬ...!"

ਮੇਰੇ ਮੂੰਹੋਂ ਪਤਾ ਨਹੀਂ ਕਿਵੇਂ ਹਾਂਜੀ-ਹਾਂਜੀ ਨਿਕਲਦਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਸੀ।

"ਤੇਰਾ ਮਤਲਬ ਮੈਂ ਸਭ ਸਮਝਦਾ। ਠੀਕ ਐ ਨਾ? ਬਾਪੂ ਵੀ ਬਹੁਤ ਖੁਸ਼ ਨਜ਼ਰ ਆ ਰਿਹਾ ਸੀ ਤੇ ਮੇਰੀ ਖ਼ੁਸ਼ੀ ਦਾ ਤਾਂ ਕਹਿਣਾ ਈ ਕੀ ਸੀ।"[6]

ਇਥੇ ਪੁਰਾਈ ਤੇ ਨਵੀਂ ਪੀੜ੍ਹੀ ਵਿਚਲਾ ਫ਼ਰਕ ਮਾਂ-ਪਿਓ ਦਾ ਸਤਿਕਾਰ ਤੇ ਪੁਰਾਣੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦੀ ਸਿਆਣਪ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਪਰ ਨਵੀਂ ਪੀੜ੍ਹੀ ਤਰੱਕੀ, ਪਸੰਦ ਤੇ ਵੱਧ ਪੜ੍ਹੀ-ਲਿੱਖੀ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਹਰ ਗੱਲ ਤੇ ਸੌਰੀ ਕਹਿ ਕੇ ਹੀ ਖਹਿੜਾ ਛਡਾਉਣ ਵਾਲੀ ਹੈ। ਪੁੱਤਰ ਦਾ ਨਾ ਆਉਣ ਤੇ ਸੌਰੀ ਕਹਿ ਦੇਣਾ ਹੀ ਉਸ ਵਲੋਂ ਕਾਫ਼ੀ ਹੈ। ਪਰ ਮਾਂ-ਪਿਓ ਦੇ ਚਾਵਾਂ ਤੋਂ ਉਹ ਅਨਜਾਣ ਹੈ। ਕਹਾਣੀ ਵਿਚ ਏਹੀ ਦੁਖਾਂਤ ਮੈਂ ਪਾਤਰ ਦਾ ਮਿੱਤਰ ਐਕਸ਼ੀਅਨ ਗੁਪਤਾ ਮਹਿਸੂਸ ਕਰਦਾ ਹੈ:-

"ਬਾਈ ਜੀ, ਦੋ ਸਾਲ ਹੋ ਗਏ ਮੁੰਡੇ ਦਾ ਮੂੰਹ ਦੇਖੇ ਨੂੰ। ਕਦੇ ਅਮਰੀਕਾ ਕਦੇ ਸਿੰਗਾਪੁਰ, ਕਦੇ ਕਿੱਥੇ,.... ਬੱਸ ਇਹ ਘਰ ਹੀ ਦੂਰ ਹੋ ਗਿਆ ਉਸਤੋਂ। ਲੱਖਾਂ ਦਾ ਪੈਕੇਜ ਐ...... ਤਨਖਾਹ ਬੈਂਕ ਵਿੱਚ ਕੱਠੀ ਹੋਈ ਜਾਂਦੀ ਐ। ਮੇਰੀ ਪੈਨਸ਼ਨ ਵੀ ਖਰਚਣ ਵਾਲ਼ਾ ਕੋਈ ਨਹੀਂ।"[7]

ਇਹ ਸ਼ਬਦ ਮਾਂ-ਬਾਪ ਦੀ ਬੇਬਸੀ ਤੇ ਸੰਤਾਪਮਈ ਅਵਸਥਾ ਨੂੰ ਦਰਸਾਉਂਦੇ ਹਨ। ਪੈਸਾ ਹੀ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਹਰ ਖੁਸ਼ੀ ਨਹੀਂ ਦੇ ਸਕਦਾ। ਇਸ ਦੇ ਗਵਾਹ ਮੈਂ ਪਾਤਰ ਤੇ ਉਸਦੀ ਪਤਨੀ ਅਤੇ ਐਕਸ਼ੀਅਨ ਗੁਪਤਾ ਹਨ। ਪੈਸਾ ਤੇ ਸੁੱਖ ਸੁਵਿਧਾਵਾਂ ਦੀ ਇਨ੍ਹਾਂ ਕੋਲ਼ ਕੋਈ ਘਾਟ ਨਹੀਂ। ਪਰ ਉਲਾਦ ਨੂੰ ਮਿਲਣ ਲਈ, ਵੇਖਣ ਲਈ ਤਰਸ ਰਹੇ ਹਨ। ਇਹ ਪੀੜ੍ਹੀ ਇਕੱਲਤਾ ਦਾ ਸੰਤਾਪ ਹੰਢਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਮਾਨਵ ਤਰਾਸਦੀ ਦੀਆਂ ਛੋਹਾਂ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਆਰਥਿਕ ਵਿਕਾਸ ਦੀ ਲਾਲਸਾ ਕਰਕੇ ਅੱਜ ਹਰ ਮਨੁੱਖ ਦੂਜੇ ਨਾਲੋਂ ਇਸ ਕਦਰ ਟੁੱਟ ਚੁੱਕਿਆ ਹੈ, ਕਿ ਉਸਨੂੰ ਆਪਣੀ ਪਛਾਣ ਦਾ ਸੰਕਟ ਸਤਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਕੱਲਤਾ ਭੋਗਦਾ ਮਨੁੱਖ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਪ੍ਰਤੀ ਚਿੰਤਿਤ ਹੈ। ਪਰ ਉਸਨੂੰ ਇਸਦਾ ਕੋਈ ਹੱਲ ਨਹੀਂ ਲੱਭ ਰਿਹਾ। ਉਹ ਚਾਹ ਕੇ ਵੀ ਪਰਿਵਾਰ ਨਾਲ਼ ਖੁਸ਼ੀ ਭਰਿਆ ਸਮਾਂ ਨਹੀਂ ਜਿਓ ਸੱਕਦਾ।

ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਰਾਹੀਂ ਇੱਕ ਪਰਿਵਾਰ ਦੀ ਹੀ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਲੱਖਾਂ ਪਰਿਵਾਰਾਂ ਦੀ ਵਾਸਤਵਿਕ ਤਸਵੀਰ ਨੂੰ ਇਸ ਗਲਪ ਰਚਨਾ ਰਾਹੀਂ ਰੂਪਮਾਨ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਜਿੰਦਗੀ ਦੇ ਯਥਾਰਥ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਨਵੀਂ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਤੇ ਤਰੱਕੀ ਪਸੰਦ ਰਵਈਏ ਨੂੰ ਉਜਾਗਰ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਨੇ 2016 ਵਿੱਚ ਹੀ ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਲਿਖ ਕੇ ਅੱਜ ਦੇ ਸਮਾਜ ਦੀ ਤਸਵੀਰ ਨੂੰ ਯਥਾਰਥਵਾਦੀ ਵਿਧੀ ਰਾਹੀਂ ਪੇਸ਼ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਸੀ। 2022-23 ਵਿੱਚ ਬੇਰੁਜਗਾਰੀ ਦਾ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਜੋ ਹੜ ਆਇਆ, ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਨੌਜਵਾਨ ਬਾਹਰਲੇ ਦੇਸ਼ਾਂ ਵਿੱਚ ਜਾ ਕੇ ਸੈਟਲ ਹੋਣਾ ਚਾਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਸਰਬ ਵਿਆਪਕ ਸੱਚ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਨੇ 2016 ਵਿਚ ਹੀ "ਥੈਂਕਸ ਏ ਲੌਟ ਪੁੱਤਰਾ" ਕਹਾਣੀ ਰਾਹੀਂ ਕਰ ਦਿੱਤੀ ਸੀ। ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਇੱਕ ਯਥਾਰਥਵਾਦੀ ਕਹਾਣੀਕਾਰ ਹੈ ਜੋ ਵਰਤਮਾਨ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਰਵਈਏ ਨੂੰ ਵਿਅੰਗਮਈ ਤਰੀਕੇ ਨਾਲ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ।

"ਥੈਂਕਸ ਏ ਲੌਟ ਪੁੱਤਰਾ" ਕਹਾਣੀ ਰਾਹੀਂ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਤੇ ਉੱਤਰ-ਆਧੁਨਿਕਤਾ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਸਦਕਾ ਅਤੇ ਪਰਵਾਸ ਧਾਰਨ ਕਰਨ ਕਰਕੇ ਮਨੁੱਖੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਵਿੱਚ ਆਏ ਖਲਾਅ, ਪੱਛਮੀਵਾਦ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ, ਪਦਾਰਥਵਾਦੀ ਪ੍ਰਵਿਰਤੀ, ਵਧੇਰੇ ਧੰਨ ਦੀ ਲਾਲਸਾ ਅਤੇ ਕਾਮਯਾਬੀ ਦੇ ਨਸ਼ੇ ਆਦਿ ਕਈ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ ਨੂੰ ਉੱਪ ਵਿਸ਼ੇ ਵੱਜੋਂ ਲੇਖਕ ਵੱਲੋਂ ਬਾਖ਼ੂਬੀ ਪੇਸ਼ ਕਿੱਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਜਿਸ ਨਾਲ ਅਸੀਂ ਕਹਿ ਸਕਦੇ ਹਾਂ ਕਿ ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਜਨ-ਸਧਾਰਨ ਦੀ ਆਵਾਜ਼ ਹੈ, ਜੋ ਵਰਤਮਾਨ ਸਮਾਜ ਦੇ ਕੌੜੇ ਸੱਚ ਤੇ ਸਮਾਜ ਦੀਆਂ ਗੰਭੀਰ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੀ ਕਲਮ ਰਾਹੀਂ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ।

ਹਵਾਲੇ ਤੇ ਟਿੱਪਣੀਆਂ

1. ਭੁਪਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਖਹਿਰਾ, ਲੋਕਧਾਰਾ ਭਾਸ਼ਾ ਅਤੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰ, ਪੈਪਸੂ ਬੁੱਕ ਡਿਪੋ, ਬੁਕਸ ਮਾਰਕੀਟ, ਪਟਿਆਲਾ,

ਪੰਜਵੀਂ ਵਾਰ, 2005, ਪੰਨਾ 202

2. "ਢਾਹਾਂ ਸਾਹਿਤਕ ਇਨਾਮ 2020 (ਪਹਿਲਾ ਇਨਾਮ: ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ, ਦੂਜਾ ਇਨਾਮ: ਜ਼ੂਬੈਰ ਅਹਿਮਦ, ਤੀਸਰਾ ਇਨਾਮ: ਹਰਕੀਰਤ ਕੌਰ ਚਹਿਲ)
3. ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ, "ਥੈਂਕਸ ਏ ਲੌਟ ਪੁੱਤਰਾ", ਨਵਯੁਗ ਪਬਲਿਸਰਜ਼, 2016, ਪੰਨਾ 45
4. ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 47
5. ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 55-56
6. ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 55
7. ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 45

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 54-61
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Chlorpyrifos Removal from Synthetic Wastewater Using Horizontal Subsurface Flow Constructed Wetlands with Canna Indica

Krishma Kumari, Deepak Pathania
Richa Kothari, Pankaj Kumar
Department of EVS, Central University of Jammu, Jammu 181143, India.

Abstract :

This study investigates the removal efficiency of chlorpyrifos using a horizontal subsurface flow constructed wetland (HSSF-CW) system under controlled laboratory conditions. Four pilot-scale cells (2×1×1 m) were established with varied substrates: (i) gravel + sand + charcoal + Canna indica, (ii) gravel + sand + Canna indica, (iii) gravel + sand (control, no plants), and (iv) gravel + sand + coconut coir + Canna indica. Synthetic wastewater spiked with chlorpyrifos was introduced at a hydraulic retention time (HRT) of five days and a flow rate of 36 mL/min maintained. Water quality parameters, including pH, electrical conductivity (EC), dissolved oxygen (DO), biological oxygen demand (BOD), oxidation-reduction potential (ORP), and temperature, were monitored weekly over six weeks. Chlorpyrifos concentration was quantified by solvent extraction method followed by gas chromatography–mass spectrometry (GC-MS).

Results showed initially low removal efficiency due to system stabilization; however, after three weeks, a significant increase in removal was observed, indicating improved media sorption and microbial activity. Among all cells, the combination of Canna indica with charcoal achieved the highest chlorpyrifos removal, followed by Canna indica with coconut coir. Sorption to substrate media was the dominant removal pathway, while biodegradation and plant uptake played secondary roles. This study highlights the potential of HSSF-CWs as a sustainable and cost-effective approach for pesticide remediation. Optimization of media selection and stabilization periods is critical for maximizing pesticide removal efficiency.

Keywords : Chlorpyrifos, Constructed wetland, Horizontal subsurface flow, Canna indica, Sorption, Pesticide remediation.

1. Introduction :

Wetlands are unique ecosystems where hydric soils and aquatic vegetation interact to provide ecological services such as water purification, nutrient cycling, and habitat support [1-2]. Beyond their ecological roles, wetlands have been harnessed as engineered systems for wastewater treatment, commonly referred to as constructed wetlands (CWs). These systems mimic natural processes, utilizing plants, substrates, and microbial communities to remove pollutants through physical, chemical, and biological mechanisms [3-4]. Constructed wetlands are generally classified into surface flow and subsurface flow systems, with the latter being particularly effective for treating agrochemical pollutants due to higher contact time between contaminants and substrates. Horizontal subsurface flow constructed wetlands (HSSF-CWs) have gained attention for pesticide remediation, where pollutants are removed primarily by sorption, plant uptake, and microbial degradation [5-6]

Pesticides such as chlorpyrifos, an organophosphate insecticide widely used in agriculture, are persistent in the environment and pose serious ecological and human health risks [7]. Chlorpyrifos residues contaminate soil and water bodies due to runoff and leaching, leading to bioaccumulation and toxicity in aquatic organisms [8]. Conventional treatment technologies often fail to efficiently degrade organophosphate pesticides, necessitating sustainable alternatives [9]. Several studies have demonstrated the effectiveness of CWs in removing pesticides and agrochemicals. For example, Wu et al. (2017) reported high removal of triazophos in HSSF-CWs [10], while Tang et al. (2019) demonstrated first-order kinetics for chlorpyrifos removal, with biodegradation and sorption contributing significantly. However, (Sanjrani et al., 2019) studied performance varies with plant species, substrate media, and environmental conditions [11].

In this context, Canna indica, an ornamental macrophyte with high adaptability and pollutant tolerance, has been used in CWs for nutrient and organic pollutant removal [12]. Its potential for pesticide removal, however, requires further evaluation, particularly when combined with enhanced substrates such as charcoal or coconut coir. The present study investigates the performance of HSSF-CWs planted with Canna indica and amended with different substrates in removing chlorpyrifos from synthetic wastewater. The objectives were (i) to assess the removal efficiency of chlorpyrifos under varying substrate conditions, and (ii) to evaluate associated changes in physico-chemical water quality parameters.

2. Materials and Methods :

2.1 Experimental Setup :

Four HSSF-CW cells (2 m length × 1 m width × 1 m depth) were constructed. Each unit contained a substrate layer (80 cm depth) comprising gravel, small gravel, and sand. Cell configurations

were :

Cell 1 : gravel + sand + charcoal + Canna indica

Cell 2 : gravel + sand + Canna indica

Cell 3 (control) : gravel + sand (no plants)

Cell 4 : gravel + sand + coconut coir + Canna indica

Each unit was supplied with synthetic wastewater spiked with chlorpyrifos at a controlled flow rate (36 mL/min) and HRT of five days.

Fig. 1 Four HSSF-CW cells (2 m length × 1 m width × 1 m depth) were constructed.

2.2 Plant selection and growth :

Canna indica was chosen for its resilience and adaptability in wetland systems. A two-month acclimatization and growth period preceded pesticide introduction to ensure root establishment.

2.3 Sampling and analysis :

Water samples were collected weekly over six weeks using amber glass bottles. Parameters measured included:

pH, EC, ORP : using portable meters.

DO and BOD : determined by Winkler titration and standard methods (APHA, 2017).

Temperature : thermometer measurements.

Chlorpyrifos concentration : liquid–liquid extraction (APHA 6630 B) followed by GC-MS.

3. Results and Discussion :

3.1 System stabilization and pollutant removal :

During the initial two weeks, removal efficiency was low (<30%), reflecting the stabilization period for microbial colonization and plant adaptation. This aligns with previous reports indicating 3–4 months are typically required for optimal CW [13]. By the fourth week, chlorpyrifos removal

increased significantly, with maximum efficiency observed in Cell 1 (Canna indica + charcoal).

3.2 Performance of different media :

Cell 1 (charcoal + Canna indica) achieved the highest chlorpyrifos removal (~70–75%). Charcoal's high surface area enhanced sorption, consistent with findings by [14].

Cell 4 (coconut coir + Canna indica) also performed well (~65%), suggesting lignocellulosic materials provide effective adsorption sites.

Cell 2 (Canna indica only) showed moderate efficiency (~55%), reflecting plant uptake and rhizospheric microbial activity.

Cell 3 (control) achieved the lowest removal (~30%), confirming the essential role of plants and enhanced substrates.

3.3 Physico-chemical water quality parameters :

1. **pH :** remained stable (6.5–7.5), indicating minimal chemical stress on plant and microbial processes.

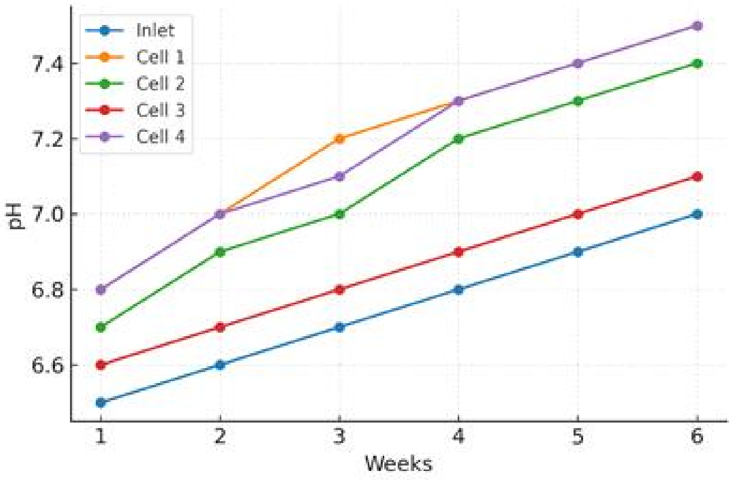

Fig. 2 pH graph for physico-chemical water quality parameters.

2. **EC :** decreased progressively in all cells, reflecting ion uptake and sorption.

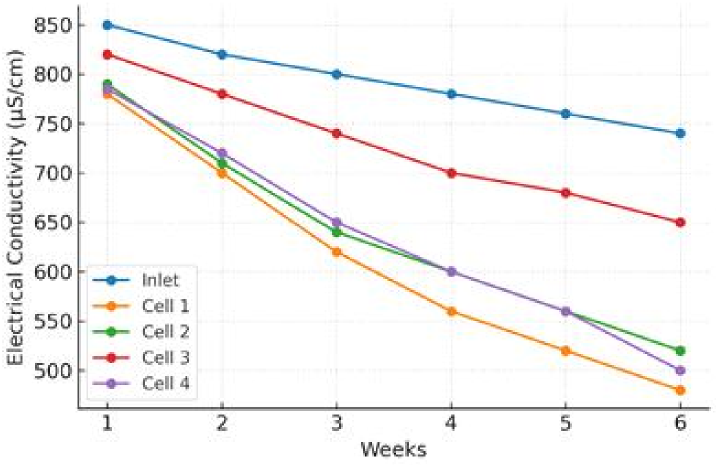

Fig. 3 EC graph for physico-chemical water quality parameters.

3. **DO & BOD :** DO increased in planted cells due to oxygen release from roots, while BOD decreased, indicating biodegradation of organic matter.

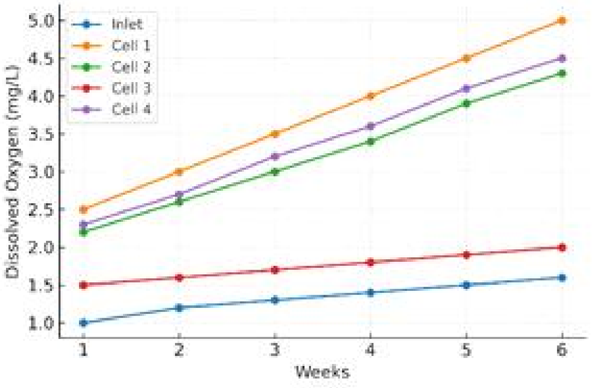

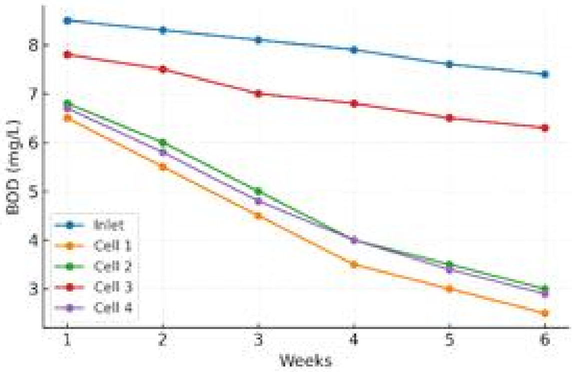

Fig. 4 DO and BOD graph for physico-chemical water quality parameters.

4. **ORP :** positive values in planted cells suggested oxidizing conditions favorable for microbial degradation pathways.

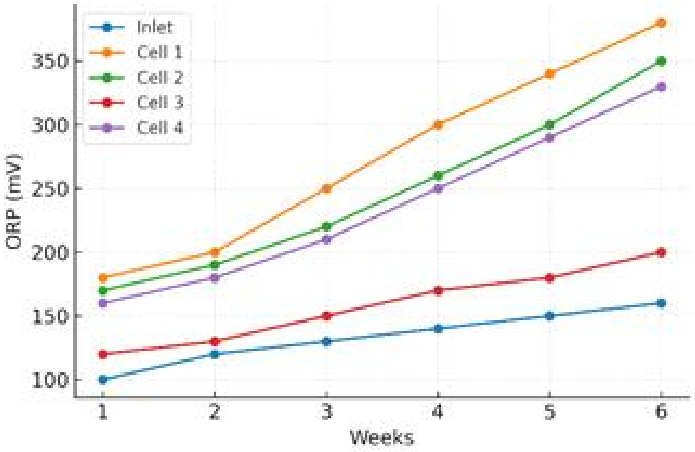

Fig. 5 ORP graph for physico-chemical water quality parameters.

5. **Temperature :** remained constant (22–25 °C), suitable for biological activity.

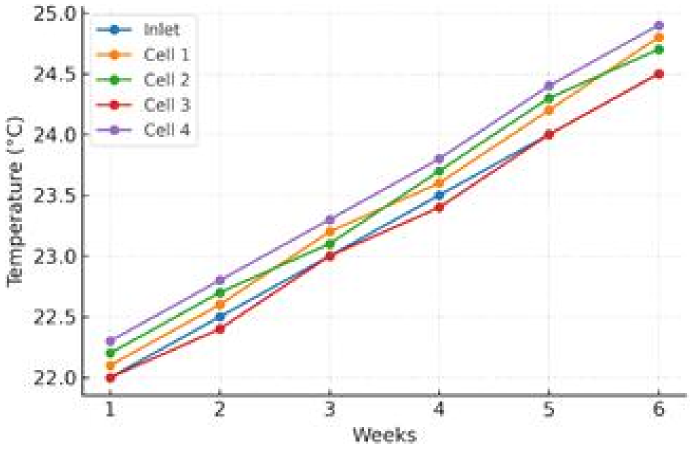

Fig. 6 Temperature graph for physico-chemical water quality parameters.

Week	ORP (mV) — Inlet	ORP (mV) — Cell 1	ORP (mV) — Cell 2	ORP (mV) — Cell 3	ORP (mV) — Cell 4	BOD (mg/L) — Inlet	BOD (mg/L)— Cell 1	BOD (mg/L)— Cell 2	BOD (mg/L)— Cell 3	BOD (mg/L) — Cell 4	DO (mg/L) — Inlet	DO (mg/L) — Cell 1	DO (mg/L) — Cell 2	DO (mg/L) — Cell 3	DO (mg/L) — Cell 4
1	360	320	300	280	310	7.5	4.0	4.5	6.0	5.0	7.2	5.5	5.8	4.5	5.0
2	355	330	310	290	320	7.2	3.8	4.2	5.8	4.8	7.1	5.6	5.9	4.6	5.1
3	350	340	320	300	330	7.0	3.5	4.0	5.5	4.5	7.0	5.7	6.0	4.7	5.2
4	345	350	330	310	340	6.8	3.3	3.8	5.2	4.2	6.9	5.8	6.1	4.8	5.3
5	340	360	340	320	350	6.5	3.0	3.5	5.0	4.0	6.8	5.9	6.2	4.9	5.4
6	335	370	350	330	360	6.2	2.8	3.2	4.8	3.8	6.7	6.0	6.3	5.0	5.5

Table 1 : Six week measurement of pH, EC and Temperature result for Physico-chemical water quality parameters.

Week	pH — Inlet	pH — Cell 1	pH — Cell 2	pH — Cell 3	pH — Cell 4	EC (µS/cm) — Inlet	EC (µS/cm) —Cell 1	EC (µS/cm) —Cell 2	EC (µS/cm) —Cell 3	EC (µS/cm) —Cell 4	Temp (°C) — Inlet	Temp (°C) — Cell 1	Temp (°C) — Cell 2	Temp (°C) — Cell 3	Temp (°C) — Cell 4
1	7.2	6.9	6.8	7.0	6.95	820	600	650	700	680	24.5	24.0	23.8	23.5	24.2
2	7.1	7.0	6.9	7.0	7.0	810	580	630	690	660	24.7	24.1	24.0	23.7	24.3
3	7.0	7.1	7.0	7.05	7.05	800	560	610	680	640	25.0	24.3	24.2	24.0	24.5
4	7.1	7.2	7.1	7.1	7.1	790	540	590	670	620	25.2	24.5	24.4	24.1	24.6
5	7.0	7.3	7.2	7.1	7.15	780	520	570	660	600	25.4	24.6	24.5	24.3	24.8
6	7.05	7.4	7.25	7.15	7.2	770	500	550	650	580	25.6	24.8	24.7	24.5	25.0

Table 2 : Six week measurement of ORP, BOD and DO result for Physico-chemical water quality parameters

3.4 Removal mechanisms :

The study confirmed that "sorption to substrate media" was the dominant removal mechanism, particularly in cells with charcoal and coconut coir. Plant uptake contributed partially but was limited, consistent with earlier studies showing low translocation of chlorpyrifos in macrophytes. Biodegradation likely increased with system stabilization, as indicated by improved BOD and ORP profiles.

3.5 Comparison with previous studies :

The removal rates observed in this study (30–75%) are comparable with reported pesticide

removal efficiencies in HSSF-CWs. Notably, the use of Canna indica with charcoal showed enhanced performance relative to plant-only systems, aligning with reports that substrate selection is critical for maximizing CW efficiency [15].

4. Conclusion :

This study demonstrates the potential of HSSF-CWs planted with Canna indica and supplemented with enhanced substrates for chlorpyrifos remediation. The findings highlight include stabilization period of at least 3–4 weeks is critical for effective performance. A Charcoal and coconut coir significantly enhance sorption, achieving removal efficiencies above 65%. Sorption is the primary removal pathway, while plant uptake and microbial degradation provide secondary contributions. Future research should evaluate long-term system sustainability, regeneration or replacement of saturated media, and the role of microbial communities in pesticide biodegradation. Field-scale validation under varying environmental conditions is also recommended.

Acknowledgments :

The authors acknowledge the Central University of Jammu and the National Institute of Hydrology, Roorkee, for providing facilities and technical support.

References :

1. Keddy, P. A. (2010). Wetland ecology: principles and conservation. Cambridge university press.
2. Davidson, N. C. (2014). How much wetland has the world lost? Marine and Freshwater Research, 65 (10), 934–941.
3. Vymazal, J. (2011). Constructed wetlands for wastewater treatment: Five decades of experience. Environmental Science & Technology, 45 (1), 61–69.
4. Faulwetter, J. L., et al. (2009). Microbial processes in constructed wetlands. Ecological Engineering, 35, 987–1004.
5. Malyan, S. K., et al. (2021). Constructed wetlands for wastewater treatment: Mechanisms and performance. Environmental Research, 192, 110295.
6. Tang, J., et al. (2019). Chlorpyrifos removal in constructed wetlands: Kinetics and mechanisms. Water Research, 156, 220–230.
7. Kumar, R., et al. (2022). Highly hazardous pesticide series in India. Environmental Monitoring and Assessment, 194, 123.
8. Hassaan, M. A., & Nemr, A. E. (2020). Pesticides pollution: Classifications, human health impact, and environmental hazard. Applied Water Science, 10 (3), 1–20.
9. Ruan, W., et al. (2024). Pesticide removal in horizontal-flow constructed wetlands: A global assessment. Chemosphere, 350, 139435.

10. Wu, J., et al. (2017). Removal of triazophos in pilot-scale HSSF-CWs. Journal of Environmental Management, 193, 115–123.
11. Sanjrani, M.A., Zhou, B., Zhao, H., Zheng, Y. P., Wang, Y., & Xia, S.B. (2020). Treatment of wastewater with constructed wetlands systems and plants used in this technology-a review. Applied Ecology & Enviornmental Research, 18(1).
12. Cui, L., Ouyang, Y., Lou, Q., Yang, F., Chen, Y., Zhu, W., & Luos, S. (2010). Removal of nutrients from wastewater with Canna indica L. under different vertical-flow constructed wetland conditions. Ecological Engineering, 36, 1083–1088.
13. Wu, H., Zhang, J., Ngo, H. H., Guo, W., Hu, Z., Liang, S., Fan, J., & Liu, H. (2015). Sustainability of constructed wetlands for wastewater treatment. Bioresource Technology, 175, 594–601.
14. Chyan, J. M., Lin, C. J., Lin, Y. C., Chou, Y. A. (2016). Constructed wetland using corncob charcoal. Int. Biodeterior. Biodegrad, 113, 146-154.S
15. Wang, Y., et al. (2018). Comparative analysis of substrates for constructed wetlands. Environmental Science and Pollution Research, 25, 12295–12308.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 62-67
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी उपन्यासों में किसानों का एक सदी का सफर

गजेन्द्र राम, शोधार्थी,
प्रो. (डॉ.) एस. के. मीना, सेवानिवृत्त प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर।

बीज शब्द – किसान जीवन, हिन्दी उपन्यास, कर्ज, आत्महत्या, बैंक, साहूकार, गोदान, ढलती साँझ का सूरज, जमीन, शोषण।

शोध सारांश –

प्रस्तुत शोध–लेख हिन्दी उपन्यासों में किसान जीवन के चित्रण का तुलनात्मक अध्ययन है, जिसका केन्द्र गोदान (प्रेमचंद) तथा ढलती साँझ का सूरज (मधु कांकरिया) हैं। दोनों उपन्यासों के बीच लगभग एक शताब्दी का अंतर है, फिर भी किसान जीवन की मूल समस्याएँ– कर्ज, शोषण, असुरक्षा और व्यवस्था की उदासीनता लगभग अपरिवर्तित दिखाई देती हैं।

'गोदान' औपनिवेशिक भारत के किसान होरी के माध्यम से महाजनी, सामंती और औपनिवेशिक शोषण को उजागर करता है, जहाँ किसान धैर्यवान होते हुए भी विवश और निस्सहाय है। इसके विपरीत 'ढलती साँझ का सूरज' इक्कीसवीं सदी के वैश्वीकरण, बाजारवाद और पूँजीवादी व्यवस्था में फँसे किसानों की त्रासदी को सामने लाता है, जहाँ कर्ज, फसल की अनिश्चितता, सरकारी उदासीनता और सामाजिक अपमान के कारण किसान आत्महत्या तक को विवश हैं।

शोध में यह स्पष्ट किया गया है कि आधुनिक समय में किसान के पास भूमि का स्वामित्व होने के बावजूद उसकी स्थिति में गुणात्मक सुधार नहीं हुआ है। नया शोषण तंत्र– बैंक, निजी कंपनियाँ, बाजार और सत्ता पुराने महाजन की जगह ले चुका है। विशेष रूप से महिला किसानों की अनदेखी, मीडिया की असंवेदनशीलता और न्यूनतम समर्थन मूल्य की उपेक्षा को उपन्यास रेखांकित करता है।

हिन्दी उपन्यासों में किसानों के जीवन–संघर्ष का चित्रण पहले पहल प्रमुखतः गोदान में देखने को मिलता है। हालांकि गोदान से पहले रंगभूमि व प्रेमाश्रम उपन्यासों में भी किसानों के जीवन संघर्ष का चित्रण मिलता है। लेकिन गोदान उपन्यास पूर्णतः किसान जीवन पर केन्द्रित है। गोदान उपन्यास किसान जीवन की त्रासदी को सामने लाता है कि किस प्रकार समाज के सभी प्रमुख वर्ग उसका शोषण करते हैं। गोदान बीसवीं सदी के तीन दशक पश्चात् लिखा गया। उस समय भारत उपनिवेश था, तो किसानों का दोहरा शोषण होता था।

आज गोदान को प्रकाशित हुए लगभग एक सदी बीत चुकी है। इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में मधु कांकरिया रचित 'ढलती साँझ का सूरज' नामक उपन्यास, जो किसान व मजदूरों के जीवन पर केन्द्रित है, इस

एक सदी के हिन्दी उपन्यासों में किसान जीवन में कितना बदलाव हुआ है और उसकी जमीनी हकीकत क्या है? इस पर प्रकाश डालने की कोशिश की है।

हालांकि गोदान के पश्चात् अनेक उपन्यास प्रकाशित हुए जो किसान जीवन पर केन्द्रित थे। इन उपन्यासों में जल, जंगल, जमीन व किसान आत्महत्या के कारणों पर प्रकाश डाला गया। किसान जीवन पर लिखे गए प्रमुख उपन्यासों में मैला आँचल–फणीश्वरनाथ रेणु, अकाल में उत्सव–पंकज सुबीर, फाँस–संजीव, कभी न छोड़े खेत, धरती धन न अपना–जगदीशचन्द्र, कंदील–राजकुमार राकेश, अग्निबीज–मार्कण्डेय, अलग–अलग वैतरणी–शिवप्रसाद सिंह, आखिरी छलांग–शिवमूर्ति, हलफनामे–राजू शर्मा आदि उपन्यास लिखे गए।

उपन्यास जिसमें किसानों के कर्ज व आत्महत्या को कैसे रोका जाए, इसका समाधान ढलती साँझ का सूरज उपन्यास में देखने को मिलता है।

गोदान के किसान के पास खुद की जमीन तो दूर, हल और बैल भी किसी महाजन या जमीदार के हैं। लेकिन एक सदी में किसानों के विकास की बात की जाए तो हालात जस के तस हैं। 2022 में प्रकाशित उपन्यास 'ढलती साँझ का सूरज' में आज भी किसान बेबस दिखाई पडते हैं जो राम व राज के भरोसे दिनोदिन कर्ज में डूबकर आत्महत्या करने को मजबूर है।

इस एक सदी के किसान जीवन के सफर को समझने के लिए मैंने प्रेमचंद रचित 'गोदान' एवं मधु कांकरिया रचित 'ढलती साँझ का सूरज' उपन्यासों का चयन किया है। क्योंकि दोनों उपन्यासों के बीच लगभग एक सदी का अन्तर है। इस एक सदी में हिन्दी उपन्यासों में किसान जीवन में कौन–कौनसे बदलाव व समानता देखने को मिलती है इसका चित्रण करने का प्रयास इस आलेख में किया गया है। गोदान में किसानों के कर्ज, सूद आदि की बात की गई है लेकिन ढलती साँझ के सूरज में इन समस्याओं के समाधान का विकल्प भी प्रस्तुत किया गया है।

गोदान उपन्यास का पात्र होरी भारतीय किसानों का प्रतिनिधित्व करता है। हालांकि वर्तमान संदर्भ में भारतीय किसान में थोड़ा बदलाव है लेकिन हालात जस के तस हैं। पहले महाजन, सामंतों, जमीदार के बोझ तले किसान दबा रहता था। आज जमीन का मालिक खुद होते हुए भी सरकारों ने उसकी हालत ऐसी कर दी है कि मजबूरी में अपनी जमीन कुर्क करवानी पड़ रही है।

गोदान का होरी बेदखली व कुर्की के डर से पत्नी झुनिया से कहता है ''जब दूसरों के पाँवों तले अपनी गर्दन दबी हुई है तो उन पाँवों को सहलाने में कुषल है।"[1]

यहीं से होरी के शोषण व उसके तिल–तिल मरने की शुरुआत होती है। वह महाजनी, सामंती व पूँजीवादी व्यवस्था के आगे विवश है। एक किसान की जिंदगी इतनी सस्ती है कि सामंतों के पैरों में पड़ी है। यदि किसान इन पैरों को सहलाना बंद कर दें तो उसी समय उसकी मौत सुनिश्चित है। हालांकि यह अलग बात है कि भारत की 60 प्रतिशत से अधिक आबादी खेती पर निर्भर है या ऐसा कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि शत प्रतिशत आबादी खेती पर ही तो निर्भर है। यदि अन्न नहीं तो जीवन कैसे चलेगा यह हम जानते हैं लेकिन उस अन्न को उपजाने वाला किसान मरने को मजबूर है। उसका भरपूर शोषण किया जा रहा है।

इस संदर्भ में प्रो० रामवृक्ष अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद और भारतीय किसान' में लिखते हैं कि ''किसान समाज का आधार होता है। समाज का उत्पादक वर्ग किसान है उसी की उन्नति से देश की उन्नति संभव है। उसकी

बदहाली देश की बदहाली"।[2]

लेकिन क्या समाज के सभी वर्ग व सरकारें किसान की स्थिति सुधारने के लिए कोई प्रयास करते हैं ऐसा सोचना भी बेमानी है। धनिक वर्ग तो किसानों के शोषण में लगा है। प्रेमचंद के पूर्ववर्ती उपन्यासों में किसानों को विद्रोही बताया है लेकिन गोदान में होरी को निस्सहाय व शांत स्वभाव का।

होरी की स्थिति समझने के लिए उनका एक आत्मकथन ही पर्याप्त है– ''लड़के का ब्याह न हुआ, न सही। लड़की का ब्याह न हुआ, तो सारी बिरादरी में हँसी होगी। पहले तो उसी की सगाई करनी है, पीछे देखी जाएगी।"[3]

इस कथन में सम्पूर्ण किसानों की स्थिति झलकती है कि किस प्रकार उसे अपनी बेटी की शादी के लिए भी दूसरों के सामने हाथ फैलाना है या फिर किसी के साथ बेमेल विवाह कर देना है।

होरी की आर्थिक स्थिति का वर्णन करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं– ''इस फसल में जब सबकुछ खलिहान में तौल देने पर भी अभी उस पर कोई तीन सौ कर्ज था। जिस पर कई सौ रुपये सूद के बढते जाते थे। मंगरु साह से आज पाँच साल हुए, बैल के साठ रुपये लिए थे, उसमें साठ दे चुका थाय पर यह साठ रुपये ज्यों–के–त्यों बने हुए थे। दातादीन पंडित से तीस रुपये लेकर आलू बोये थे। आलू तो चोर खोद ले गए और उस तीस के इन तीन वर्षों में सौ हो गए थे। दुलारी विधवा सहुआइन थी जो गाँव में नौन, तेल, तमाखू की दुकान रखी हुई थी। बँटवारे के समय उसे चालीस रुपये लेकर भाईयों को देना पड़ा था। उसके भी लगभग सौ रुपये हो गये थे क्योंकि आने रुपये का ब्याज था। लगान को अभी पच्चीस रुपये बाकी पड़े हुए थे और दशहरे के दिन शगुन के रुपये का भी कोई प्रबंध करना था।"[4]

यहाँ होरी की आर्थिक स्थिति का पता चलता है कि किस प्रकार सूदखोरों व महाजनों का कर्ज चढ़ा है व मूलधन से अधिक राशि लौटाने के पश्चात् भी कर्ज जस का तस सिर पर चढ़ रखा है। यहाँ सूदखोरों, महाजनों व सरकारों की निरंकुशता देखी जा सकती है। आज भी किसान इसी तरह कर्ज में डूबता जा रहा है। सूदखोर 24 प्रतिशत से कम ब्याज पर कर्ज देने को तैयार नहीं। रही बैंकों की बात तो दसियों चक्कर के पश्चात् कर्ज मिलता है। वो भी आधा–अधूरा। यदि कुछ प्राईवेट बैंक आसानी से कर्ज दे भी देती हैं तो ब्याज व प्रोसेसिंग शुल्क के नाम पर हजारों वसूलती हैं व ताक में रहती हैं कि कब किसान कर्ज राशि पुनर्भरण में देरी करे और कब उनकी जमीन कुर्क की जाए। देश में आदिवासी किसानों से विकास के नाम पर जमीन छीनी जा रही है। जंगल के मेंवों पर से उनका अधिकार छीना जा रहा है। विरोध करने पर झूठें मुकदमें बनाकर जेल में डाला जा रहा या नक्सली करार दिया जा रहा। यही स्थिति आम किसानों की है जिनसे कर्ज वसूली के नाम पर जमीन छीनी जा रही। किसान अपनी जिंदगी से ज्यादा जमीन को प्यार करता है। इसी कारण वह आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा।

ढलती साँझ का सूरज उपन्यास में मधु कांकरिया ने लिखा है– ''1997 से अब तक दो लाख किसान आत्महत्या कर चुके थे लेकिन अभी तक मुख्यधारा के मीडिया के लिए यह कोई मुद्दा ही नहीं था।"[5]

किसानी कितनी मुश्किल भरी है इसका उपन्यास में उल्लेख कुछ इस प्रकार किया गया है– ''बहुत मेहनत का काम है किसानी, पहले धरती पर हल चलाते हैं। फिर धड़कते दिल से बारिश का इंतजार। फिर हल चलाकर धरती को नम करते हैं। जिससे धरती बीज पकड़ सके। फिर बीज डालते हैं। फिर बारिश का इंतजार।

बीज डालने के सात दिन के भीतर बारिश नहीं हुई तो फिर बीज का दुबारा खर्चा।.....फिर किटनाशक। फिर खाद। फिर इंतजार।"[6]

खेती धैर्य का काम है और इसके बाद किसी भी कारणवश फसल खराब होती है तो कृषकों पर गुजरने वाली स्थिति हम शहर में रहकर अखबार की खबर पढ़कर दिखावे मात्र का कृत्रिम दुःख जताने वाले लोग नहीं समझ सकते। विपदा जब तक स्वयं पर न पड़े तब तक वह सूचना मात्र ही है।

'ढलती साँझ का सूरज उपन्यास मुख्यतः महाराष्ट्र के किसानों पर केन्द्रित है लेकिन इसमें पूरे देश के किसानों की स्थिति का पता चलता है। उपन्यास में व्यवस्था से हारे किसान आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहे हैं कुछ किसान मुंबई जैसे शहर की ओर मजदूरी के लिए पलायन कर रहे हैं। किसानों पर सत्ता व बाजार का जबरदस्त प्रकोप है। सत्ता कभी किसानों की नहीं हुई।

इस उपन्यास में एक नहीं कई किसानों को आत्महत्या करते दिखाया गया है। शासन–प्रशासन आत्महत्या को आत्महत्या मानने के लिए तैयार नहीं। घरवालों को काफी मशक्कत करनी पडती है यहाँ तक उनसे रिश्वत भी माँगी जाती है। यदि सरकारी कारिंदों को कुछ नहीं मिलता तो आत्महत्या को आत्महत्या नहीं ठहराते, तब किसान मुआवजे से भी वंचित रह जाते हैं। उपन्यास पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि यह व्यवस्था या सिस्टम किसानों के साथ छल कर रही है। महँगाई आसमान छू रही है। उदाहरण के तौर पर– सरसों का तेल पिछले दो वर्षों में दुगुना हो गया है लेकिन सरसों के भाव जस के तस। पहले किसान फसल बोने के लिए खेत में निपजे बीज का ही प्रयोग करता था। आज बाजार के जाल में फसकर उत्पादन की वृद्धि के लिए नए–नए बीजों का प्रयोग करता है। नई–नई खादों का प्रयोग किया जाने लगा है। जिससे धीरे–धीरे जमीन की उत्पादन क्षमता कम हो जाती है। यह सब जागरुकता के अभाव में हो रहा। इन सब परिस्थिति से मजबूर किसान कर्ज के लिए बैंक या अन्य सूदखोरों से उच्च ब्याज दरों पर कर्ज लेता है। फिर समय पर न चुकाने पर कर्ज दिनोदिन बढ़ता जाता है। साथ ही मौसम के साथ न देने से फसल खराब हो जाती है। इन्हीं समस्याओं के चलते किसान आत्महत्या कर लेता है। किसान की आत्महत्या करना अब कोई बड़ा मुद्दा नहीं रहा। मीडिया तक में इसकी चर्चा न के बराबर होती है। लेकिन अन्न का निवाला सबके ढल जाता है। कर्ज चढ़े किसान द्वारा आत्महत्या करने पर सरकार पात्र–अपात्र खोजती है। 'ढलती साँझ के सूरज' उपन्यास में एक किसान द्वारा आत्महत्या करने पर अन्य किसानों की बातचीत का उल्लेख इस प्रकार है–

''सारा गाँव जानता है, सरपंच जानते हैं कि इस घर में सुसाइड हुई है लेकिन फिर भी इन्हें प्रमाण चाहिए क्योंकि जमीन और कर्जा दिलीप जी के पिता के नाम था। जबकि आत्महत्या पुत्र ने की।"[7]

मधु कांकरिया ने महिला किसानों का भी जिक्र किया है कि किस प्रकार व्यवस्था भी महिलाओं को किसान मानने के लिए तैयार नहीं है।

''सरकार को तो नहीं देने का बहाना चाहिए जी... ऐसे कई केस हैं जहाँ आत्महत्या हुई लेकिन कुछ नहीं मिला। यहाँ मराठवाड़ा के अनंतपुर जिले में एक महिला किसान थी सुधामणि। उसने आत्महत्या की, लेकिन उसकी बेटी को आजतक कोई मुआवजा नहीं मिला क्योंकि वह औरत थी इसलिए कोई उसे किसान हीं नहीं मानता। एक औरत किसान की पत्नी हो सकती है खुद किसान नहीं।"[8]

उपन्यासकार यहाँ बड़े मुद्दे पर ध्यान आकृष्ट कराती है कि जब सरकार या सिस्टम भी महिला किसान

को किसान मानने हेतु तैयार नहीं। फिर पितृसत्ता पोषित इस समाज से क्या ही उम्मीद की जाये।

हालांकि "61वें नेशनल सैंपल सर्वे, 2004–05 के अनुसार भारत में 83 प्रतिशत महिलाएँ खेतों में काम करती हैं।"[9]

फिर भी जब हम किसान के बारे में सोचते हैं तो हम एक पुरुष के बारे में सोचते हैं।

आखिर आत्महत्या क्यों की जाती हैं? केवल कर्ज के कारण। नहीं, ऐसा नहीं है। मल्टी नेशनल कंपनियाँ, बैंकों में किसानों से वसूली के लिए गुंडे पाल रखे हैं। जो किसानों से वसूली के नाम पर उनके साथ अपमानजनक व्यवहार करते हैं। सामाजिक प्रतिष्ठा किसानों की कमजोर कड़ी है। उसी आधार पर यह लोग वहीं प्रहार करते हैं और मजबूरीवश किसान आत्महत्या कर लेता है। हालांकि अब अधिकतर किसान लठ बजाने लगे हैं जिससे इन गुंडों की दाल कम गलती है। लेकिन फिर भी निजी कंपनियों द्वारा गुण्डों से वसूली करवाना क्या कानूनन मान्य है? यदि नहीं है तो इस आपराधिक गतिविधियों पर कार्रवाई कौन करेगा?

'ढलती साँझ का सूरज' उपन्यास किसानों की समस्याओं के समाधान का विकल्प भी प्रस्तुत करता है। ''हम तो साफ कहते हैं सरकार को कि हमें आपका दान, आपके पैकेज नहीं, मूल्य चाहिए।"[10]

सभी समस्याओं की जड़ यही है कि किसानों को अपनी फसल का भाव या मूल्य नहीं मिलता है। इसी संदर्भ में उपन्यासकार ने लिखा है ''यही तो हमारी बदनसीबी कि पैदा करता है गाँव पर मौज करता है शहर। हमें आलू का मिलता है पाँच टका किलो पर वही आलू चिप्स बनकर बिकता है 400 रुपया किलो। पर सोचता कौन है हमारे लिए? और तो और जब प्याज 200 रुपये किलो बिकता है तब भी हम किसानों को कुछ नहीं मिलता क्योंकि हमारे पास तो इतना भी साधन नहीं कि प्याज उठवाकर मंडी पहुँचा सके।"[11]

हालांकि आज किसान मंडी तक अपनी फसल ले तो जाता है लेकिन वहाँ बारिश आदि से बचने के लिए व्यवस्था नहीं होती। कई बार मंडी तक पहुँची फसल भी खराब हो जाती है। तब ओने–पौने दाम में बेचनी पड़ती है या फेंक दी जाती है। उपन्यास में किसान आन्दोलन की बात भी की गई है कि अपने हक के लिए किसान आन्दोलन क्यों नहीं करते। लेकिन आन्दोलन करने पर उन्हें खालिस्तानी या अन्य टैग दे दिए जाते हैं। हाल ही में सरकार द्वारा किसान विरोधी तीन कानून संसद में पारित हुए थे। "ये तीन कृषि कानून निम्न थे– 1. मूल्य आश्वासन और कृषि सेवा अधिनियम, 2020 पर कृषक (सशक्तीकरण और संरक्षण) समझौता, 2. कृषक उपज व्यापार और वाणिज्य (संवर्धन और सुविधा) अधिनियम 2020 और 3. आवश्यक वस्तु (संशोधन) अधिनियम, 2020।"[12]

तीनों कृषि कानूनों के विरोध में किसानों द्वारा 9 अगस्त, 2020 से 11 दिसम्बर, 2021 तक आन्दोलन चला। लगभग डेढ़ वर्ष तक चलने वाले इस आन्दोलन में 700 से अधिक किसानों की मौत हुई।[13] लेकिन क्रूर सत्ता व मीडिया के लिए यह आंकड़े केवल खबर थे। सत्तासीन नेताओं द्वारा असंवेदनशील बयान दिए गए। अंत में किसानों के भारी विरोध के कारण तीनों कृषि कानून वापस ले लिए गए। लेकिन किसानों की मुख्य माँग समर्थन मूल्य या सपोर्ट प्राईस को नहीं माना।

इसी संदर्भ में मधु कांकरिया उपन्यास में लिखती है –

''जाने क्यों लगता है मुझे कि यह संकट सिर्फ किसानों पर ही नहीं वरन् पूरी सभ्यता पर है। यह मरती हुई सभ्यता का आपातकाल है। देखना आज किसान गिर रहा है कल पूरा देश गिरेगा और इसका एक ही हल

है कि धरती केवल किसानों की होनी चाहिए और खेती संबंधित सारे निर्णय किसानों के हाथों में।"[14]

फसल किसान पैदा करे, लेकिन उसके दाम बाजार या सत्ता बैठे चंद लोग तय करें। ऐसा जब तक होता रहेगा किसानों की हालत नहीं सुधरने वाली।

उपन्यास में एक बबनगिरि नामक किसान पात्र कहता है कि ''साठ प्रतिशत आबादी आज भी जीविका के लिए कृषि पर निर्भर है, दो लाख लोग 2000 के बाद खुदकुशी कर चुके हैं लेकिन आज भी मुख्यधारा के मीडिया के लिए यह कोई मुख्य खबर नहीं है।"[15]

'गोदान' से लेकर 'ढलती साँझ का सूरज' तक के हिन्दी उपन्यासों में किसानों की समस्याएँ जस की तस हैं। गोदान का किसान आत्महत्या नहीं करता था, धैर्यवान था। लेकिन ढलती साँझ का सूरज का किसान आत्महत्या कर रहा है। जमीनी हकीकत पर यह उपन्यास काफी हद तक खरे उतरते हैं क्योंकि 21वीं सदी के दूसरे दशक में भी मधु कांकरिया ने शोध के आधार पर इस उपन्यास को लिखा तथा किसानों के कर्ज, आत्महत्या जैसी समस्याओं को मुखर होकर उठाया। किसान आत्महत्या न करें इसके लिए समाधान भी दिया कि किसानों को उसकी फसल का मूल्य दिया जाए। न कि उन्हें कर्ज देकर आत्महत्या करने को मजबूर किया जाए। लेकिन आज पूंजीवादी व्यवस्था व निष्ठुर सत्ता की वजह से प्रत्येक वर्ष हजारों किसान आत्महत्या कर रहे हैं। लेकिन सत्ता के लिए यह महज आँकड़े हैं।

संदर्भ :

1. 'गोदान', प्रेमचन्द, पृ. 5, ओरिएंट पब्लिशिंग, 2015
2. 'प्रेमचन्द और भारतीय किसान', प्रो. रामवृक्ष, पृ. 176, वाणी प्रकाशन, 1982
3. 'गोदान' पृ. 27
4. 'गोदान' पृ. 34
5. 'ढलती साँझ का सूरज', मधु कांकरिया, पृ. 9, राजकमल पेपर बैक्स, 2022
6. वही, पृ. 48
7. वही, पृ. 52
8. वही, पृ. 53
9. सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन–2, एनसीईआरटी, पृ. 56
10. 'ढलती साँझ का सूरज', मधु कांकरिया, पृ० 71, राजकमल पेपर बैक्स, 2022
11. वही, पृ. 85
12. भारत सरकार, गजट, दिनांक 24 सितम्बर, 2020
13. www.NDTV.in, दिनांक 01 दिसम्बर, 2021
14. 'ढलती साँझ का सूरज', मधु कांकरिया, पृ० 71, राजकमल पेपर बैक्स, 2022
15. वही, पृ. 176

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 68-84
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

BREAKING PATRIARCHY AT THE VILLAGE LEVEL : A SOCIOLOGICAL ANALYSIS OF WOMEN SARPANCHS

Dr. Meena Sharma
Counseller, Government Hospital, Sri Ganganagar.

Patriarchy in Rural India and the Role of Panchayati Raj :

Patriarchy in rural India is not only a male dominion phenomenon but a well rooted social order that rules in day-to-day life, family ties, and society. How it manifests itself is seen in the ownership of land and property rights, where inheritance laws and traditional practices are highly biased towards men, hence making women economically reliant and socially inferior. This hierarchy is further strengthened by the labour division, where women are assigned to domestic and unpaid agrarian chores, while men hold positions of authority and control over productive assets. Traditional aspects like dowry, early marriage and movement restrictions are also a way of reinforcing patriarchal values and hence restricting women's access to education, healthcare and active participation in social life. Women are often marginalised in the village meetings and democratic forums, and their representation is more symbolic than substantive. This institutional marginalisation maintains a chain reaction of inequality, as gender hierarchies overlap with caste and class, generating several layers of disadvantages.[1]

With this background, the Panchayati Raj system, established in 1992 as a result of the 73rd Amendment to the Constitution, represents a significant sociological intervention. The institutional spaces created by the reform enable women to take up leadership positions in local governance through the requirement of women to make reservations in local government, allowing them to make decisions and be directly involved in the decision-making process. This structural change challenges male monopolies by legitimising female rule in the Gram Sabha and Gram Panchayat. Panchayati Raj is a counter-structure to patriarchy as a sociological phenomenon that rebalances the distribution of power at the grassroots of the community, breaking the male-dominated governance, and enabling women to have a chance to act as agents in choosing the priorities of their communities. Women Sarpanchs will

tend to shift the resources to issues of welfare like education, sanitation, health and livelihood programmes- issues which were historically ignored by the patriarchal leadership. Their representation in state office is symbolic, challenging the male stereotypes of women as passive dependents and motivating more women to be involved in community activities.[2]

This is, however, a complex issue regarding the role of the Panchayati Raj in breaking patriarchy. Although the new reform has introduced new avenues of empowerment, issues like proxy leadership, whereby male relatives exploit the opportunity to govern on behalf of elected women, have remained to dilute the reformative nature of the reform. Women often lack autonomy due to social resistance, ridicule, and exclusion from informal male networks. Furthermore, their governance performance is hindered by structural obstacles, including insufficient training, bureaucracy, and financial illiteracy. Nevertheless, Panchayati Raj continues to be a significant sociological process of power negotiation and reconstruction of gender relations in India's rural areas. It works symbolically and substantively, giving women leaders the means to challenge patriarchal conventions, redefine village priorities, and slowly dismantle hierarchies.[3]

The sociological theories of patriarchy and power are essential in the study of gendered relationships, especially in communities where male dominance has been entrenched in the institutional setting. Patriarchy in rural India is evident in the kinship system, caste hierarchy, economic dependency, and cultural traditions, which deny women their independence. Sociological theories provide models that enable descriptive narratives to be transformed into systematic explanations of power's activities. The most powerful approaches include Sylvia Walby's theory of a patriarchal system of interrelated structures[4], Pierre Bourdieu's theory of social capital and symbolic power,[5] and Max Weber's typology of power. All of these philosophers offer a perspective that allows for the perception of the dynamism of patriarchy, the operation of power, and the potential for change, facilitated by institutions like Panchayati Raj.[6]

Walby does not present patriarchy as a single entity but as a system of mutually dependent constructions that act in various spheres of social life. She describes six structures, such as household, paid work, state, male violence, sexuality and culture, in her classic work, Theorising Patriarchy (1990). These institutions reinforce one another to maintain male superiority and female inferiority. As an example, in rural India, the home is still one of the main places of patriarchy, and women's labour is treated as undervalued, their movements are limited, and the only gender roles they perform are reproduction and parenting. Female labour, especially agricultural labour, is gendered, and women are left with low-paid, insecure or not paid jobs. The state often replicates equality as guaranteed by the constitution through poor implementation of rights and policies that do not address entrenched

gender hierarchies. Male violence is a controlling mechanism of training women and patriarchal authority. The regulation of sexuality is provided by the norms of chastity, matrimony, and honour, whereas gender stereotypes are supported by culture in the form of religion, traditions, and media. The strength of Walby lies in the fact that his framework enables a multi-dimensional perception of patriarchy, which is institutional and is perpetuated by daily activities.[7]

Applying Walby's theory to the situation involving a Panchayati Raj reveals that the situation can create disturbances in some patriarchal structures, while leaving others unchanged. The patriarchal control in the state structure is shattered by the entry of women as Sarpanchs, as it requires the representation of women in governance. It also challenges stereotypes in a culture by making women's authority legitimate in public life. However, even in cases of a female leader, patriarchal domination at the home level continues to exist in most cases, as most women leaders are opposed by their family members or even become proxies representing their male relatives. In the same way, the economic systems still place a disadvantage on women since they do not have access to any resources or financial literacy. The analysis by Walby, therefore, sheds light on the successes or failures of women's political empowerment in rural India: the introduction of women into the governance system is not enough unless patriarchal systems in every field change.[8]

Bourdieu imagines society as being structured around various types of capital: economic, cultural, social, and symbolic capital, which individuals and groups mobilise to defend and/or contest hegemony. Social capital is defined as the networks, relationships, and connections that facilitate access to resources and opportunities. The symbolic power refers to the ability to enforce meanings and justify social hierarchies through the use of cultural norms and practices. In patriarchal societies, men tend to dominate social capital by monopolising kinship, caste, and political alliances, while women are often excluded from these spheres of influence. Symbolic power is directed by cultural discourses that make male dominance and female subordination natural, so that patriarchy becomes common sense as opposed to coercion.[9]

In Indian villages, the framework proposed by Bourdieu can be used to understand why women Sarpanchs frequently face difficulties in exercising authority despite holding formal power. They do not have the social capital that they need to mobilise resources or to impose decisions; networks of influence, alliances with bureaucrats, or access to local elites. Male leaders, on the other hand, utilise a broad network of social capital that is rooted in caste relationships, patronage networks, and family ties. Symbolic power also contributes to undermining the leadership role of women by positioning them as inadequate, dependent, or symbolic leaders. However, Bourdieu also offers a way out for women. As women come together in their new social capital through self-help groups and networks

of solidarity, the women leaders can slowly start to overcome patriarchal monopolies. Symbolic power is also a contestable force, whereby the redefinition of cultural discourses can be achieved when women Sarpanchs succeed in instating welfare programs or mobilising societies; they generate a new meaning of leadership that justifies female leadership.

Weber identifies three categories of authority : traditional, charismatic, and legal-rational authority. Traditional power is based on traditions, customs and long-established practices, and it tends to authorise patriarchal domination in rural societies where the elders are mainly men. Charismatic authority is a personal characteristic of leaders that enables them to evoke devotion and loyalty in people. In contrast, legal-rational authority is founded on rules, laws, and bureaucratic systems. Traditional authority also plays a major part in perpetuating patriarchy in rural India, where the domination of men is justified by culture, religious beliefs and hierarchies of kinship. Women are expected to respect their fathers, husbands, and elders, and their involvement in political life is limited, often with references to tradition.[10]

The Panchayati Raj system introduces the authority of law-rationality through the institutionalisation of women's representation via constitutional amendments and elections. Such a change conflicts with the traditional authority that tries to resist women leading, as well as the legal-rational authority that is trying to legitimise it. Women Sarpanchs represent this contradiction: on the one hand, their position has legal status; on the other hand, they are sometimes subverting the conventional rules that deny them independence. The charismatic authority of women leaders is evident in situations where they demonstrate competence, empathy, or vision, often at the expense of formal rules, and thus are seen as respectable and legitimate. Indicatively, when women Sarpanchs achieve success in sanitation projects or organising communities to access education, they are trusted and admired, and this generates a sense of charismatic authority that cuts across patriarchal opposition. The framework by Weber, therefore, highlights the dynamic nature of the interaction between various types of authority in their struggle against patriarchy.

Collectively, Walby, Bourdieu, and Weber provide a detailed sociological perspective on patriarchy and power. Walby emphasises the structural aspects of patriarchy, illustrating how it operates in various spheres of social life. Bourdieu emphasises the importance of capital and symbolic power in both maintaining and challenging gender hierarchies. Weber describes the mechanisms through which the various types of authority stabilise and challenge patriarchal hegemony. These theories interact in the rural Indian setting, utilising the Panchayati Raj to present the complexity of women's empowerment as not only about taking up positions of power but also about negotiating structures, mobilising capital, and redefining authority.

An example of this is a woman Sarpanch who encounters opposition at home (Walby's household structure), has no networks of influence (Bourdieu's social capital), and may be sabotaged by an appeal to tradition (Weber's traditional authority). However, by organising women in groups, forming solidarity with other women, and proving herself to be a successful leader, she can disrupt these structures, gather new capital, and create charismatic or legal-rational authority. It is an unequal and controversial process, which is a sociological change in which the patriarchy is destabilised over time.

These theories bring out the significance of intersectionality in understanding patriarchy. The structures of Walby overlap with those of caste and class; the capital of Bourdieu is not equally distributed among social groups, whereas cultural contexts determine the authority of Weber. Women belonging to the iffy castes are doubly or triply disadvantaged as they do not have economic capital, social networks, and cultural legitimacy. The fact that Panchayati Raj can empower them makes this a much more challenging but also a much more important endeavour, as it breaks several strata of authority. This sociologically brings out the fact that patriarchy should not be viewed as a uniform system but a multifaceted and intersecting system of structures and practices.

To sum it up, the sociological ideas of Walby, Bourdieu, and Weber provide an analytical material to comprehend the dynamics of gender relations in rural India. The structural analysis of Walby demonstrates the areas of patriarchy. The concepts of capital and symbolic power, as developed by Bourdieu, are employed to understand how dominance and resistance operate. The typology of authority, developed by Weber, provides an understanding of the legitimacy of power relations. The two of them lighten the hurdles and opportunities for women's empowerment through Panchayati Raj. As much as patriarchy is rooted in deep positions, women's leadership institutionalisation cracks the basis of patriarchy and provides chances of social change. Sociologically speaking, the fight against patriarchy is not simply a struggle for individual empowerment, but also involves reorganising the social structure, reallocating capital, and redefining power. Women Sarpanchs are not only political representatives but also agents of sociological change, struggling for power and re-establishing the social order in the countryside.

Grassroots democracy, as seen in the context of rural India and Panchayati Raj institutions, has been hailed as a tool for increasing the level of democracy by devolving power to the village level. As a feminist would say, though, grassroots democracy is not a question of decentralisation of governance, but of changing the gender relations in society. According to feminist theorists, democracy cannot be regarded as complete unless it is inclusive of the voices, experiences, and agency of women. As a result, a contesting space of grassroots democracy is created, where patriarchal frameworks are

questioned, and the involvement of women reshapes citizenship, representation, and empowerment. Formal political inclusion is not necessarily equivalent to substantive empowerment, a key understanding among feminists regarding grassroots democracy. The institutional representation of women in Panchayati Raj institutions, as mandated by the 73rd Constitutional Amendment, was a significant step towards enhancing representation. However, feminist scholars suggest that representation is not enough unless women are free to break the shackles of patriarchy. How patriarchy adjusts to new institutional arrangements is seen in the phenomenon of proxy leadership, where male relatives exercise power on behalf of women who were elected. Feminist views also emphasise that grassroots democracy should go beyond tokenism to ensure that women have the autonomy to exercise control, develop political capacities, and influence decision-making in a meaningful way.

Feminist theorists also emphasise that she should connect grassroots democracy with everyday life. In contrast to other liberal democratic systems in which abstract rights and formal institutions are given high priority, feminism views the material experience of women, which includes access to water, health, education, means of life, and the absence of violence, as the foundation of democratic action. To this end, grassroots democracy is not merely a method of governing, but also a tool for achieving social justice. Women Sarpanchs, upon their empowerment, mostly focus on issues of welfare that directly affect the community. As such, there is an expansion of the field of democracy to address issues that were previously considered outside the mainstream when leadership was male-dominated. This is an expression of the feminist point that democracy should be substantive and address disparities in both the state and the family.[11]

One more prominent contribution of feminism is the critique of the power relations of grassroots democracy. Using intersectional feminism, scholars argue that the experiences of women under democracy encompass not only gender but also caste, class, religion, and ethnicity. An example of a Dalit woman Sarpanch can be marginalised twice, as a woman and as a lower caste person. The Grassroots democracy, thus, should be examined from an intersectional perspective, which acknowledges that various hierarchies intersect to influence women's participation. Feminist attitudes stipulate that real democracy demands not only placing women in the structures, but also breaking them up.

Feminist views also note the potential impact that grassroots democracy has on redefining the political culture. Panchayati Raj institutions break cultural stereotypes of women as passive or dependent by legitimising the role of women in public office. The repercussions of this symbolic empowerment include encouraging young women to aspire to leadership and decision-making roles. According to feminist scholars, such cultural changes are as important as institutional changes, as

they alter the gender roles in social imagination. This is because grassroots democracy is not merely about how a nation is governed but is about transforming the cultural pillars of patriarchy. [12]

Meanwhile, feminist criticism warns that grassroots democracy should not be romanticised. They cite that women have low effectiveness in leadership due to structural barriers, which include a lack of education, financial resources, and training. Besides, patriarchal resistance can be rather fragile and informal, like the non-inclusion of women in informal power structures or the lack of legitimisation of their authority. Feminist approaches suggest that to make grassroots democracy effective in transforming society, it must be coupled with greater social changes, including girls' education, economic empowerment, legal actions against violence, and cultural struggles against gender stereotypes. Devoid of them, the grassroots democracy is in danger of recreating patriarchal hierarchies in the name of inclusion.

Theoretically, feminist conceptualisations of grassroots democracy are based on the liberal and radical feminist traditions. Liberal feminists focus on equal rights and representation, considering reservation policies vital to rectify past exclusion. Radical feminists, in their turn, state that patriarchy is deeply rooted in social organisation and cannot be eliminated only with the help of institutional changes. They demand a redefinition of the very nature of democracy, which puts women at the centre of attention and defies the public-private divide, which has historically kept women's issues out of political discourse. Intersectional feminism also contributes to this analysis by demonstrating how gender can be combined with other areas of inequality to make grassroots democracy a complex and contentious field.

To summarise, feminist views regarding grassroots democracy emphasise both its potential and its limitations. On the one hand, Panchayati Raj institutions offer unprecedented opportunities for women to become more involved in the governance process, to critique patriarchal culture, and to reestablish community priorities. Conversely, structural constraints, cultural opposition, and intersectional inequalities still limit women's independence. To fully realise the potential of feminist possibilities in grassroots democracy, one should consider it not merely as a political reform, but as a social revolution that dismantles the patriarchal system, balances power, and redefines the concept of democracy itself. Women Sarpanchs are, however, not just political figures, but catalysts of feminist change, embodying equality, justice, and substantive democracy in the village.

Panchayati Raj may be seen as an essential point of social change, as it represents the decentralisation of authority, making the village the directly governing level, where social stratification is most deeply rooted. It breaks the old patriarchal and caste-based systems of authority by requiring the participation of women and the marginalised groups through constitutional reservation. This

incorporation justifies their representation in decision-making and in addressing community priorities related to matters of welfare, such as education, health, sanitation, and livelihoods. This will make Panchayati Raj not merely an administrative reform, but a sociological process, one that will prevent inequality, promote empowerment, and slowly change the social order in the rural areas.

Panchayati Raj in India dates back to the history of Indian civilisation, where village councils or panchayats were a form of informal self-governance institutions. Such councils were long known to be composed of male elders who settled disputes, controlled the community's resources, and maintained social norms. Even though they represented a participatory style of governance, they were also entrenched in hierarchies of caste, class and gender as the decision-making processes excluded the marginalised groups. The contemporary understanding of Panchayati Raj began to take shape in the colonial era, as British administrators discovered the usefulness of local councils in managing rural affairs. However, they largely viewed them as tools of control rather than empowerment. With independence in 1947, the Indian leadership attempted to institutionalise democratic decentralisation as a means of enhancing rural growth and increasing democracy. The report of the Balwantrai Mehta Committee, published in 1957, recommended the establishment of a three-tier system of Panchayati Raj, comprising village, block, and district levels, to encourage people's participation in the planning and execution of development programmes.[13]

Some states, such as Rajasthan (1959) and Andhra Pradesh, among others, introduced Panchayati Raj following these recommendations. Nevertheless, the system was not uniform throughout the states, as the levels of autonomy and efficiency varied. As also noted by the Ashok Mehta Committee of 1977, more powerful Panchayati Raj institutions were necessary, proposing two levels and increased financial authority. Despite these attempts, the Panchayati Raj system remained a weak institution that was frequently overshadowed by bureaucratic influence and political interference.[14] However, the system was not granted constitutional status until the early 1990s, when it received constitutional recognition under the 73rd Amendment Act of 1992, in the context of a broader reform movement towards democratisation. This amendment served as a pivotal point, as it transformed Panchayati Raj from a state-led experimental model to a nationwide structure of decentralised governance.

When the 73rd Amendment in 1992 took effect in 1993, it institutionalised Panchayati Raj as the third tier of governance in India. It required the establishment of Gram Panchayats at the village level, Panchayat Samitis at the block level, and Zila Parishads at the district level. These bodies were granted constitutional status through the amendment, which was intended to establish their tenure, hold elections frequently, and implement financial devolution. Above all, it introduced measures to

reserve seats for the Scheduled Castes, the Scheduled Tribes, and women. Women were permitted to occupy at least one-third of the total seats in the Panchayati Raj institutions, including chairperson seats. It was a groundbreaking move in Indian democracy, intended to rectify centuries of marginalisation and empower women to enter the world of politics.

The women's reservation was not just symbolic; it aimed to guarantee material participation in governance. The amendment undermined the patriarchal norms that traditionally relegated women to the domestic world by requiring the presence of women in the decision-making institutions. It recognised that democracy cannot be complete without gender inclusiveness and that the development of rural areas cannot be achieved without the active participation of women. In the long run, several states surpassed the constitutional quota, raising the quota of women to fifty per cent. This growth also increased the representation of women, and they became a strong force in local government.

The reservation policy was radical and pragmatic from a sociological perspective. It was radical in that it broke patriarchal institutions that were firmly entrenched through the insertion of women into positions of power. It was practical in the sense that it acknowledged the fact that, without structural intervention, women's participation in the process would be minimal, as social and cultural obstacles would hinder their involvement. The amendment was therefore an intentional effort to democratise the power at the grassroots, not only through decentralisation of power but also through the diversification of representation.

The implementation of the 73rd Amendment, which led to the entry of women in Panchayati Raj institutions, was a historic development. However, the initial experiences of women indicated potential changes and the challenges they faced. Most of the women who were elected to the office of Sarpanchs or Panchayat had a background that would mean minimal exposure to formal politics or government. It was their first appearance in social life, and some of them had to navigate complicated social norms, bureaucracy, and social relationships. The reservation policy provided their presence, but not necessarily autonomy. Women leaders, in many instances, faced opposition from male relatives, community elders, and bureaucrats who were not ready to accept their leadership.

The phenomenon of proxy leadership is one of the most popular debates. In most villages, men who have married or are close relatives of women elected as leaders (also known as sarpanch pati) hold power over their elected female leaders, often rendering them nominal figures. The practice is an indication of the survival of patriarchy, wherein the informal male dominance sublimes the formal power of women. However, female researchers claim that proxy leadership also has some negative effects: it introduces communities to the concept of women in leadership. It gradually becomes more accepting of their presence in the sphere of governance. Over time, numerous women

leaders have claimed their positions, leaving behind proxy positions to take power in a real sense.

Nevertheless, these difficulties could not hinder the positive influence of women in leadership roles, as earlier experiences also demonstrated. Research and field reports have shown that women Sarpanchs tend to focus on issues that male leaders, such as drinking water, sanitation, healthcare, education, and welfare programmes, have overlooked. The fact that most of their emphasis was on daily needs underlined their experiences as individuals and the feminist argument that women offered alternative approaches to governance. Women leaders also organised self-help groups, promoted collective action, and helped build community engagement, thereby empowering the democratic aspects of the villages. Women leaders were also able to overcome deeply ingrained traditions like child marriage, dowry, and caste discrimination, and this is an indication of how powerful grassroots democracy can be.

Capacity-building and training were also highlighted as important in the early years. A significant number of women leaders were not well educated or experienced with bureaucracy, and therefore, it was not easy for them to navigate the structures of governance. NGOs, government programmes, and Western society organisations were instrumental in training, creating awareness, and supporting women leaders. These programs aimed to educate women on their rights, duties, and the functioning of Panchayati Raj institutions, enabling them to exercise power more effectively. Gradually, a new generation of female leaders emerged, more self-confident and assertive, who did not adhere to patriarchal rules and changed the way villages were governed.

Sociologically, what happened to early women leaders in Panchayati Raj is that the dialectical process between structure and agency demonstrates itself. The reservation policy presented structural possibilities to women; however, their agency was constrained by social norms, cultural expectations, and social relationships. Although their independence was limited under patriarchy, the institutional order of Panchayati Raj offered an area of opposition and change. Those tensions were negotiated by women leaders, occasionally at the cost of being accepted by patriarchal standards, occasionally through counteractions against them, and very often through the renegotiation of the territories of power. Their experiences emphasise the complexity of social change, where progression is uneven, disputed, and gradual.

To sum up, the development of Panchayati Raj in India reflects the country's long journey towards democratic decentralisation, rooted in historical traditions but evolving in response to constitutional changes. The watershed was the 73rd Amendment, which institutionalised the Panchayati Raj and reserved power for women, democratising power at the grassroots. The lives of women leaders in their early years revealed the problems of the patriarchal world and the prospects for change.

Although women in governance were not autonomous due to proxy leadership and social resistance, the movement of women in governance redefined priorities in the community, which was widely stereotyped, and motivated people to be involved. Sociologically speaking, Panchayati Raj is not just an administrative reform, but a site of social change, where the relations between genders are challenged, redefined, and transformed over time. Women leaders, in their struggles and achievements, are answering the call of grassroots democracy and proving that real empowerment is not merely about representation, but also about transforming the structures of power and the way the concept of democracy is understood.

The introduction of women in Panchayati Raj institutions has been a significant phenomenon in breaking the patriarchal practices that have long dominated decision-making processes in villages. Historically, the government of rural areas was left under the control of male elites; females were not involved in discussions and were limited to home affairs. This monopoly was broken by the reservation of seats to women under the 73rd Constitutional Amendment, legitimising the authority of women in the Gram Sabha and Gram Panchayat. By holding leadership roles, women Sarpanchs challenge the notion that men dominate the world of governance. Their representation in decision-making platforms not only breaks the stereotype of patriarchy, but it also opens new grounds in which women can be heard. This sociological change is significant in that it redefines the nature of power relations at the grassroots level, demonstrating that women can act as agents in shaping community priorities and policies.

The influence of women in leadership is most evident in areas such as education, health, sanitation, and social welfare, which are often overlooked under male-dominated rule. Women Sarpanchs are more concerned with matters that have a direct impact on the family and community welfare. For example, they have played a vital role in enhancing girls' education, improving school infrastructure, and expanding mid-day meal programs. Healthwise, women leaders focus on maternal care, immunisation and nutrition programmes as they acknowledge the role of preventive healthcare among the rural population. Their leadership has also seen sanitation projects take off, including the construction of toilets and clean drinking water facilities, which have been linked with national campaigns such as Swachh Bharat Abhiyan. With their orientation on welfare-driven policies, women Sarpanchs expand the governmental arena to be more attentive to the daily needs and, through this, redefine the developmental agenda of the villages.

Mobilisation of women groups and participation in the community is another important aspect of women's leadership in Panchayati Raj. Women Sarpanchs typically promote the establishment of self-help groups, cooperatives, and collective programs that empower women both economically

and socially. Through these organisations, savings, credit, and income generation opportunities are made available, and women become less dependent on resources controlled by men. In addition to empowering them economically, self-help groups also bring about solidarity, and women express themselves through solidarity to challenge the social practices, including child marriage, dowry payment, and domestic violence. Women leaders also play a significant role in mobilising communities for participatory governance, so that Gram Sabhas can be an inclusive space where multifaceted voices are heard. This engagement model enhances the democracy of the grassroots because it goes beyond the formal form of representation to substantive interaction with the community members.

Case studies from all over India depict the transformative power of women Sarpanchs in tearing down the patriarchal veil and creating social change. In the state of Rajasthan, women leaders have actively led campaigns in curbing child marriage and have been able to use their powers to impose legal norms and mobilise the society. In Bihar, women Sarpanchs have given greater importance to sanitation projects, resulting in significant improvements in public health outcomes.[16] This has led women leaders to take the lead in spreading literacy and health awareness in Kerala, resulting in impressive social indicators for the state.[17] Similarly, in Madhya Pradesh, women Sarpanchs have organised self-help groups to boost the economic independence of women to defy traditional gender roles. Such case studies demonstrate that, despite resistance and structural barriers, women Sarpanchs have redefined the form of governance by placing the challenges of welfare, equity, and justice at the centre stage.[18]

Overall, women Sarpanchs of the Panchayati Raj institutions represent an intersectional gender and governmental phenomenon that challenges patriarchal norms, transforms the developmental agenda, promotes collective action, and facilitates social change. Their leadership exemplifies the sociological significance of grassroots democracy, where empowerment is not only a matter of representation but also a question of redefining the very forms of power and the lives of communities.
Women Sarpanchs in the Economic role in panchayati Raj.

The resource allocation area is one of those where women Sarpanchs have made one of the most influential contributions in the institutions of the Panchayati Raj. Unlike the traditional male-dominated leadership model, where most leaders often focus on prestigious projects and other highly visible infrastructure, women leaders tend to prefer initiatives that directly impact everyday rural lives, such as water supply, housing, and livelihood development. The pragmatic welfare is reflected in their decision-making, which ensures that scattered resources are channelled into the development of basic amenities, potable water facilities, irrigation schemes, housing schemes for people experiencing poverty, and income-generating schemes. This shift in priorities demonstrates that female

governance prioritises social justice and community welfare in public administration, thereby challenging patriarchal insensitivity to these needs.[19]

What is closely connected with the resource allocation issue is the promotion of Self-Help Groups (SHGs) and microfinance programs, which women Sarpanchs frequently promote. SHGs provide women in rural areas with a platform to collectively save, access credit, and engage in small-scale entrepreneurship. Through the development and empowerment of SHGs, women leaders enhance economic independence and unity among women, thereby lessening their reliance on male-dominated financial systems. Microfinance efforts, which Panchayats largely facilitate, enable women to invest in livelihoods, education, and health, thereby increasing their bargaining power both within households and in society. This economic empowerment of the people, in addition to destabilising the patriarchal economic systems, has resulted in an increase in social capital, which has helped women become more active in government and decision-making.[20]

The role of women Sarpanches cannot be ignored in implementing employment plans, such as the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA) and other skill development schemes. Their leadership ensures that such schemes reach marginalised households, providing them with wage jobs, alleviating poverty, and improving infrastructure in rural areas. Women leaders are also known to emphasise transparency in the implementation of the MGNREGA, ensuring that wages are paid on time and that the projects they implement address the community's needs. In skill-development programmes, they promote the attainment of vocational training among women and the youth, which increases the chances of a good living. Women Sarpanchs not only economically empower but also transform society, providing more grounds to the feminist call to the necessity of the grassroots democracy to deal not only with the equal representation of the political sphere but also with material inequalities, making their contribution to the feminist idea that the democratic society thrives only when it works at the grassroots.

Despite such accomplishments, women leaders face significant challenges that limit their performance. Financial illiteracy is another significant factor, as women Sarpanchs have not been educated or trained in financial matters, making it difficult for them to use budgets, accounts, and bureaucratic processes. Their autonomy is further limited by bureaucratic delays in releasing funds, cumbersome paperwork, and a lack of institutional support. The role of caste and classes is quite important, as women who represent the marginalised groups tend to be doubly discriminated against (as a woman and as a lower caste). There are deeply rooted hierarchies that undermine their authority, and they might meet defiance from other dominant caste groups that do not accept their leadership. These obstacles highlight the system limitations under which women leaders operate, underscoring

the need for capacity-building, training, and institutional change to empower women in governance. To sum it up, the economic status of women Sarpanchs in Panchayati Raj represents the potential for transformation and the challenges faced in grassroots democracy. Women leaders rejuvenate governance towards welfare and empowerment by focusing on livelihood, water, and housing, encouraging SHGs and microfinance, and ensuring the proper application of employment schemes. Simultaneously, obstacles like financial illiteracy, bureaucracy and caste-class relationships demonstrate the strength of patriarchal structures. This duality is a sociological indicator of the contentious nature of social change, in which feminine leadership both disturbs and negotiates well-established hierarchies, transforming the economic and social life of rural Indian society incrementally.

Women Sarpanchs Panchayati Raj Political Role.

The depiction and involvement of women in governance through the Panchayati Raj institutions represent a significant departure from the male-dominated systems that have characterised rural politics in the past. The reservation of women in the constitution has enabled women to have representation in decision-making structures, thereby democratising governance at the grassroots level. Such representation is not just numerical, but also symbolic and substantive. Women Sarpanchs represent the concept of inclusive democracy, which validates the rights of women in social life and breaks the stereotypes that politics is a male domain. Their involvement in governance has expanded the agenda of debate, with education, health, sanitation, and welfare becoming the leading village priorities.[21]

Women's leadership in policy implementation has also been used to enhance grassroots democracy. Women Sarpanchs frequently give precedence to welfare-based plans, such that government programmes are accessible to marginalised households and fulfil their daily needs. Their political forefront in enacting policies on sanitation, maternal health, drinking water, and livelihood programs is gendered in a manner that refocuses the governance on social justice. Women leaders transform the concept of development by addressing community needs rather than pursuing fame in rural settings. Such a participatory style augments grassroots democracy, as it not only decentralises power but also makes governance more responsive to the realities of rural communities.

Nevertheless, women Sarpanchs are limited by the problem of proxy leadership and male dominance when it comes to political empowerment. In most situations, elected women leaders are overshadowed by their husbands or male family members, often referred to as the sarpanch pati, who make decisions on their behalf. This reality is an indication of the inability to do away with patriarchy, whereby the formal power of women is negated by informal male domination. The lack of autonomy in women and the continued existence of tokenism through proxy leadership cast doubts regarding

the substantive nature of women's empowerment. Male dominance is also not very obvious, as it can be seen through exclusions of informal networks of power, ridicule or delegitimisation of the decisions of women. All these issues point to the strength of patriarchal frameworks, even in a place where inclusivity should be the rule.

Despite these limitations, women Sarpanchs have become a point of inspiration for future generations of women in politics. Their visibility in the state matters encourages young generations of the female gender to hope to become leaders and break the barriers of passivity and dependence caused by culture. Effective women leaders who take command, introduce welfare programmes, and organise societies and communities prove that women can also be good change agents. Their success creates a ripple effect that will lead to increased involvement of women in politics and enhance the democracy of the rural society. Sociologically, the feminine Sarpanchs represent the democratic potential of grassroots democracy, in which representation becomes empowerment, and empowerment leads to social change.

Conclusion :

One of the most dramatic sociological interventions in rural India has been the Panchayati Raj system, especially the 73rd Constitutional Amendment. Having entered centuries-old monopolies of male power, it has been ruptured by the establishment of new arenas of female agency, which involves encouraging women to participate in local governance. Women Sarpanchs, despite the resistance, proxy leadership, and structural constraints, have proved that women can make their grassroots democracy inclusive and transformative. Their leadership has prioritised the village's needs in education, health, sanitation, livelihood, and welfare, thereby promoting social justice in governance. In sociological terms, the phenomenon of women Sarpanchs represents the dynamic relationship between structure and agency. Although patriarchal values still limit their freedom of action, the institutional structure of Panchayati Raj offers them chances of bargaining, opposition, and progressive change. Women leaders organise self-help groups, counter stereotypes about the culture, and motivate the upcoming generations, turning them into change agents rather than symbolic faces of it. They prove their roles in the administration and reorganise the relations of power, redefine the priorities of the community and help to democratise the rural society.

This experience of women Sarpanchs suggests that empowerment is not a smooth road, but rather an arduous journey that is not homogeneous in all directions and is negotiated at every moment. Nevertheless, their successes, whether in policy execution, resource allocation, or community mobilisation, prove the potential of grassroots democracy to bring down well-established hierarchies. Panchayati Raj, in this regard, is not merely an administrative reform but a sociological revolution

that directly challenges patriarchy and fosters a more inclusive and equitable environment in rural areas.

References :

1. From Our Online Archive, Rural India: Patriarchal influences in local self-governing bodies hinders genuine progress, The New Indian Express (2023). https://www.newindianexpress.com/opinion/2023/Aug/19/rural-india-patriarchal-influences-in-local-self-governing-bodies-hinders-genuine-progress-2606908.html.
2. A. Kumar, the vital role played by caste and patriarchy in the emerging women leadership in the governance of local self-government of Pithoragarh and Almora district of Uttarakhand, 2019. https://www.internationalscholarsjournals.com/articles/the-vital-role-played-by-caste-and-patriarchy-in-the-emerging-women-leadership-in-the-governance-of-local-selfgovernment.pdf.
3. From Our Online Archive, Rural India: Patriarchal influences in local self-governing bodies hinders genuine progress, The New Indian Express (2023). https://www.newindianexpress.com/opinion/2023/Aug/19/rural-india-patriarchal-influences-in-local-self-governing-bodies-hinders-genuine-progress-2606908.html.
4. K. Thompson, Sylvia Walby: Six Structures of Patriarchy – ReviseSociology, ReviseSociology (2025). https://revisesociology.com/2017/01/10/patriarchy-structure-walby-sylvia/.
5. SELF-TRANSFORMATION: The Appeal & Limitations of the work of Pierre Bourdieu, 2017. https://sociology.berkeley.edu/sites/default/files/faculty/Riley/BourdieuClassTheory.pdf.
6. M. Weber, Max Weber's three types of Authority, 1922. https://www.surendranathcollege.ac.in/uploads/1752059472_BIVA_SAMADDER2020-04-26MaxWeber-1.pdf.
7. K. Thompson, Sylvia Walby: Six Structures of Patriarchy – ReviseSociology, ReviseSociology (2025). https://revisesociology.com/2017/01/10/patriarchy-structure-walby-sylvia/.
8. Id.
9. SELF-TRANSFORMATION: The Appeal & Limitations of the work of Pierre Bourdieu, 2017. https://sociology.berkeley.edu/sites/default/files/faculty/Riley/BourdieuClassTheory.pdf.
10. M. Weber, Max Weber's three types of Authority, 1922. https://www.surendranathcollege.ac.in/uploads/1752059472_BIVA_SAMADDER2020-04-26MaxWeber-1.pdf.
11. Id.
12. MAJOR RECOMMENDATIONS OF DR. BALWANT RAI MEHTA COMMITTEE ON PANCHAYATI RAJ, (n.d.). https://www.pib.gov.in/

PressReleasePage.aspx?PRID=2204614®=3&lang=2.
13. Eenadu Pratibha, Ashok Mehta Committee (1977), EENADU PRATIBHA (n.d.). https://pratibha.eenadu.net/jobs/lesson/upsc/civil-services-exam/english-medium/ashok-mehta-committee/1-1-1-1-2-3-4455-4965-20040006098.
14. Best Practice | NFS, (n.d.). https://www.nitiforstates.gov.in/best-practice-detail?id=105352.
15. A. Anita, United Nations Population Fund (UNFPA), Advancing the rights of women and Girls: Panchayats leading the way, 2022. https://india.unfpa.org/sites/default/files/pub-pdf/unfpa_compendium_panchayat_mopr.pdf.
16. K.S. Mohindra, A report on women Self Help Groups (SHGs) in Kerala state, India?: a public health perspective, 2003. https://chairecacis.org/fichiers/pdf/Katia_rapport_final.pdf.
17. Grassroot Women Leaders engage with Local Governance: The Story from Barwani District of Madhya Pradesh, Azim Premji University (2025). https://azimpremjiuniversity.edu.in/best-practices-in-local-democracy/grassroot-women-leaders-engage-with-local-governance.
18. I. Desk, Women Leadership in Panchayati Raj Institutions (PRI) at the Gram Panchayat Level: Review - IMPRI impact and, IMPRI Impact and Policy Research Institute (2025). https://www.impriindia.com/insights/women-leadership-panchayati-raj-system/.
19. K.S. Mohindra, A report on women Self Help Groups (SHGs) in Kerala state, India?: a public health perspective, 2003. https://chairecacis.org/fichiers/pdf/Katia_rapport_final.pdf.
20. DR.T. S, POLITICAL AND SOCIAL ROLE OF WOMEN SARPANCH IN RURAL DEVELOPMENT, International Journal of Novel Research and Development 9 (2024) b264–b265. https://www.ijnrd.org/papers/IJNRD2401130.pdf.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 85-91
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Economic Consequences of Rural-Urban Migration : A Statistical Analysis of Migrants in Bhiwani District, Haryana

Mukesh Poonia, Author
Doctor of Philosophy in Geography
Dr. Kaluram, Supervisor
Associate Professor Dept. of Geography
School of Social Sciences of Humanities, Om Sterling Global University, Hisar-125001

Abstract :

This research explores the economic dynamics of rural-to-urban migration within the specific geographical and socio-economic context of the Bhiwani district in Haryana. As a traditionally agrarian society facing the pressures of modern industrialization, Bhiwani serves as a microcosm for the broader Indian migration narrative. By employing a mixed-methods approach—combining longitudinal secondary data from the Statistical Abstract of Haryana with primary survey results from 192 migrant households—this study quantifies the shifts in income, consumption patterns, and investment behaviors. The statistical analysis reveals a 68% average increase in household income post-migration, yet underscores a growing disparity in urban living standards and a "de-peasantization" of the rural workforce.

1. Introduction :

The phenomenon of rural-urban migration is not merely a physical movement of people but a profound socio-economic transformation that reshapes the landscape of both the origin and the destination. In the Indian context, this movement is often driven by the structural transformation of the economy, where the share of agriculture in GDP is declining while the services and manufacturing sectors are concentrated in urban clusters. Haryana, being one of the most economically progressive states in India, presents a unique case study where high agricultural productivity exists alongside rapid urbanization.

Bhiwani district, situated in the semi-arid zone of Haryana, has historically relied on agriculture

and animal husbandry. However, over the last two decades, the district has faced severe ecological and economic stressors. Land fragmentation, falling water tables, and the diminishing returns of the Green Revolution have rendered traditional farming less viable for the younger generation. Consequently, Bhiwani has become a significant source of "push-driven" migration.

According to **Rahul (2021)**, migration in Haryana is deeply categorized by the "aspiration-attainment gap," where rural youth no longer find dignity or sustainability in ancestral occupations. The introduction of modern technology and global connectivity has shifted the psychological horizon of the rural population in Bhiwani toward urban centers like Delhi, Gurugram, and the local industrial hub of Hisar. This research aims to move beyond the qualitative descriptions of these movements to provide a rigorous statistical evaluation of how this migration impacts the economic status of the individuals and their families back in the villages of Bhiwani.

The economic consequences are multifaceted. On one hand, migration facilitates capital inflow into rural areas through remittances, which are often used for debt repayment, education, and housing. On the other hand, it leads to a "brain drain" where the most productive age group (18-35) leaves the rural economy, resulting in what **Tanwar & Singh (2024)** describe as the "feminization of agriculture," where women and the elderly are left to manage failing farms. This study seeks to bridge the gap in local literature by providing empirical evidence of these shifts specifically for the Bhiwani demographic.

2. Review of Literature and Theoretical Framework

2.1 The Harris-Todaro Model in the Context of Haryana :

The foundational theory for this study is the Harris-Todaro Model, which suggests that migration is a rational economic decision based on "expected" rather than actual wage differentials. In Bhiwani, even if urban employment is informal or precarious, the perceived opportunity for a higher wage compared to stagnant rural earnings triggers the move.

2.2 Recent Empirical Studies :

Recent scholarship has emphasized the role of social networks in migration. **Chahal & Rani (2025)** argue that migration from districts like Bhiwani is "chain-linked," where early migrants facilitate the entry of newer ones into specific urban sectors such as construction, security, and transport. Their study found that nearly 60% of migrants from Western Haryana rely on kinship ties for their first urban job, highlighting that the economic consequence of migration is often predetermined by the migrant's social capital.

Furthermore, **Srivastava (2020)** noted that the "circular" nature of migration in Northern India often masks the true economic impact. Migrants frequently return during harvest seasons, creating

a "straddling" economy where they belong to both rural and urban spheres but enjoy the full social security of neither.

3. Methodology :

3.1 Study Area and Sampling :

Bhiwani district was selected due to its representative nature of the "transitioning" Haryana. The study covers five major blocks (Bhiwani, Tosham, Bawani Khera, Siwani, and Loharu). A multi-stage stratified random sampling technique was used to select 192 respondents who had migrated for a period of at least six months.

3.2 Data Collection and Tools :

- **Primary Source :** A structured interview schedule was administered to track pre-migration and post-migration economic indicators.
- **Secondary Source :** Data from the Statistical Abstract of Haryana (2023-24) and the NSSO 77th Round on Land and Livestock Holdings.
- **Statistical Analysis :** Descriptive statistics (Mean, SD), Correlation analysis between education and income gain, and Paired T-tests to measure the significance of income change.

4. Statistical Analysis and Discussion :

4.1 Demographic Profile and Push-Pull Factors :

The statistical data indicates that 72% of migrants from Bhiwani are between the ages of 20 and 30. Education levels vary, but a significant 45% possess a senior secondary certificate or a basic vocational diploma.

Table 1 : Primary Reasons for Migration (Bhiwani Sample)

4.2 Economic Transformation : Income and Expenditure :

The core finding of this study is the drastic shift in the income ceiling. Pre-migration, 65% of the respondents belonged to the "Lower Income Group" (LIG), earning less than ?10,000 per month. Post-migration, this figure dropped to 12%, with a majority shifting into the ?20,000–?35,000 bracket. **Chahal & Rani (2025)** emphasize that "the income generated post-migration is often the only source of liquid cash for rural households, which otherwise survive on credit-based agricultural cycles."

4.3 Utilization of Remittances :

A critical economic consequence for the rural economy of Bhiwani is how remittances are utilized.

- **Debt Liquidation :** 38% of households used migration income to pay off high-interest loans from local moneylenders.
- **Asset Creation :** 24% invested in pucca housing.
- **Human Capital :** 18% reported using the funds specifically for the private education of younger siblings or children.

4.4 The "Shadow" Costs of Migration :

Statistically, while nominal income rises significantly, the real economic gains are tempered by the "shadow costs" of urban survival. The "cost of living index" for a migrant from Bhiwani in a city like Gurugram or Delhi is estimated to be 4.5 times higher than in the home district. When income is adjusted for Purchasing Power Parity (PPP) at a local level, a migrant earning ?25,000 in an urban center often possesses less discretionary income than a rural worker earning ?12,000, primarily due to exorbitant rents, utility costs, and the commercialization of basic services like water and transport.

Furthermore, **Tanwar & Singh (2024)** highlight the "hidden economic loss" of neglected farm assets and livestock in the village. In Bhiwani, the absence of the primary caretaker often leads to the degradation of irrigation infrastructure and a decline in soil health due to proxy management, which reduces the long-term valuation of the family's land holdings. Additionally, there are profound psychological and health-related shadow costs. The lack of social capital in urban slums leads to higher rates of expenditure on private healthcare for lifestyle diseases and stress-related ailments, which are non-existent in the rural Bhiwani context. These factors contribute to a "liquidity trap" where the migrant remains employed in the city to service urban debts, despite a stagnant net worth.

5. Societal and Macroeconomic Impact on Bhiwani District :

5.1 Impact on Local Labor Markets :

The exodus of able-bodied men from rural blocks such as Siwani and Loharu has fundamentally

tightened the local labor supply. This scarcity has led to a sharp increase in nominal agricultural wages in Bhiwani; survey data indicates a 25-30% rise in daily wage rates for sowing and harvesting over the last three years. While this benefits the remaining landless laborers, it places immense economic pressure on small and marginal farmers who do not migrate but cannot afford the rising wage bill.

Furthermore, the "brain drain" of the younger, more tech-savvy demographic has resulted in a stagnation of traditional farm management. As highlighted by **Kaur & Kumari (2022)**, there is a forced adoption of mechanization—not necessarily for efficiency, but as a desperate substitute for absent manual labor. This shift often involves high-interest capital investments in tractors and harvesters, further increasing rural debt. Additionally, the district is witnessing a "feminization of agriculture," where women take on the primary responsibility of farm operations. While this increases women's economic participation, it often leads to a double burden of domestic and field labor without a corresponding increase in land ownership rights or technical training.

5.2 Changes in Consumption Patterns :

The research highlights a significant shift in the consumption basket of migrant households in Bhiwani. There is a noticeable "demonstration effect," where the urban exposure of the migrant dictates the purchasing priorities of the rural family. Data suggests that the Engel's ratio—the proportion of income spent on food—has declined from 62% to 48%, indicating a shift toward non-food discretionary spending. Households with migrants show significantly higher expenditure on consumer durables such as refrigerators, high-end smartphones, and motorbikes, which serves as a symbol of improved social status within the village hierarchy.

Moreover, the quality of consumption has changed; there is a higher intake of processed foods and a greater reliance on private healthcare and "convent" schooling for children, fueled by the steady influx of urban cash. While this stimulates the local retail and service economy in small towns like Bawani Khera and Tosham, it also creates a vulnerability. The increased fixed costs of this new lifestyle mean that any disruption in urban remittances—due to job loss or illness—can lead to immediate financial distress. Crucially, this rise in conspicuous consumption often comes at the cost of long-term productive investment in agriculture, leading to a gradual erosion of the rural asset base in favor of urban-centric lifestyle maintenance.

6. Conclusion and Policy Recommendations :

The statistical analysis of rural-urban migration in Bhiwani district reveals a complex interplay between immediate economic relief and long-term structural challenges. While migration serves as a vital economic "safety valve" that provides an exit from agrarian distress and cyclical poverty, it

also alters the demographic and productive fabric of the rural landscape. The study concludes that the "expected wage" pull is strong enough to outweigh the risks of urban informality, yet the resultant de-peasantization of Bhiwani villages creates a reliance on urban cash flows that may be susceptible to macroeconomic shocks.

Furthermore, the transition from rural to urban life is often incomplete. Migrants from Bhiwani frequently find themselves in a "transitory state," where they gain financial capital but lose the social safety net provided by their village community. The economic gains, though statistically significant, are often eroded by urban inflation and a lack of institutionalized support at the destination.

Recommendations :

- **Integrated Skill Mapping and Development :** The Haryana government should move beyond general vocational training and establish "Migration Support and Skill Hubs" within Bhiwani. These hubs should align specifically with the niche requirements of the NCR industrial corridor (e.g., precision manufacturing, e-commerce logistics, and green energy maintenance) to ensure migrants enter high-value formal employment rather than precarious informal jobs.
- **Institutionalizing Remittance Management :** To prevent the "leakage" of migration gains into purely non-productive consumption, specialized rural credit societies should be incentivized. These societies can offer investment products that allow migrants to co-invest in local agro-processing units or cold-storage facilities in Bhiwani, thereby creating local employment and reversing the labor drain.
- **Universal Social Security Portability :** Addressing the "shadow costs" of migration requires the implementation of a truly portable social security framework. Ensuring that "One Nation One Ration Card" (ONORC) and healthcare benefits under Ayushman Bharat are accessible without bureaucratic friction is essential to protecting the net savings of Bhiwani's migrants in expensive urban clusters.
- **Agro-Industrial Diversification :** To mitigate "push-driven" distress migration, the state should prioritize the development of the "Bhiwani-Hisar" industrial sub-zone. By providing tax incentives for MSMEs to relocate to semi-arid districts, the government can offer "rurban" employment—allowing workers to live in their rural homes while working in modern industrial settings.

References :

1. **Chahal, D., & Rani, A. (2025).** Socio-Economic Determinants of Unemployment and Migration in Rural Haryana: A District-Wise Analysis. International Journal of Economics &

Business Administration, 13(3), 412-428.

2. **Department of Economic and Statistical Analysis, Haryana. (2024).** Statistical Abstract of Haryana 2023-24. Government of Haryana, Chandigarh.
3. **Kaur, H., & Kumari, V. (2022).** Farm Mechanization in Indian Agriculture and its impact on Social Change: A Review. IAHRW International Journal of Social Sciences Review, 10(2), 223-227.
4. **Rahul. (2021).** Migration in Haryana: Inflows, Outflows and Reasons. Health and Population: Perspectives and Issues, 44(4), 188-198.
5. **Srivastava, S. K. (2020).** Labour Migration in India: Issues and Challenges. Oxford University Press.
6. **Tanwar, R., & Singh, S. K. (2024).** Effect of Urbanization on Employment, Wages and Livelihood of Rural People in Haryana, India. Asian Journal of Agricultural Extension, Economics & Sociology, 42(12), 325-336.
7. **National Sample Survey Office (NSSO). (2023).** 77th Round: Land and Livestock Holdings of Households and Situation Assessment of Agricultural Households. Ministry of Statistics and Programme Implementation.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 92-95
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सरकारी और अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों के छात्रों की हिंदी भाषा प्रयोग में अशुद्धियों का तुलनात्मक अध्ययन

श्रीमती बंटी रघुवंशी
शोधार्थी, आई. ई. एस. यूनिवर्सिटी, भोपाल।

सारांश :-

आरत विविध भाषाओं वाला देश है, पर हिंदी यहाँ की सबसे प्रमुख संपर्क भाषा है। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव ने छात्रों के भाषा प्रयोग में एक नया बदलाव ला दिया है। सरकारी विद्यालयों के छात्र मुख्यतः हिंदी माध्यम में पढ़ते हैं, जबकि निजी विध्यालयों के छात्र अंग्रेजी माध्यम में। परिणामस्वरूप, दोनों के हिंदी प्रयोग में उल्लेखनीय अंतर देखने को मिलता है।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य सरकारी और अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों के छात्रों की हिंदी भाषा प्रयोग में होने वाली अशुध्द्धियों का तुलनात्मक विश्लेषण करना है। अध्ययन में पाया गया कि सरकारी विद्यालयों के छात्र व्याकरण और वाक्य संरचना की गलतियों अधिक करते हैं, जबकि अंग्रेजी माध्यम के छात्र हिंदी में अंग्रेजी शब्दों का अत्यधिक प्रयोग करते हैं और शुद्ध वाक्य बनाने में असहज रहते हैं।

यह शोध यह भी दर्शाता है कि भाषा की शुद्धता केवल शिक्षा के माध्यम पर नहीं, बल्कि सामाजिक परिवेश, पारिवारिक भाषा, मीडिया और शिक्षकों की भाषा दक्षता पर भी निर्भर करती है।

प्रमुख शब्द :- हिंदी भाषा, अशुद्धियों, तुलनात्मक अध्ययन, सरकारी विद्यालय, अंग्रेजी माध्यम, भाषा शिक्षण, विद्वभाषिकता, सामाजिक परिवेश, भाषा दक्षता।

परिचय :-

हिंदी हमारी मातृभाषा ही नहीं, बल्कि हमारी संस्कृति और पहचान की भाषा है। किंतु आज शिक्षा के क्षेत्र में अग्रेजी का प्रभाव इतना बढ़ गया है कि हिंदी भाषा का प्रयोग धीरे–धीरे सीमित होता जा रहा है। निजी विद्यालयों में अंग्रेजी को आधुनिकता और सफलता का प्रतीक माना जाता है, जबकि सरकारी विद्यालयों में हिंदी का प्रयोग अब भी पारंपरिक रूप से जारी है।

एक ही शहर के दो बच्चे एक सरकारी विद्यालय से और दूसरा अंग्रेजी माध्यम विद्यालय से–जब हिंदी में बात करते हैं, तो उनके उच्चारण, शब्द चयन और भाषा की सहजता में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। यही अंतर इस शोध का मूल आधार बना।

शोध की आवश्यकता :

1. आज के विद्यार्थी सोशल मीडिया और अंग्रेजी माध्यम के प्रभाव में हिंदी को 'कमजोर' भाषा समझने लगे

हैं।

2. सरकारी और निजी विद्यालयों के बीच भाषा की दूरी लगातार बढ़ रही है।
3. हिंदी शिक्षण में शुद्धता और प्रयोगशीलता दोनों घटती जा रही हैं।
4. भाषा केवल संप्रेषण का साधन नहीं, बल्कि सोचने और व्यक्त करने की क्षमता का दर्पण है।
5. ऐसे में यह आवश्यक है कि दोनों माध्यमों के छात्रों की हिंदी प्रयोग की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए ताकि भाषा शिक्षण में सुधार के उपाय निकाले जा सकें।

शोध के उद्देश्य :

1. सरकारी और अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों के छात्रों की हिंदी भाषा प्रयोग की तुलना करना।
2. छात्रों की प्रमुख भाषिक त्रुटियों की पहचान करना।
3. इन त्रुटियों के सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और शैक्षणिक कारणों का विश्लेषण करना।
4. हिंदी भाषा शिक्षण में सुधार हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

परिकल्पना :

1. सरकारी विद्यालयों के छात्रों में हिंदी की व्याकरणिक अशुद्धियाँ अधिक पाई जाएंगी।
2. अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों के छात्र हिंदी में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग अधिक करेंगे।
3. छापों की आषा दक्षता उनके पारिवारिक वातावरण और शिक्षण माध्यम से सीधे प्रभावित होती है।

शोध की विधि :

यह अध्ययन सर्वेक्षण एवं तुलनात्मक पद्धति पर आधारित है।

(क) नमूना चयन :

भोपाल जिले के 4 विद्यालयों का चयन किया गया (2) सरकारी, 2 अंग्रेजी माध्यम)।

कुल 60 छात्र (30–30 दोनों वर्गों से) शामिल किए गए।

(ख) डेटा संग्रह :

1. छात्रों से हिंदी में 'मेरा विद्यालय' पर निबंध लिखवाया गया।
2. मौखिक रूप से उनसे दैनिक जीवन के विषय पर बातचीत कराई गई।
3. शिक्षकों से साक्षात्कार लेकर शिक्षण पद्धति और चुनौतियों जानी गई।

(ग) विश्लेषण विधि :

संग्रहीत डाटा को त्रुटियों के आधार पर चार वर्गों में बाँटा गया –

- व्याकरण संबंधी अशुद्धियाँ।
- शब्दावली की गलतियों।
- अनुवाद आधारित हिंदी।
- उच्चारण त्रुटियाँ।

डेटा विश्लेषण :

(1) सरकारी विद्यालयों के छात्रों में पाए गए प्रमुख दोष :

- लिंग और वचन की गलतियों मैं गई था, 'तुम बोलती है।'

- विराम चिह्न और वाक्य संरचना की अशुद्धियाँ।
- स्थानीय बोली का प्रभाव 'सकूल', 'काढो, 'बोल रहा हूँ ना'।
- हिंदी शब्दों का सीमित ज्ञान।

अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों के छात्रों में पाए गए प्रमुख दोष :

- अंग्रेजी शब्दों का अत्यधिक प्रयोग 'मुझे टॉपिक समझ नहीं आया, 'मेरे डैड ने कहा नो नीड' शुद्ध हिंदी शब्दों का प्रयोग न कर पाना।
- अनुवाद प्रधान भाषा– 'मैं तुम्हें मिस करता हूँ'. 'मैं अपने क्लास में फर्स्ट टाइम गया।' 'हिंग्लिश' का प्रभाव हिंदी वाक्य अंग्रेजी ढाँचे में।

सामाजिक व व्यवहारिक विश्लेषण :

- सरकारी विद्यालयों के छात्र ग्रामीण पृष्ठभूमि से आते हैं, जहाँ हिंदी बोलचाल की भाषा है, पर शैक्षणिक हिंदी का अभ्यास कम है।
- अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों में अभिभावक स्वयं अंग्रेजी बोलने की ओर झुकाव रखते हैं, जिससे हिंदी को दूसरी भाषा माना जाता है।
- मीडिया, मोबाइल और सोशल नेटवर्किंग साइट्स ने 'मिक्स लैंग्वेज' की आदत बढ़ाई है।
- शिक्षकों की प्रशिक्षण की कमी से भाषा शुद्धता सिखाने पर ध्यान कम है।

वास्तविक जीवन से उदाहरण :

1. एक सरकारी स्कूल की छात्रा बोली, 'मैडम, मैं रोज स्कूल जाता है'– यह वाक्य शुद्ध नहीं, पर उसका अर्थ स्पष्ट है। यह भाषा–शुद्धता की नहीं, भाषा–अभ्यास की कमी दर्शाता है।
2. वहीं अंग्रेजी माध्यम के एक छात्र ने कहा 'मैम, मैं हिंदी स्पीक कम करता हूँ '– यहाँ अंग्रेजी सोच हिंदी में उतर रही है।
3. दोनों ही उदाहरण यह बताते हैं कि भाषा का माध्यम नहीं, उसका अभ्यास और वातावरण महत्वपूर्ण है।

मुख्य निष्कर्ष :

1. सरकारी विद्यालयों में हिंदी की जड़े मजबूत हैं, पर भाषा अभ्यास सीमित है।
2. अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों में हिंदी का अभ्यास कम और अंग्रेजी का प्रभाव अधिक है।
3. दोनों प्रकार के विद्यालयों में शिक्षक भाषा शुद्धता पर पर्याप्त ध्यान नहीं देते।
4. मीडिया और मोबाइल भाषा की अशुद्धि के प्रमुख कारक बन गए हैं।
5. बच्चे अब शुद्ध हिंदी के बजाय सुविधाजनक भाषा बोलना पसंद करते हैं।

सुझाव :

1. विद्यालयों में 'शुद्ध हिंदी सप्ताह' या 'भाषा उत्सव' आयोजित किए जाएँ।
2. शिक्षकों के लिए आषा दक्षता प्रशिक्षण अनिवार्य किया जाए।
3. छात्रों को कहानी लेखन, वाद–विवाद, और संवाद अभ्यास जैसे कार्यक्रमों से जोड़ा जाए।
4. अभिभावकों को भी घर में हिंदी बोलने के लिए प्रेरित किया जाए।
5. सोशल मीडिया पर शुद्ध हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के अभियान चलाए जाएँ।

6. अंग्रेजी और हिंदी दोनों भाषाओं के संतुलित प्रयोग पर जोर दिया जाए।

निष्कर्ष :

हिंदी भाषा में अशुद्धियों केवल व्याकरणिक नहीं, बल्कि सामाजिक और मनोवैज्ञानिक बदलाव का परिणाम हैं। जहाँ सरकारी विद्यालयों में संसाधन और प्रशिक्षण की कमी है, वहीं अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों में हिंदी के प्रति सम्मान और अभ्यास की कमी है।

यदि शिक्षक, अभिभावक और शिक्षा नीति–निर्माता मिलकर भाषा संतुलन की दिशा में काम करें, तो विद्यार्थी दोनों भाषाओं में दक्ष बन सकते हैं। हिंदी को शुद्धता के साथ प्रयोग करने की प्रवृत्ति तभी बढ़ेगी जब इसे 'गौरव की भाषा' के रूप में प्रस्तुत किया जाएगा, न कि केवल 'विषय' के रूप में।

संदर्भ सूची :–

1. नेहरू, जवाहरलाल (1954). भारत एक खोज. नई दिल्ली : राष्ट्रीय प्रकाशन।
2. प्रसाद, लक्ष्मण (2018). भाषा शिक्षण और व्याकरण दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
3 शर्मा, आर.सी. (2019). हिंदी भाषा की शिक्षण विधियों, भोपाल : मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।
4. सिंह, सुरेश कुमार (2020). शिक्षा में भाषा का महत्व लखनऊ : शिक्षा भारती प्रकाशन।
5. हिंदी विभाग, आई.ई.एस. यूनिवर्सिटी (2022). शासकीय और निजी विद्यालयों में भाषा शिक्षण की स्थिति पर रिपोर्ट।
6. शर्मा, आर.सी. (2019). हिंदी भाषा शिक्षण पद्धति. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
7. सिंह, सुरेश कुमार (2021). भाषा और समाज, लखनऊ : शिक्षा भारती।
8. प्रसाद, लक्ष्मण (2018) भाषा शिक्षण और व्याकरण, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
9. जोशी, माधव प्रसाद (2015). विद्यालयों में भाषा शिक्षण की समस्या भोपाल : मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।
10. वर्मा, कुसुम (2017), शिक्षा और भाषा विकास जयपुर : अर्पण पब्लिकेशन।
11. मिश्रा, अनीता (2020) हिंदी माध्यम बनाम अंग्रेजी माध्यम शिक्षा : एक तुलनात्मक अध्ययन बनारस : भारती प्रकाशन।
12. नेहरु, जवाहरलाल (1954), भारत एक खोज नई दिल्ली : राष्ट्रीय प्रकाशन।
13. चतुर्वेदी, हरीश (2016). भाषा और संस्कृति का संबंध दिल्ली : साहित्यानुभूति।
14. ठाकुर, देवेंद्र (2021). समाज भाषा विज्ञान के सिद्धांत नई दिल्ली : हिंदी बुक सेंटर।
15. त्रिपाठी, मृदुला (2019) हिंदी भाषा शिक्षण के आधुनिक प्रयोग वाराणसी : भारती बुक डिपो।
16. शर्मा, विनीता (2022), विद्यालयी शिक्षा में भाषा का संकट, भोपाल : शोध भारती।
17. सिंह, सुशील कुमार (2020). हिंदी की वर्तमान स्थिति और शिक्षण चुनौतियों, लखनऊ : भारतीय प्रकाशन गृह।
18. अग्रवाल, पूजा (2018) अंग्रेजी माध्यम शिक्षा का प्रभाव : मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन, दिल्ली : अनामिका पब्लिशर्स।
19. यादव, संतोष (2021). द्विभाषिकला और शिक्षा का प्रभाव भोपाल : भाषा विज्ञान अकादमी।
20. हिंदी विभाग, आई.ई.एस. यूनिवर्सिटी (2022). शासकीय और निजी विद्यालयों में भाषा शिक्षण की स्थिति पर रिपोर्ट।

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 96-105
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Caste-Bound Reciprocity to Machine- and Market-Centred Pragmatism : Agrarian Reform in Kuttanad, Kerala.

Mohan Mathew, Research Scholar
Dr. Leela P. U, Asst. Professor and Research Guide
Department of Sociology and Centre for Research
St.Teresa's College (Autonomous), Ernakulam.

Abstract :

The article evaluates the transformation of the agrarian social relations in Kuttanad, Kerala, into pragmatism and machine-based and market-oriented caste-transcendent relations. Based on the constructivist grounded theory analysis of the interviews with farmers and cultivators under lease-based cultivation in 2023-2024, the study follows the transformation of everyday cooperation and conflict between various agrarian caste groupings as a result of mechanisation that has restructured the daily relationship between farmers and cultivators, migrant labour, credit dependency, and institutional payment/water regimes. As the land reforms in Kerala have eased open caste hierarchies, newer fault lines have been drawn based on local-migrant, owner-lessee, solvent-indebted fault. More machines, contracts, credit, and bureaucratic timing have now organised agricultural life than did the older moral economy of caste-inflected reciprocity, creating a new social order of hybrid social memory of the previous reciprocity and market pragmatism.

Keywords : Agraian transformation, Kuttanad, caste relations, agricultural mechanisation, migrant labour, reciprocity, moral economy, lease farming, procurement, and grounded theory.

1. Introduction

1.1 Kuttanad : Below Sea Rice Bowl :

Kuttanad is a region of India that is one of the most unique agrarian areas, with its presence stretching across the areas of Alappuzha, Kottayam, and Pathanamthitta districts. It is deltaic terrain created by the rivers of Pamba, Meenachil, Achankovil, and Manimala and is world renowned as a unique example of below sea level rice agriculture, where agriculture is being practiced about 1.2-3

metres below mean sea level. Large areas of paddy fields (puncha vayals) are recovered by backwaters, and surrounded by earthen and stone bunds and maintained in a cultivable state with the help of pump and drainage systems.

The ecology of the region also renders agriculture overly reliant on the control of water. The agricultural calendar is characterized by monsoon, river flooding, and intrusion of the salinity. A single main crop of puncha is usually harvested, and it cannot be grown during heavy monsoon and high salinity seasons. It is important to note that the FAO has recognised the uniqueness of the practices and the Kuttanad Below Sea Level Farming System has been declared as a Globally Important Agricultural Heritage System (GIAHS).

1.2 From Janmi–Kudiyan to Post-Reform Agriculture :

Historically, the agrarian relations in Kuttanad used to be organised on the basis of the janmi-kudiyan system where the upper-caste landlords (janmis) possessed a high level of control over the tenants (kudiyans), and caste hierarchy, controlled land, and the labour domination were closely connected. This relationship was entrenched in customs like patham (harvest sharing), festival gifts (i.e. at Onam), and ritual duties, and constituted a caste-colored moral economy. Even these unequal connections had some trace of social insurance and mutuality since patrons were to offer redress in distress.

Land reforms in Kerala led to the 1969 Amendment to the Kerala Land Reforms Act, which put an end to landlordism and granted tenants ownership of their lands, land ceilings, and homestead rights granted to hutment dwellers (kudikidappukars). This broke the institutional foundation of janmi authority and launched a group of peasant owners who greatly diluted agrarian hierarchy based on caste.

However, as the empirical material provided above indicates, the tale is not concluded with the egalitarian peasant possession. Since land reform, mechanisation, wage increases, labour shortage, lease farming, credit dependency and institutional procurement/water regimes have transformed normal agrarian relations in the decades that follow. The main issue of the article is to trace that change of caste-limited reciprocity to machine- and market-centred pragmatism.

1.3 Research Focus :

According to the constructivist grounded theory analysis of the interviews conducted with cultivators and Kuttanad stakeholders (2023-2024), the thesis of the article is :

What have been the effects of mechanisation and migrant labour, leases and institutional payment/ water regimes on everyday cooperation and conflict between various agrarian caste communities in Kuttanad?

The paper places the Kuttanad case in the context of sociological issues of agrarian change, moral economy, caste and market transformation and the field findings are triangulated with the Kerala government-level documents on mechanisation and paddy procurement.

2. Literature Review (Five Thematic Paragraphs)

2.1 Caste and Agrarian Relations in a Marketising Economy – Mosse (2019), Choudhary (2020) :

According to Mosse (2019), the contemporary view of caste in scholarship and policy tends to view it as a kind of non-modern legacy that is divorced from the allegedly market-based caste-erasing domain. Nevertheless, in his ethnography of south Indian villages, it is demonstrated that caste still organizes the access to land, labour and markets, despite the fact that overt ritual hierarchy is dampened. The effects of caste tend to be transferred to apparently neutral terms like skill, trust and respectability. Choudhary (2020), in a study looking at an emerging agrarian system in north India, reveals that the dissolution of zamindari enabled the backward castes to have access to land occupancy, but new inequalities were brought about through unequal access to credit, mechanisation and market linkages. A combination of these studies indicates that both market and caste are inextricably linked and that agrarian change might not eliminate caste-infested power but instead re-establish it.

2.2 Market Disembedding and Double Movement – Polanyi (1944) and Kaup (2015) :

The Great Transformation (1944) by Polanyi theorises the way in which capitalist markets treat land, labour, and money as fictitious commodities, and they are exposed to price changes without considering that they are social in nature. Market growth separates economic life, and the social regulation of the market, leading to a "two-step dance: a society that attempts to save itself by developing counter-movements - agrarian regulation, cooperatives or welfare. Kaup (2015) goes a step further to demonstrate that space and ecological specifications influence the nature of market organisations that actors prefer based on their location relative to land and nature. In the case of agrarian Kerala, this implies that the replacement of caste-mediated by market-mediated agriculture will create new forms of protection claims and conflicts over land, water, as well as price support.

2.3 Moral Economy and Subsistence Ethic – Scott (1976) :

In The Moral Economy of the Peasant, Scott (1976) argues with the notion that the maximisation of profits is the paramount motivation of peasants. Rather, peasants tend to work on the basis of subsistence ethic which considers safety above risky yet probably high profit enterprises. Pre-capitalist agrarian orders were based on reciprocity patterns, customary obligations, and redistributive practices which gave low levels of security, although they were highly unequal. When these arrangements were torn down, as colonialism and market imperatives began, peasants did not

take the developments as economic loss only but as moral violation, as a source of resistance. The framework provided by Scott would be helpful in the case of Kuttanad where the weakening of janmi–kudiyan reciprocity and collective labour can be interpreted as the weakening of a local moral economy, despite the augmentation of formal equality.

2.4 Mechanisation, Labour Displacement, and Social Relations – The Academic (2024), China AMPS Study (2024) :

According to a recent study by farm mechanisation and rural employment (The Academic, 2024), mechanisation of Indian agriculture leads to a significant decrease in labour requirements, almost by 40% of the average workers per farm as well as a significant decline in the number of workdays per season, and a significant amount of reported mental health stress by displaced workers. A quasi-experimental study of the Agricultural Machinery Purchase Subsidy (AMPS) programme in China also results in a similar outcome: that mechanisation speeds up rural labour mobility and labour displacement, particularly of less-educated workers, and the benefits were gained by households that could conveniently invest in or purchase machinery. Mechanisation, in sociological terms, is not merely a productivity enhancing technology but it is a force of restructuring, and translocation of collective workgroups, and crunching of social interactions, and reorganization of class and generational relations.

2.5 Agrarian Transformation in India – Mohanty (2021) and Rural Transformation Debates:

Mohanty (2021) places agrarian transformation in western India as a long-term process between the colonial agrarian formations and the state-led development of the post-independence era up to modern liberalisation. He demonstrates that economic advantages have been generated with social costs (technological change (HYV seeds, mechanisation), changing tenancy, market integration), such as inequalities between some types of labour, feminisation, and increased vulnerability of small and marginal cultivators. On a bigger scale, Indian agrarian sociology observes the breakdown of the jajmani relations, the appearance of contractual and credit-relation, and the formation of a new type of commercial farmers dominating the local politics and access to resources. The Kuttanad case can exemplify these trends and, however, introduce a unique element of below sea level ecology, heavy State interference in the procurement, and a certain legacy of land-reform.

3. Methodology :

The research that the analysis presented is based on applies a constructivist approach to grounded theory proposed by Charmaz (2014), according to which only the interaction between the researcher and the participants builds the data and the theory instead of finding them pre-established. It is a method that can be used to describe changing, relational phenomena such as agrarian

transformation.

3.1 Data Collection :

The results came up due to the deep and semi-structured interviews of the cultivators and other actors involved in Kuttanad in 2023-2024. Some of the figures in the sample were Francis, Chacko, Ouseppachen, Mohan Pilla, Thankachen Kalavara, Georgukutty Manaladi, Thankacentsir, Rony M. Jose and Cherian Kunju. The respondents were of various statuses: small/marginal owner-cultivators, lessee farmers, larger operators, who hire machines and migrant labour, and people who were directly related to padasekharam committees and procurement procedures.

Themes examined in interviews included work organisation, caste relations and neighbour relations, mechanisation and migrant labour, lease and credit relations, experience of procurement delays and deductions, water-control issues and views on change over time.

3.2 Coding and Analysis :

The review was based on the traditional grounded theory process in the constructivist version of Charmaz :

- **Open coding :** transcribing transcripts into the emergent codes which include eroding caste-patronage reciprocity, mechanisation replacing workgroups, migrant labour dependence, lease-and-contract-based farming, credit and gold-backed dependence, procurement delays and deductions, committee and auction gatekeeping, water-control conflicts and the exit of fields by the youth and women.
- **Focused coding :** combination of open codes into general categories :
- Migrant Regime (employees who are in migrant crews),
- Farming through Lease- and Credit-Driven,
- Timing and Extraction of institutions (PRS, unions, auctions, committees),
- Infrastructural, and Strain, Ecological.
- Thinning Caste Reciprocity.
- **Axial coding :** condition (land reforms, wage rises, labour scarcity, ecological shocks), strategy (turn to machines, leases, gold loans, migrant labour), outcome (cost loss squeeze, the disappearance of mixed-caste workgroups, boundary shift beyond caste).

In the process of constant comparison, a central category was generated :

Between caste-determined reciprocity and machine- and market-determined pragmatism, the restructuring of the social life of the paddy economy of Kuttanad.

4. Body of the Article: Key Empirical Themes

4.1 From Janmi–Kudiyan Bonds to Thin, Contractual Ties :

The respondents recollect a previous era when there existed a kind of affection and sincerity between the farmers despite the domination that they miss today. Such memories revolve around long term relationships of landlords, tenants and labourers through harvest shares and festival gifts. Land reforms and later uplift of social-economic status have made the open caste domination in the disciplines gentler. However, instead of resulting in thick egalitarian collaboration, the current is being defined by the thinner contractual relationships in which relationships are established by leasing short-term, wage agreements and machine booking instead of long-term patronage.

This reflects the argument put forward by Scott that the weakening of a moral economy (however inequitable), can create new insecurities unless substituted with new, effective security measures.

4.2 Mechanisation and the Compression of Social Interaction :

Mechanisation is well perceived by the respondents as something that cannot be done away with economically. According to the words of Francis, the harvest machine brought the end to agriculture. In the case of harvesters, it takes one day to carry out work that would have taken weeks of combined effort. Cycles like harvesting, threshing and ploughing are now conducted by small groups of people operating machines and they tend to move quickly field to field.

Such time compression incredibly shortens the length and intensity of contact between mixed-caste/mixed-gender working groups. Previously, transplanting or harvesting was done with hardworking and sharing, gossips, shared meals and mutual exchange. The field has been brought down to indicated social life by short-term interactions with machine operators and migrant crews, mediated by money and strict timetables. This is in line with broader facts that mechanisation replaces human work and skimming the social net, despite increasing productivity.

4.3 Labour Scarcity, Migrant Workers, and Local–Migrant Boundaries :

This migration by the youth, education, and other jobs (such as the MGNREGS) has resulted in labour deficit which has contributed to high migration dependency particularly on the migrant workers of West Bengal and Tamil Nadu. According to the respondents, there are few locals, Bengali workers prevail. These workers are hired, lodged and managed by contractors.

This creates another dimension of social stratification: local and migrant. Local caste structures are not important in the daily interactions around the field compared to Malayali versus Bengali/ Tamil workers, people in local networks versus those requiring mediation by contractors. Others like local farmers favour local labour due to the reasons of trust and familiarity whereas others depend on migrants to address local labour shortage and wage demands.

The ancient caste-based patronage relations are thereby substituted by an amalgamation of

anonymous market relations and ethnicised boundaries with the migrants in a precarious place since they do not speak the language, have no knowledge rights or social capital.

4.4 Lease Farming, Gold Loans, and the Credit Squeeze :

The increased organisation of kuttanad into short-term lease contracts (otti) and credit-supported ones is taking place. Most of the cultivators do not possess all the land under which they cultivate; they leasing in plots verbally on a seasonal basis and pay after harvest. These plans are weak and operational and usually result in conflicts during lean years.

The farmers depend on bank loans, Self-Help Groups, and, most importantly, gold loans to finance inputs, machine hire, and labour. One of the respondents told how he sold the chain of his wife to the harvester. This lease and credit squeeze implies the saturation of social relations with creditordebtor talk and the farmers are being careful with offering informal credit to their neighbours. Here the concept of land, labour, and money as fictitious commodities as suggested by Polanyi can be observed very clearly: cultivation is confined within a narrow financial rationality where delayed harvests or harvests that fail to yield plunge one into debt quite soon. The economic system of helping each other out is limited to the contractual requirements to the banks, machine operators, and the landowners.

4.5 Institutional Timing: PRS, Delays, and Cross-Caste Grievances :

The paddy procurement system that is meant to be a protective mechanism is perceived as a source of institutional extraction and time insecurity in Kerala. The farmers have to sell to specific mills and get Paddy Receipt Sheets (PRS) which theoretically entitles them to loans and payment under MSP. Practically, the delay in payments usually ranges between three and six months and the reluctance of the banks against loans against PRS is on the rise.

Such procrastinations and arbitrary deductions cause serious frustrations. The caste-based grievances by farmers revolve around mills, unions (loading charges), and state agencies. This creates an anti-traditional caste-against-institution farmer solidarity pushed upwards rather than the classical caste-against-caste antagonism.

We can see the two steps stated by Polanyi here; the same State, which brought about procurement to safeguard farmers, has fallen into the trap of bureaucracy, thus offering a protest and reform demands.

4.6 Water-Control Conflicts and Ecological–Infrastructural Strain :

Farming below the sea level needs complex bunds, canals and pumping systems. Padasekharam committees, Puncha Special Office (auctions) and KSEB approvals mediate on decisions relating to drainage and the repair of bunds. Even breaches of bunds and salinity intrusions during critical periods

of crop growth may ruin whole fields. There are not only complaints about failures of outer bunds and absent reimbursement by the state to farmers. Controversies on cost and labour sharing are caused because of whose duty it is to repair. It is through these water-control structures that cooperation and conflict is structured, and farmers tend to be frustrated with bureaucratic neglect as opposed to fellow cultivators. Political ecology teaches us that water structures are extremely political; they represent decisions on the fields that will be spared and those that will be lost.

4.7 Gender and Generational Exit from the Fields :

According to respondents, agricultural labour has been left much by the youth and women. Education and possibilities of migration support the aspirations of the youths to non-farm jobs. Women who were out in the rice fields performing transplanting, weeding and harvesting are no longer as visible in the fields, partly because of mechanisation and partly because of alternative work and altered ambitions.

This eliminates the labour pool, and inter-generational and inter-caste apprenticeship connections, in which young individuals acquired skills and social conventions with the elders in the profession. The everyday sociability becomes detoriented to fields and redirects to schools, markets and service sectors workplaces. Agrarian relations thereby forfeit an important location of social reproduction.

5. Discussion : Triangulating with Kerala Government Documents

5.1 Mechanisation Policy and Social Costs :

The Kerala drive to mechanisation, through initiatives such as the Sub Mission on Agricultural Mechanization (SMAM), focuses on productivity, reduction of cost and saving of labour. The circulars issued by the government emphasise on subsidies of machines, assistance of Custom Hiring Centres (CHCs), and mechanisation as means to solve the labour shortage. Yet in these records, social costs are seldom considered: displacement of local labour force, loss of collective workgroup, loss of women involvement and loss of reciprocity. Mechanisation is not presented as a reorganisation of social relations, but rather as a technical solution. The empirical evidence provided by Kuttanad demonstrates that mechanisation is material need but at the same time is one of the major causes of thinning society which has to be examined as such.

5.2 Procurement Crisis and Farmer Distress :

The ministry of Agriculture and Farmers Welfare offers official answers which admit to procurement bottlenecks, and mill unwillingness but presents this as a short-term problem underway. There are however, reports in journalism in Kerala of systematic crises: tens of crores of rupees of unpaid dues, banks declining PRS based loans, and farmers threatening protests. Such triangulation

points out that the institutions meant to be Polanyian protective counter-movements may turn out to be the sources of displacement, when they are under-invested in or mismanaged. The accounts of farmers that they have to wait months before receiving a payment attest to the fact that institutional timing and extraction becomes the core aspect of their experience of the State and the market.

5.3 Land Reform Legacy and New Inequalities :

Kerala land reforms have been eulogized by the government in terms of eradication of landlordism, tenancy, and gross land inequality. Although this heritage is tangible and at the center of Kuttanad in the present, the decentration of ownership and the withdrawal of caste domination, the current formatting demonstrates that the formal equality of ownership in society has not halted emerging inequalities of access to credit, machinery, and institutional manoeuvre. This echoes the caution of Mosse (2019): the assumption of caste as a problem that is solved by the law and the market blurs the view of how all the historical disadvantages are manifested in new manifestations.

6. Theorisation :

Kuttanad case is an indication of a hybrid agrarian social order. On the one hand there is a diluted cultural resonant moral economy of reciprocity; on the other there is a hard-edged machine, leasing, loans and institutional timing regime.

- As in Scott (1976), previous masonry-crafts relations, though unequal, had a subsistence-related ethic of minimum security.
- In line with Polanyi (1944), the existing policies (mechanisation, procurement, water governance) are components of a two-fold movement, only with conflicting outcomes: it safeguards farmers and exposes them at the same time.
- New types of social capital (connection to machine operators, bank managers, committee leaders) are equally important as, and perhaps more so important than, older caste-based patronage ties, basing their argument on Bourdieu.

The main theoretical assertion may be formulated as follows :

The paddy economy of Kuttakadu has been transformed by an economy into a machine and market-based pragmatic state, in which the access to technology, money, and bureaucracy now determine the organisation of everyday cooperation and conflict rather than caste hierarchy, despite the persistence of memories and idioms of reciprocity to the structuration of moral judgments and periodical solidarities.

7. Conclusion :

This paper has generalised grounded theory research result of Kuttanad with broader sociological and policy literature to demonstrate the way agrarian relations have been re-organised.

The land reforms destroyed formal landlordism and diluted overt caste hierarchy but further mechanisation, labour migration, lease tenure cultivation, crisis of procurement and infrastructural neglect have created new lines of inequality and social distance. The concept of castes did not fade away; they were rearticulated in the sphere dominated by machines, markets and institutions. Farmers find their way through this hybrid order in a market-based pragmatism, and in a calling on old moral systems to complain of institutional failures and disunified reciprocity. The implication to the policy is that the interventions cannot be rated using only the yields, costs, or formal equality. They should also be evaluated on the basis of their impacts on social relationships, reciprocity, shared abilities, and their security in everyday life. In the case of theory, Kuttanad points to the importance of going beyond binary oppositions (traditional/modern, caste/market, moral economy/capitalism) to more sophisticated descriptions of hybrid agrarian modernities.

References (APA 7) :

1. Charmaz, K. (2014). *Constructing grounded theory* (2nd ed.). SAGE.
2. Choudhary, P. K. (2020). Emerging agrarian system and its impact on caste relations. *ISEC 3. Working Paper Series*, 501.
4. Government of India. (2025). *Lok Sabha Starred Question No. 21: Issues faced by paddy farmers in Palakkad*. Ministry of Agriculture and Farmers Welfare.
5. Government of Kerala. (2023). *Kerala State Organic Farming Policy, Strategy and Action Plan*. Kerala State Biodiversity Board.
6. Government of Kerala. (2024). *Directorate of Agriculture Development and Farmers' Welfare Circular on Sub Mission on Agricultural Mechanization*.
7. Kaup, B. Z. (2015). Markets, nature, and society: Embedding the economy in the Polanyian triangle. *Sociological Compass, 9*(4), 284–294.
8. Mohanty, B. B. (2021). *Agrarian transformation in Western India: Economic gains and social costs*. Routledge.
9. Mosse, D. (2019). The modernity of caste and the market economy. *Modern Asian Studies, 54*(4), 1225–1271.
10. Polanyi, K. (2001). *The great transformation: The political and economic origins of our time* (2nd ed.). Beacon Press. (Original work published 1944)
11. Scott, J. C. (1976). *The moral economy of the peasant: Rebellion and subsistence in Southeast Asia*. Yale University Press.
12. The Academic. (2024). Farm mechanisation and rural employment.
13. The Hindu. (2025, May 17). *Paddy growers prepare for stir as banks refuse loans against PRS.*

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 106-110
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'सिसकियाँ' उपन्यास में नारी विमर्श

डिल्लीराम शर्मा संग्रौला
विभागीय प्रमुख, संस्कृत, पत्रकारिता तथा हिंदी
पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू, नेपाल।

सार :

यह सदी विमर्शों की सदी है। इस सदी में समाज के सभी वंचित समूहों ने अपने हक, अधिकार और अपनी अस्मितागत पहचान के लिए लड़ाई लड़ी है। सभी विमर्शों में शोषित समाज के हक के लिए लेखन कार्य किया जा रहा है। अस्मितावादी विमर्शों ने साहित्य जगत में ऐसा परिदृश्य उपस्थित कर दिया है जिसके पीछे स्वानुभूति या भोगे हुए यथार्थों या अनुभवों का प्रबल तर्क है। आधुनिक युग में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अस्मिता के लिए किसी न किसी रूप में संघर्ष करना पड़ रहा है। पिछले कुछ दशकों में विचारधारा और चिंतन की दुनिया में आए वैचारिक और उदाहरणात्मक बदलावों ने अस्मिता के प्रश्न को केंद्र में लाकर खड़ा कर दिया है। इसी का परिणाम है कि आज कई प्रकार के विमर्शों का जन्म हुआ है। इस सदी में विमर्शों की बहुत चर्चा होती रही है। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श, वृद्ध विमर्श आदि। इन सभी विमर्शों की चर्चा हिंदी साहित्य में अपनी चरम सीमा पर होती आ रही है। कभी कहानी के माध्यम से तो कभी आत्मकथा के माध्यम से तो कभी उपन्यास के माध्यम से या और भी अन्य विधाओं के माध्यम से। हिंदी साहित्य इन सभी विमर्शों पर केंद्रित है। ऐसा नहीं है कि यह लड़ाई किसी के खिलाफ लड़ी जा रही है। यह लड़ाई अपनी पहचान और अपनी अस्मिता के लिए लड़ी जा रही है। प्रस्तुत आलेख में नेपाल की लेखिका द्वारा लिखित 'सिसकियाँ' उपन्यास के नारी विमर्श पर चर्चा की गई है।

शब्द कुंजी : पितृसत्तात्मक, खुसुर फुसुर, दहेज, विवाहोपरान्त, अभागीन, स्त्रीवाद।

विषय प्रवेश :

सिसकियाँ उपन्यास डॉ. संजीता वर्मा द्वारा लिखित एक लघु उपन्यास है। लेखिका संप्रति त्रिभुवन विश्वविद्यालय, नेपाल में हिन्दी विभाग में कार्यरत हैं। उनकी कई पुस्तकों में से यह एक सामाजिक उपन्यास है। उपन्यास दो परिवार पर सीमित है और इसकी कथावस्तु मुख्य पात्र गीत (मीनु) और उसकी सखी जीत (गोलु) के इर्द गिर्द ही आगे बढ़ती है। गीत और जीत बाल सखी हैं जो अपने सुख दुःख को आपस में साझा करती हैं। इन दोनों की दोस्ती विवाहोपरान्त भी उसी रूप में जीवित होती है जिस रूप में बाल्यकाल में थी। प्रस्तुत लेख में नारी विमर्श के ऊपर चर्चा की गई है।

स्त्री अस्मिता विमर्श :

स्त्री अस्मिता में स्त्रियों के हक, हित, अधिकार, स्वतंत्रता आदि में मतभेद न हो और उसे हमेशा पुरुषों से जुड़े संबंधों तक सीमित न रखा जाए बल्कि उसे समाज में एक पूर्ण तत्व माना जाए तथा उसे भी पुरुषों की जैसी मान्यता तथा अधिकार प्राप्त हो जाए।

समाज में स्त्री की अपमानजनक स्थिति का एक कारण पितृसत्तात्मक व्यवस्था भी है। पुरुष हमेशा स्त्री को अपने काबू में रखना चाहता है। डॉ. रूपा सिंह की उक्ति सान्दर्भिक है – "बलात्कार कानून में भी ऐसे सिद्ध हैं जिनमें से बलात्कारी आसानी से निकल सकता है और पीड़ित स्त्री वकीलों के बेहुदे सवालों के बीच जलील होकर रह जाती है। उसके पास मौन रह जाने के सिवाय कोई चारा नहीं होता क्योंकि उसे औरत होने की सजा का बखूबी अंदाजा होता है, जिसमें सब कुछ घटित होने के बाद भी पुरुष अपनी भाषा में चिंघाड़ सकता है– तुम स्त्री हो, अगर मुझसे अलग मेरे विरुद्ध आंख उठाने की कोशीश भी करोगी तो कीड़े मकोड़े की तरह कुचल दी जाओगी। बहन होकर जायदाद में अधिकार मांगोगी तो जल्दी शादी करा दूंगा। संयुक्त हिंदू परिवार में बंटवारे में तुम्हारा हक नहीं। बाप को तुम्हें कुछ भी नहीं देने दूंगा। प्रेमिका बनकर अधिकार चाहोगी तो मैं तुम्हें छोड़ दूंगा, माँ बना दूंगा, तब कहाँ जाओगी? ज्यादा तीन, पांच करोगी तो मैं पूरे गैंग के साथ बलात्कार करूँगा।"

स्त्री विमर्श आधुनिक काल में सबसे चर्चित विषय है। पुरुषवादी मानसिकता के खिलाफ स्त्रियों का एकजुट होकर जिस शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ वही है नारीवाद या नारीवाद की अवधारणा। विश्व के अधिकांश देशों की संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन पुरुष केंद्रित है। आज के दिनों में महिलाएं एकजुट हो रही हैं और पुरुषों ने भी स्वीकार किया है कि स्त्री सदियों से पीसती, अपमानित होती आई है। अब उन्हें उचित स्थान देना चाहिए। इसलिए आज कई नाम अस्तित्व में आए हैं – स्त्रीवाद, नारीवाद, स्त्री मुक्ति आदि। वर्तमान समय में स्त्री विमर्श को लेकर कई गम्भीर चर्चाएं चल रही हैं तथा अनेक पत्रिकाएं भी विशेषज्ञ के रूप में निकल रही हैं। स्त्री विमर्श किसी एक मुद्दे को लेकर निकला हुआ विमर्श नहीं है। वर्षों से स्त्री के शोषण, उत्पीड़न, भेदभाव तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था के खिलाफ होने वाली लड़ाई है।

हम यहाँ कह सकते हैं कि नारीवाद किसी एक स्त्री की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का वाद नहीं बल्कि संपूर्ण समाज में सुधार लाने की प्रक्रिया है और आंदोलन भी। कहीं न कहीं यह आंदोलन राजनीतिक, सामाजिक और शैक्षिक क्षेत्रों में पुरुषों की बराबरी की भी मांग करता है। स्त्रियों के स्त्रीत्व की छवि से मुक्त करने के लिए स्त्रियों को ही आगे आना होगा।

'सिसकियाँ' उपन्यास में नारी विमर्श :

सिसकियाँ उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र गीत है जो तीक्ष्ण बुद्धि के साथ–साथ पढ़ने में, अतिरिक्त क्रियाकलाप में माहिर है। कविता लिखने, गीत लिखने एवं अभिनय करने में वह पोख्त है और सारे विद्यालय के शिक्षक, विद्यालय के विद्यार्थी उसकी प्रतिभा को दाद देते हैं। इतनी तीक्ष्ण और प्रतिभावान विद्यार्थी होते हुए भी उसे मैट्रिक के बाद आगे पढ़ने का अवसर नहीं मिलता है। लेखिका कहती हैं – "मैट्रिक पास करने के बाद गीत की पढाई बन्द हो गई। (वर्मा, पृष्ठ 17)"। उसे पढ़ने से रोका जाता है। पुरुष प्रधान समाज में महिलाएँ भले ही प्रतिभावान क्यों न हो परन्तु उसे अवसर नहीं दिया जाता, जो एक बेटे को दिया जाता है। अगर गीत के स्थान पर कोई बेटा होता तो शायद ऋण लेकर भी पढ़ने के लिए अभिभावक कहते। परन्तु गीत लड़की होने के कारण

मैट्रिक पढ़ने के बाद उसकी पढ़ाई रोक दी गई।

हमारा समाज पुरुष प्रधान समाज है इसलिए हमेशा महिला को ही अपमान झेलना पड़ता है, कष्ट झेलना पड़ता है परिवार में भी और समाज में भी। वैसे भी हमारे देश के लोग अधिकांश गरीब ही हैं। गरीबी की पीड़ा और कष्ट एक ओर है ही उसके ऊपर समाज का नजरिया और परिवार की पीड़ा महिला को ही झेलना पडता है। इस बात की पुष्टि गीत और जीत (गोलु) का संवाद है – "माँ – बाबुजी में कभी इतनी जोर की लड़ाई हो जाती है कि दो दो दिनों तक माँ खाना नहीं खाती लेकिन एक बार भी बाबुजी मनाने नहीं जाते फिर बगलवाली चाची को देखो उनका कितना बुरा हाल है। एक बार तो चाचा उन पर हाथ ही उठा दिए थे..... (वर्मा, पृष्ठ 18)" ऐसी स्थिति अधिकांश घरों में है। महिलाओं पर पुरुषों द्वारा हाथ उठाना सामान्य बात है। परन्तु महिला पुरुष के ऊपर हाथ उठा नहीं सकती, अगर वह उठाती तो समाज उसका विरोध करता, परन्तु महिला पुरुष के हाथ से जितना मार खाए, खाए। वह मार खाने के लिए ही है। गलती हमेशा नारी की ही होती है। हमारे समाज की मान्यता है।

गीत के ऊपर सबसे बड़ा अन्याय तब होता है जब उससे बिना पूछताछ उसका विवाह उसके माँ–बाप तय कर देते हैं। एक मैट्रिक तक पढ़ी लिखी बेटी को उसके माँ–बाप को विवाह के बारे में अवश्य पूछ लेना चाहिए था। परन्तु पूछने की तो दूर की बात उसे जानकारी दिए बगैर उसका विवाह तय किया जाता है, इससे बड़ा अन्याय उसके लिए और क्या हो सकता है? माँ–बाप के खुसुर फुसुर से उसे और गोलु को शंका हो जाता है। और जब गोलु की माँ से उसका विवाह तय हो जाने की बात पता चल जाती है तो बेचारी बहुत पीड़ित हो जाती है। आँख से आँसू बहाने के सिवाए उसके पास और कुछ चारा नहीं होता।

जीत की माँ ने गीत की माँ से एक दिन कहा कि कम से कम आप लोगों को गीत से पूछना चाहिए था। परन्तु गीत की माँ का जवाब सुनिए – "शादी ब्याह के मामले तो माँ–बाप ही ठीक करते हैं। उसमें बच्चों से पूछने की बात कहाँ से आती है और उस पर भी बेटी से। अच्छा घर वर है और दान दहेज भी कम है। इस मामले में उससे क्या पुछती। पढ़ना था तो पढ़ भी ली अब आगे पढ़कर उसे मर्दों की तरह कमाना थोड़े ही है। घर परिवार चलाने के लिए मैट्रिक पास क्या कम बात है (वर्मा, पृष्ठ 21)। उनकी बातों से ऐसा लगता है कि लड़की की कोई ईच्छा ही नहीं होती। उसकी तो कोई चाह ही नहीं होती। वह अपनी इच्छा के लिए नहीं दूसरों की ईच्छा के लिए जी रही है।

दूसरी बात हमारे यहाँ लड़कियों की स्थिति बड़ी दयनीय है। वे पश्चिम की लड़कियों की तरह अपने अधिकार के लिए अपने माँ–बाप से एक लब्ज भी नहीं कह सकती। कहती तो उसे अनुशासनहीन, अमर्यादित, संस्कारहीन जैसे शब्दों से उसकी जुबान बन्द कर दी जाती है। अब उसके पास कोई चारा नहीं रहता। उसे चुपचाप रहना पड़ता है। इसे लड़कियों की कमजोरी कहे या फिर क्या कहे, गीत भी रो रोकर अपना हाल खराब कर देती है।

इस प्रकार के अत्याचार की बात उपन्यास में सरबती की भी है जिसने दूसरी जाति के युवक से भागकर विवाह किया था। परन्तु उन दोनों को बहुत कष्ट झेलने पड़े। दूसरी जाति के लड़के से विवाह करने के कारण उसे मुसीबतों का सामना करना पड़ा। "माइके वाले उसका चेहरा तक देखना पसंद नहीं करते और उधर ससुराल वाले बिना दहेज की बहु को भला क्यों स्वीकार करते। घर से निकाल दिया उसे और बेटे को कमरे में बन्द कर

दिया। (वर्मा, पृष्ठ 26, 27)"। परन्तु वह उदास नहीं हुई, अपने पति को कपड़े सिलने की ट्रेनिंग दिलाकर और बड़ी दुकान खोलने की सोच बनाई।

उधर माँ–बाप ने गीत का विवाह तय कर दिया तो अब विवाह तो होना ही था भले ही वह जितना भी रोए। इसी बीच दूसरी आपत आन पडी कि लड़के के भाई का एक्सिडेन्ट हो गया है और विवाह रोका जाएगा। ऐसी स्थिति में हमारा समाज महिला पर ही आरोप लगाता है, यह कहते हुए कि अभागीन लड़की से विवाह करने वाला था इसलिए उसके कारण ऐसा हुआ। गीत भी इसी बात को लेकर पीड़ित हो जाती है। वह गोलु से कहती है– "गोलु मेरी तकदीर भी अजीब है। अगर कुछ हो गया तो जिन्दगी भर के लिए माथे पर कलंक का टीका लग जाएगा। सभी हमें कोसेंगे। दोनों परिवार की नजर में मैं अभागीन बन गई। (वर्मा, पृष्ठ 33)"।

गीत एक प्रतिभावान लड़की थी परन्तु उसे नहीं पढ़ाया गया जिसका कारण लेखिका बताती हैं – "गीत को इसलिए नहीं पढ़ाया गया कि गाँव की लड़कियाँ कम पढ़ती हैं, फिर उसके अधिक पढ़ने पर लड़का भी अधिक पढ़ा–लिखा खोजना पड़ेगा और तब दहेज भी अधिक देनी पड़ेगी जो उसके किरानी बाप की औकात के बाहर की बात थी। (वर्मा, पृष्ठ 41)"। सच कहा जाए तो लड़कियों के लिए और गरीब माँ–बाप के लिए दहेज एक अभिशाप है। हम यह सब देखते सुनते आ रहे हैं कि दहेज के ही कारण कितनी महिला को मौत के मुँह में डाल दिया जाता है तथा कितने माँ–बाप कर्ज में डूब जाते हैं। गरीब माँ–बाप का ताउम्र कर्ज चुकाने में ही लग जाता है।

कितनी विडंबना की बात है बेटी को ज्यादा पढ़ाने पर भी माँ–बाब को तनाव का सामना करना पड़ता है कि कहीं पढ़े लिखे वर के लिए दहेज कम पड जाए? ये हमारा समाज है। आश्चर्य लगता है। एक सुन्दर, सुशील, समझदार तथा पढ़ी लिखी लड़की होने पर भी दहेज के बिना शादी सम्भव नहीं।

विवाह के बाद भी नारी को चौन कहाँ ? हमारे समाज की नारी विवाह के बाद अपने को बुढ़ापा छा जाने की बात कहती है क्योंकि उनका कहना है कि उनका जीवन अब संघर्ष करते करते ही चला जाएगा। उनका मानना है कि जो आनन्द भोगा, अब तक भोगा। परन्तु अब शादी के बाद आनन्द उसके भाग्य में होगा ही कहाँ? लेखिका कहती हैं – "लेकिन मैंने इसे बूढ़ापा कहा। क्योंकि यहाँ से घर गृहस्थी के झमेले शुरू हो जाते हैं। रुठने की बात नहीं होती, बस मनाने का सिलसिला शुरू हो जाता है, खर्च करने की बात नहीं रहती, किफायत करनी पड़ती है। किसी को गाली नहीं देनी पड़ती, गाली और ताने सुनने होते हैं और फिर गुस्सा नहीं करना उसे बस चुपचाप पी जाना होता है, आदि अनेक ऐसी बातें हैं जो बुढ़ापे की ओर ले जाती है। (बर्मा, पृष्ठ 42)।"

विवाहोपरान्त पति–पत्नी के बीच सौहार्द सम्बन्ध होता है। मानसिक, शारीरिक तनाव रहित जीवन के बदले शारीरिक असंतुष्ट जैसी बातें गीत अपनी सहेली जीत को पत्र के माध्यम से जताती है– "सुनती हुँ समागम के बाद मन शान्त और चहेरा खुसी से दमकने लगता है, लेकिन मुझे ऐसा कुछ भी अनुभव नहीं होता बल्की उल्टा ही होता है, मन बेचैन और चेहेरे पर खीझ आ जाती है। कुछ पल तक तो शरीर में अजीब सी लहर दौड़ती रहती और दिल रोने को होता। (पृष्ठ 43)"।

उपन्यास में दूसरी नारी पात्र जीत (गोलू) जो गीत की सखी है। उसके जीवन में भले ही समस्याएँ नहीं आई परन्तु वह एक जागरूक महिला प्रतीत होती है। गीत के विवाह के बाद उसके पिताजी मजाक–मजाक में विवाह की बात उठाते हैं तो वह स्पष्ट कह देती है कि मुझे अभी विवाह नहीं करना है, मुझे पढ़कर डॉ. बनना

है। आगे वह कहती है कि अगर मुझे विवाह ही करना पड़े तो मैं ऐसे युवक से विवाह करूँगी जो दहेज न ले। परन्तु इसके ठीक विपरीत गीत ने कभी भी किसी का अपने मुँह से विरोध नहीं किया। परन्तु सभी समस्याओं से जूझने की शक्ति उसमें थी। उपन्यास में जीत हमेशा गीत की सहायता करती नजर आती है।

उपसंहार :

सौ बरस की इस विचार यात्रा में स्त्री विमर्श पर कई रंग चढ़े और उतरे। कभी लगा कि यह बहस स्वच्छंदतावाद की ओर जा रही है, तो कभी लगा कि यह आनंदमार्गी हो रही है। स्त्री लेखन भी इसके साथ–साथ पहलू बदलता रहा। राजेंद्र यादव के नेतृत्व में देह मुक्ति का नारा इतना प्रबल हो गया कि वैसे ही रचनाएँ एक के बाद एक लिखी गईं। कभी स्त्री को जख्मी औरत के रूप में हिंसात्मक तेवर दिए गए तो कभी उसे बिंदास और रंगीन छवि प्रदान की गई।

संतुलित स्त्री विमर्श में प्रतिघात का नहीं, प्रतिरोध का महत्व है। स्त्री पुरुष से मुक्ति नहीं चाहती थी, वह उससे अपने मानवीय अधिकार मांगती है। जिस प्रकार समस्त विश्व में स्त्री के प्रति हिंसा बढ़ रहा है बर्बरता और यौन अपराध का सिलसिला बढ़ रहा है उसमें कल के विमर्शकार को अपने विचार शक्ति और तीखी करनी होगी।

उपन्यास सिसकियाँ में कहीं जगह पर गीत को अत्याचार सहना पड़ा है, अपहेलित तथा तिरस्कृत होना पड़ा है। वह सभी परिस्थितियों को चुपचाप से आत्मसात करती जाती है। उसकी कमजोरी यह रही कि उसने विपरीत परिस्थितियों का विरोध कभी नहीं किया। वह पढ़ना चाहती थी परन्तु उसकी पढ़ाई बन्द कर दिए जाने पर भी उसने चुपचाप सह लिया, शादी के लिए उससे पूछताछ किए बगैर शादी तय कर लेने पर भी उसने विरोध नहीं किया। विवाह रोकने की बात सुनने पर उलटे से अपने भाग्य को कोसा। इस प्रकार की उसकी कईं कमी कमजोरी भी है। परन्तु इससे बढ़ कर पुरुष प्रधान समाज तथा पितृसत्ता दोषी है। उसने कभी नहीं सोचा कि एक लडकी की भी पढ़ने की इच्छा होती है, उसे भी अपने जीवन साथी चुनने का अधिकार होता है, उसकी भी स्वतन्त्रता होती है। दसवीं कक्षा पास करते ही तुरन्त विवाह कर देना पितृसत्ता की ज्यादती प्रतीत होता है।

संदर्भ :

1. गोस्वामी, नेहा। 2017। स्त्री विमर्श : हिंदी साहित्य के संदर्भ में, शिक्षा विभाग, दिल्ली, दिल्ली विश्वविद्यालय।
2. प्रेमचंद। 1932। कर्मभूमी, दिल्ली, मनोज पब्लिकेशन।
3. वर्मा, डॉ. संजीता। 2011। सिसकियाँ, नेहा प्रकाशन गृह, काठमांडू।
4. सिंह, डॉ. रूपा। 2006। स्त्री अस्मिता और कृष्णा सोबती, नई दिल्ली, पूर्वोदय प्रकाशन।
5. शर्मा, विरेंद्र, टैलर, रविन्द्र (संपादक)। 2009। शोध श्री पत्रिका, जवाहर नगर कॉलोनी, जयपुर, दयालबाग एजूकेशनल इन्स्टिटट्यूट।

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 111-121
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जनजातीय हस्तशिल्प एवं आर्थिक विकास (बस्तर संभाग के विशेष संदर्भ में)

डॉ. शिव कुमार सिंघल
अर्थशास्त्र विभाग,
शासकीय गुण्डाधुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोण्डागांव (छत्तीसगढ़)

सारांश :

छत्तीसगढ़ राज्य में 42 प्रकार की जनजातियां है जिसे 161 उपसमूह में विभाजित किया जाता है। छत्तीसगढ़ में निवास कर रही जनजातियां जीविकोपार्जन हेतु कृशि के अतिरिक्त विभिन्न परंपरागत हस्तशिल्प का निर्माण कर, निर्माण श्रमिक का कार्य कर, लघु वनोपजों का बाजार में विक्रय कर अर्थोपार्जन करती है व सामान्य (परंपरागत) जीवन जीने में यकीन रखती है। विशाल अर्थ और स्वरूप लिए शिल्प शब्द– मानव सभ्यता और संस्कृति का घोतक है। जनजातीय हस्तशिल्प प्राचीनता का बोध कराता है। छत्तीगढ़ राज्य का जनजातीय बहुल क्षेत्र–खनिज संपदा, वनों एवं वनोपजों से समृद्ध, इठलाती–इतराती नदियां, सीधे सरल स्वभाव वाले मानव जन, लोक संस्कृति व लोक गीतों के धरोहर वाले प्रकृति की गोद में रचा–बसा अरण्य क्षेत्र है। बस्तर संभाग के सात जिलों में कई जिलों जैसे– बस्तर, कोण्डागांव, नारायणपुर आदि को शिल्प नगरी के रूप में जाना जाता है। इन जिलों में विभिन्न तरह की हस्तशिल्प कला जैसे– बेल मेटल, लौह शिल्प, मिट्टी शिल्प, काष्ठ शिल्प, पत्थर शिल्प, बांस शिल्प आदि का उत्कृष्ट कार्य किया जाता है। अतीत से ही हस्तशिल्प कलाएं भारत की संस्कृति एवं प्रभावशीलता को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम रही है। यहां की जनजातीय कलाएं बहुत ही पारंपरिक व साधारण होने के बाद भी इतनी सजीव व प्रभावशाली है कि उनसे देश की समृद्धि व विरासत का अनुभव स्वतः ही हो जाता है। इन क्षेत्रों की जनजातियां विभिन्न पारंपारिक हस्तशिल्प कलाओं के माध्यम से भी जीविकोपार्जन कर रही हैं।

कुंजी शब्द : हस्तशिल्प, जनजातियां, जनजातीय जीवन शैली, जनजातीय जीविकोपार्जन।

प्रस्तावना :

भारत के हर प्रदेश में कला की अपनी एक विशेष शैली व पद्धति होती है जिसे लोक कला के नाम से जाना जाता है। इसके अलावा परम्परागत कला का भी एक अन्य रूप होता है जो अलग–अलग जनजातियों और ग्रामीण अंचलो में प्रचलित होती है इसे जनजातीय कला के नाम से जाना जाता है। राज्य क्षेत्र की जब बात आती है, तो छत्तीसगढ़ राज्य का बस्तर संभाग जनजातियों की कला एवं संस्कृति के लिए भारत ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व में ख्याति प्राप्त है। बस्तर संभाग के सात जिलों– कोण्डागांव, दंतेवाड़ा, बस्तर, सुकमा, बीजापुर,

कांकेर, नारायणपुर की जनसंख्या छत्तीसगढ़ जनगणना 2011 के अनुसार (2025–26 में जनगणना के नए आकड़े उपलब्ध नहीं होंने के कारण 2011 की जनगणना को आधार माना गया है।) लगभग 30,90,828 है। इस जनसंख्या में जनजातियों की संख्या लगभग 20,69,230 (66.94 प्रतिशत) है। जो दूसरे राज्यो व क्षेत्रों की अपेक्षा सर्वाधिक है। जनजाति बहुल क्षेत्र होने के कारण तथा इनका विभिन्न कलाओं जैसे– काष्ठ कला, कंघी कला, बांस शिल्प, पत्ता कला, घड़वा कला (बैल मेटल), लौह शिल्प, तुम्बा शिल्प, ढोकरा आदि में पारंगत होने के कारण, अपनी संस्कृति, परम्परा, रीति–रिवाज, खान–पान, रहन–सहन, मान्यताये इनकी जीवन शैली, इनकी कलाओं (कलाकृतियों) के माध्यम से देखी जा सकती है। देश के कई शहरों जैसे– दिल्ली, गुजरात आदि जगहों पर शबरी एम्पोरियम की स्थापना की गई है। जो इस कला के प्रचार–प्रसार के साथ–साथ ही इसकी विशेषता को बताती है तथा इन स्थानों से इसे खरीदा भी जा सकता है। यह कला जनजातियों के आर्थिक विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। जहां पहले अधिकांश जनजातियां खाद्य संग्राहक जनजाति हुआ करती थी, शिकार करती थी, वनोपज से अपना जीवन यापन करती थी व इनमें अस्थायी कृषि (पेद्दा) का प्रचलन था, आर्थिक स्थिति अच्छी नही थी वहीं अब अधिकांश जनजातियां स्थायी कृषि करने लगी हैं तथा विभिन्न तरह की कलाओं की ओर इनका रूझान हुआ है। इन कलाओं के माध्यम से इन जनजातियों ने अपने जीवन स्तर में आर्थिक सुधार किया है। जिससे कला को प्रोत्साहन मिला है एवं अधिक से अधिक जनजातियां इन कलाओं को अपना कर अपनी व अपनी आने वाली पीढ़ी को इस कला में पारंगत कर जीवन स्तर में आर्थिक सुधार लाने को अग्रसर है। जिससे इस क्षेत्र व समाज के विकास में काफी अधिक सुधार हो रहा है। जनजातीय कला ग्रामीण भारतीय जन–जीवन का एक हिस्सा है। आज के मशीनी युग में भी हाथ से बनी कलात्मक वस्तुओं का अपना विशेष महत्व है। इसलिए न केवल भारत में ही इन वस्तुओं का आकर्षण बढ़ा है, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भी भारतीय जनजातियों द्वारा बनाये गए विभिन्न हस्तशिल्प कलाओं ने अपनी एक जगह बना ली है।

राजकुमार बेहार ने लिखा है कि "बस्तर के जनजातीय भोले–भाले लोगों को देखकर यह कतई आभाष नही होता कि इनके हाथों में जादू है जो निर्जीव काष्ठ को भी जीवन्त कर देती है यह अद्वितीय महारत इन्हे अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई है, यहां का जनजातीय कलाकार कर्मठ है किसी ने इन्हे सिखाया नहीं अनुसरण कर, अभ्यास कर, देखकर, अपनी पूर्वजों से चली आ रही पुरातन परंपरा को धरोहर के रूप में अपनी आने वाली पीढ़ीयों को सोपता है ताकि परंपरा निरंतर आगे बढ़ती रहे, परंपरा टूटे नही, लड़ियां बिखरे नही।"

डॉ. शंकर दयाल शर्मा जी ने जनजातीय हस्तशिल्प कलाओं के संबंध में कहा है कि "हस्तशिल्प की वस्तुएं हमारी मौन राजदूत है, बिना कुछ कहे यह हमारी जीवन प्रणाली, हमारी संस्कृति, हमारे रीति–रिवाजों व हमारे विचारों के बारे में बहुत कुछ कह देती है।"

साहित्य की समीक्षा :

जनजातीय हस्तशिल्प एवं आर्थिक स्थिति से संबंधित विशयों पर समय–समय पर अनेक विद्वानों ने अपने विचार रखे है। इनमें से कुछ निम्नानुसार है –

1. **साहू, छबिराम (2012). जनजातीय हस्तकलाएं :** एक ऐतिहासिक अध्ययन बस्तर संभाग के विशेष संदर्भ में. पीएच.डी. शोध प्रबंध, इतिहास अध्ययनशाला, प. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर छ.ग ने बस्तर संभाग के जनजातियों में प्रचलित हस्तकलाओं का अध्ययन किया एवं पाया कि जनजातीय हस्तशिल्प से बस्तर के आदिवासियों के जीवन में आर्थिक रूप से सकारात्मक परिवर्तन स्पष्ट दिखायी पड़ता है।

2. **सिंह, गीता (2013). जनजातीय श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति बस्तर जिले के शिल्पकला उद्योग में कार्यरत जनजातीय श्रमिकों पर आधारित एक सामाजिक अध्ययन :** पीएच.डी. शोध प्रबंध समाजशास्त्र अध्ययन शाला, प. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर, छत्तीसगढ़ ने श्रमिकों पर आधारित एक सामाजिक अध्ययन विषय पर अध्ययन करते हुए पाया कि शिल्पकला उद्योग में जनजातीय श्रमिकों को कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पुरूष श्रमिकों की अपेक्षा महिला श्रमिकों की समस्या अधिक है।

3. **अंसारी, खुदैजा परवीन (2013). मध्यप्रदेश के हस्तशिल्प उद्योग का एक आर्थिक विश्लेषण सागर जिले के संदर्भ में।** शोध प्रबंध अर्थशास्त्र अध्ययनशाला डॉ. हरिशंकर गौर विश्वविद्यालय सागर मध्यप्रदेश ने अपने अध्ययन में पाया कि भारत प्राचीन समय से ही हस्तशिल्प के लिए विख्यात रहा है। भारत की विशिष्ट सांस्कृतिक छवि में हस्तशिल्प की संमृद्ध विरासत का बड़ा योगदान रहा है। हस्तशिल्प उद्योगों के माध्यम से 1.3 करोड़ से भी अधिक शिल्पी व बुनकारों को रोजगार मिला है जिनमें एक बड़ा प्रतिशत समाज के कमजोर वर्ग का है।

4. **शर्मा, श्रीमती शीतल (2016). छत्तीसगढ़ जनजातियों के आर्थिक विकास में हस्तशिल्प कला का योगदान बेल मेटल-काष्ठ कला बस्तर संभाग के संदर्भ में.** पीएच.डी. शोध प्रबंध, वाणिज्य अध्ययनशाला, प. रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर छत्तीसगढ़, ने छत्तीसगढ़ जनजातियों के आर्थिक विकास मे बेल मेटल एवं काष्ठ कला का अध्ययन करते हुए पाया कि हस्तशिल्प भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग है।

5. **गुप्ता, डॉ. नीलिमा (2017). समकालीन लोक कलाओं में झॉकता :** प्रागैतिकहासिक कला संसार छत्तीसगढ़ के विशेष संदर्भ मे. आर्टिस्टिक नरेशन पत्रिका (आई.सी.आर.जे.एफ.आई.आर.) वो.–08 नम्बर. 01, पेज न. 61–69, आई.एस.एस.एन (पी) 0976–7444 ने अध्ययन करते हुए पाया कि प्रागैतिकहासिक काल में मनुष्य ने अपनी मूक भावनाओं को पत्थरों पर टेढ़ी–मेंढ़ी रेखाकृतियों के द्वारा अभिव्यक्त किया था।

6. **बेगम, शहनाज (2016). जनजातीय शिल्पियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन :** किल्लेकोड़ा शिल्प ग्राम जिला बालोद के संदर्भ में. पीएच.डी. शोध प्रबंध, समाजशास्त्र अध्ययन शाला, प. रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर छत्तीसगढ़, भारत ने जनजातीय शिल्पियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन करते हुए पाया कि छत्तीसगढ़ राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों मे शिल्पियों की स्थिति अत्यंत दयनीय है।

7. **खान, मुश्ताक (2013). आदिवासी कला परंपरा के निर्वाह से जीविकोपार्जन के साधन तक,** सामाजिक विकास परिषद आई.सी.एस.एस.आर. का शोध संस्थान राजेन्द्र नगर हैदराबाद, पेज न. 1–28 ने आदिवासी कला परंपरा के निर्वाह से जीविकोपार्जन के साधन तक अपने अध्ययन में पाया कि जनजाति समाज की बौद्धिक संपदा, कला विरासत को लेकर भारत के बुद्धिजीवी वर्ग ने गहन अध्ययन किया है बल्कि स्वयं जनजातियों में

इसे लेकर अपने अधिकारों व हितो के प्रति जागरूकता आई है।

अध्ययन का उद्देश्य :

1. छत्तीसगढ़ बस्तर संभाग में विभिन्न जनजातीय हस्तशिल्प का अध्ययन एवं हस्तशिल्प के माध्यम से जनजातियों के आर्थिक विकास का अध्ययन करना।
2. छत्तीसगढ़ बस्तर संभाग में जनजातीय जीवन शैली, जनजातीय समस्याओं का अध्ययन करना।

परिकल्पना :

छत्तीसगढ़ बस्तर संभाग में जनजातीय संस्कृति में हस्तशिल्प का विशेष महत्व है, यहां की जनजातियां कृषि, मजदूरी के अतिरिक्त विभिन्न परंपरागत हस्तशिल्प कला के माध्यम से जीविकोपार्जन कर रही है जिससे इन जनजातियों के आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है।

अनुसंधान अभिकल्प एवं प्रविधि

1. अध्ययन का क्षेत्र :

अध्ययन क्षेत्र के रूप में छत्तीसगढ़ राज्य, बस्तर संभाग के 7 जिलों को लिया गया है। बस्तर संभाग की स्थापना सन् 1981 को हुई। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह छत्तीसगढ़ में सबसे बड़ा संभाग है एवं यहां जिलो की संख्या 07 है। यह संभाग महाराष्ट्र, तेलंगाना, ओडीसा, आंध्रप्रदेश कुल चार राज्यों की सीमाओं को स्पर्श करता है। प्रस्तुत अध्ययन के लिए बस्तर संभाग के विभिन्न जिलो जैसे– कोण्डागांव (स्थापना–2012), नारायणपुर (स्थापना–2007), बस्तर (स्थापना–1948), दंतेवाड़ा (स्थापना–1998), बीजापुर (स्थापना–2007), सुकमा (स्थापना–2012), कांकेर (स्थापना–1998) को एवं इनसे संबंधित ऐसे क्षेत्र जहां जनजातियों के द्वारा हस्तशिल्प से संबंधित कार्य किये जाते है जैसे– मसोरा, चिखलपुटी, भेलवापदर, कुम्हारपारा, करनपुर, परचनपाल, दहिकोंगा, जगदलपुर, लोहण्डीगुडा, बास्तनार, अलवाही आदि विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों को लिया गया है।

जनजातियां	क्षेत्र	हस्तशिल्प कलाएं
दंडामी माडिया	दंतेवाडा, कोंटा, जगदलपुर, बीजापुर	बांस, बेलमेटल
गोंड, मुरिया	कोण्डागांव	बेलमेटल, टेराकोटा,बांस
मुरिया	नारायणपुर, बीजापुर	बांस, काष्ठ, पत्थर, जूट शिल्प
धुरवा	जगदलपुर	बेलमेटल, लौह हस्तशिल्प
भतरा	जगदलपुर, कोण्डागांव, सुकमा	बेलमेटल, काष्ठ कला
दोरला	सुकमा, कोंटा	बांस, टेराकोटा, कोसा
हल्बा	बीजापुर, दंतेवाडा, जगदलपुर, भानुप्रतापपुर, कोण्डागांव	काष्ठ कला
कमार	कांकेर	बांस एवं काश्ठ कला

सारणी 1. – विभिन्न प्रकार की जनजातियां, निवास क्षेत्र एवं प्रचलित हस्तशिल्प कलाएं

छत्तीसगढ़ के बस्तर संभाग में जनजातियों की जनसंख्या एवं कुल जनसंख्या में अनुमानित शिल्पियों की संख्या को निम्न सारणी के माध्यम से देखा जा सकता है:–			
जिले का नाम	कुल जनसंख्या	कुल जनसंख्या में जनजातियों की जनसंख्या	कुल जनसंख्या में अनुमानित शिल्पियों की संख्या'
कोण्डागांव	5,78,824	4,11,023	4800
कांकेर	7,48,941	4,14,764	1800
बस्तर	8,34,375	5,20,817	5700
दन्तेवाड़ा	2,83,479	2,01469	1150
बीजापुर	2,55,230	2,04184	1000
सुकमा	2,50,159	2,08808	950
नारायणपुर	1,39,820	1,08165	2100
कुल	30,90,828	20,69,230	17500
सारणी 2–बस्तर संभाग में जनजातियों की संख्या जनगणना 2011 एवं हस्तशिल्प से जुड़े विभिन्न समाज सेवी संस्थाओं/सहकारी समितियों से प्राप्त आकड़ो के आधार पर			

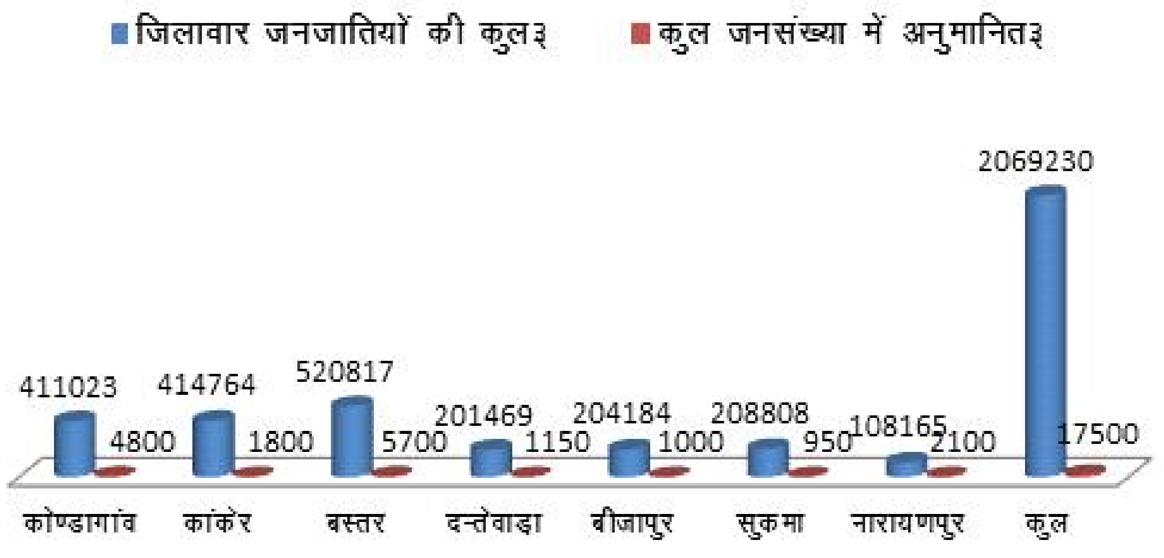

आरेख –बस्तर संभाग में जिलावार जनजातियों की कुल जनसंख्या एवं जनजातीय हस्तशिल्पियों की अनुमानित संख्या

सारणी 3 – बस्तर संभाग में जनजातियों की जनसंख्या, प्रतिशत एवं लिंगानुपात जनगणना 2011, को निम्न सारणी के माध्यम से देखा जा सकता है।

जिले का नाम	छत्तीसगढ़ राज्य की जिलावार कुल जनसंख्या	कुल जनसंख्या में जिलावार जनजातियों की जनसंख्या	कुल जनसंख्या में जिलावार जनजातियों का प्रतिशत	कुल जनसंख्या में जिलावार जनजातीय महिला साक्षरता का प्रतिशत	कुल जनसंख्या में जिलावार जनजातियों का लिंगानुपात
बस्तर	834375	520779	62.42	33.98	1035
बीजापुर	255230	204189	80.00	25.95	1011
दंतेवाड़ा	283479	201458	71.07	28.14	1067
कोण्डागांव	578824	411001	71.01	40.72	1046
नारायणपुर	139820	108161	77.36	35.33	1021
सुकमा	250159	208797	83.07	20.48	1041
कांकेर	748941	414770	55.38	54.34	1034
छत्तीसगढ़	25545198	7822902	30.60	41.38	1020

2. **अध्ययन हेतु अभिकल्प :**

प्रस्तुत अध्ययन हेतु ऐतिहासिक एवं मात्रात्मक अनुसंधान का प्रयोग किया जा रहा है।

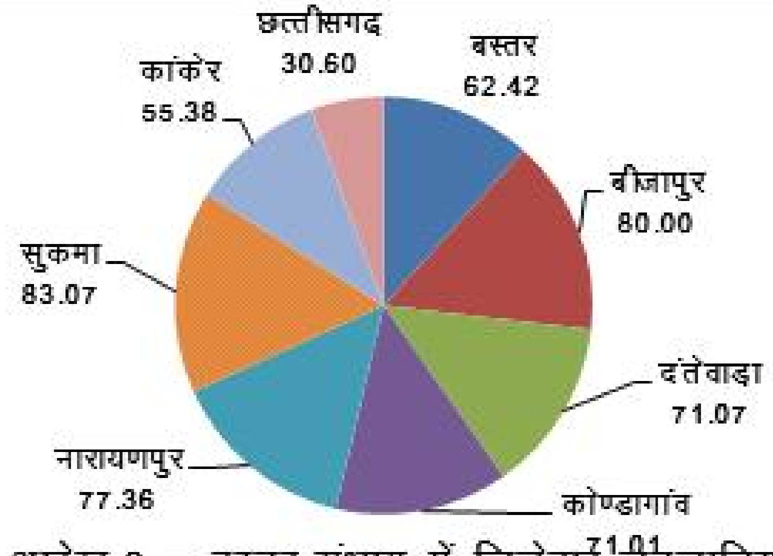

आरेख 2 – बस्तर संभाग में जिलेवार जनजातियों का प्रतिशत

जनजाति कला का जनजातियों के आर्थिक विकास पर प्रभाव :-

आर्थिक विकास को व्यक्ति के जीविकोपार्जन के रूप में देखा जा सकता है। किसी व्यक्ति का विभिन्न तरह के कार्य करना जैसे– कृषि, मजदूरी, दुकान, सरकारी नौकरी आदि का उद्देश्य अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार के साथ–साथ जीवन स्तर को ऊचा ऊठाना होता है। इसी तरह ग्रामीण अंचलों में अधिकांश जनजातियां जीविकोपार्जन हेतु कृषि, मजदूरी, एवं जंगलो (वनों) से प्राप्त होने वाली सामग्री से जीवन यापन करती आ रही हैं।

जहां देश के अन्य राज्यों या क्षेत्रों में पायी जाने वाली जनजातियों का आर्थिक ढॉचा या रोजगार कृषि एवं मजदूरी है वहीं छत्तीसगढ़ के बस्तर संभाग में अधिकांश जनजातियां कृषि, मजदूरी के साथ–साथ विभिन्न तरह की कलाओं को भी जीवन स्तर सुधारने का जरिया बना रहीं हैं। बांस कला, काष्ठ कला, घड़वा कला, मिट्टी कला आदि में कई जनजातियां निपूण हो गयी हैं। इसके अलावा ग्रामीण जीवन में जनजातियों की आजीविका प्रायः लघु वनोपज जैसे– तेन्दू, हर्रा, महुआ, करौंदा, चार बीज (चिरौंजी), भेलवा आदि का संग्रह कर स्थानीय बाजारों में विक्रय करके जीवन यापन करती हैं। जनजाति हस्तशिल्प उद्योग सभी उद्योगों के बीच एक अद्वितीय स्थान पर खड़ा है। जनजाति हस्तशिल्प उद्योग बस्तर की समृद्धि, संस्कृति, परम्परा और भारत की समृद्धि, सांस्कृतिक विविधता और विरासत के लिए एक अद्वितीय और विशाल संसाधन प्रदान करता है। साथ ही साथ समाज के कमजोर वर्गों जनजातियों के लोगों को रोजगार के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करता है। बांस की खेती व उस पर आधारित हस्तशिल्प और कुटीर उद्योगों के जरिए बस्तर संभाग की जनजातियों में रोजगार सृजन की व्यापक संभावनाएं देखी जा रही है। जनजातियों द्वारा बस्तर के कोण्डागांव जिले में हस्तशिल्प का उत्कृष्ट कार्य किया जाता है। इन शिल्पियों को उचित स्थान दिलाने तथा उनके उत्पादों को बेहतर बाजार उपलब्ध करवाने हेतु जिला मुख्यालय में वन विभाग के सहयोग से निर्मित झिटकी–मिटकी वन हस्तकला एम्पोरियम की स्थापना की गयी है।

बस्तर संभाग में 13 तरह की हस्तशिल्प कला प्रसिद्धि प्राप्त है जो निम्नानुसार है –

01. घड़वा कला (बेलमेटल)
02. काष्ठ हस्तशिल्प
03. बांस हस्तशिल्प
04. लौह हस्तशिल्प
05. मिट्टी हस्तशिल्प (टेराकोटा)
06. गोदना हस्तशिल्प
07. पत्थर हस्तशिल्प
08. तुम्बा हस्तशिल्प
09. भित्ती एवं चित्रकला शिल्प
10. पत्ता हस्तशिल्प
11. सीसल हस्तशिल्प
12. कौड़ी शिल्प
13. कशीदाकारी हस्तशिल्प

बस्तर संभाग में प्रचलित विभिन्न तरह की हस्तशिल्प कलाएं :-

जनजाति कला जनजातियों की संस्कृति, रहन–सहन, खान–पान, रीति–रिवाजों एवं उनके विचारों का विभिन्न कलाओं; कलाकृतियों के माध्यम से सजीव चित्रण करता है। भारतीय कला एवं परंपरा अपनी निरंतरता के लिए जानी जाती है। कला के लिए भारतीय संस्कृति में ”शिल्प” शब्द का प्रयोग हुआ है। बस्तर संभाग में कला एवं संस्कृति का अभूतपूर्व विकास हुआ है। मूर्ति कला, शैल चित्र कला आदि में जनजातियों ने परिपक्वता

प्राप्त की है जो अदभूत है। बस्तर की जनजातियों द्वारा बनायी गयी हस्तशिल्प कला जैसे– पत्थर, लकड़ी, धातु, मिट्टी आदि पर ही क्यों न बनायी गयी हो इनकी परंपरा व संस्कृति की छवि इनमें देखी जा सकती है। पत्थर, लकड़ी, मिट्टी आदि ये सभी साधन मात्र हैं। जीवन, जीवन से प्राप्त ज्ञान, पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान उनसे सीखी गयी कला का समावेश ही इन निर्जीव वस्तुओं को भी सजीव कर देती है। बस्तर अंचल में देवी देवताओं के प्रतीक पत्थर–मिट्टी या किसी लकड़ी के टुकड़ों के रूप में है। वेरियर एल्विन ने बताया है कि वास्तव में ये मूर्तिया देवी–देवताओं के मूर्ति स्वरूप नही बल्कि इन्हे समर्पित करने के उद्देश्य से बनाया गया है। आदिवासी बहुल क्षेत्र बस्तर शिल्प कला का उत्कृष्ट स्थान बन गया है। देश–विदेश में आयोजित प्रदर्शनियों मे यहां के कलात्मक हस्तशिल्प को सभी ने सराहा है।

किरीट दोषी ने कलाकृतियों के बारे में लिखा है कि 'बस्तर की कलाकृतियां छोट–बड़े और बहुत बड़े आकारों में बनाई जाती है जिसमें इनके रहन–सहन, नृत्य एवं मेले–मड़ई, दशहरे के त्यौहार के दृश्य आदि विस्तार से दर्शायें जाते है। अप्रशिक्षित, जंगली और असभ्य समझे जाने वाले जनजातियों ने भाषा और अक्षर ज्ञान से अपरिचित होकर भी अपनी संस्कृति एवं सभ्यता को शताब्दियों पूर्व से अपने अद्भूत हस्तशिल्प के माध्यम से न केवल जीवित रखा है बल्कि पीढ़ी दर पीढ़ी उसे सम्प्रेशित किया, बस्तर का पुरातन इतिहास जनजातियों के हस्तशिल्प में छिपा हुआ है।"

1. घड़वा कला (बेलमेटल) :–

बस्तर में धातु शिल्प विद्या विश्व की प्राचीनतम विद्याओं में एक है, जिसे घड़वा कला के नाम से जाना जाता है। बस्तर में धातु शिल्प उद्योग में घड़वा का शाब्दिक अर्थ "गढ़ना" या सृजन करना होता है। जब घसियों का ध्यान अंचल की लोक संस्कृति से प्रतिबद्ध आकृतियों को गढ़ने की दिशा में प्रतिबद्ध हुआ, तब इन्हे घड़वा कहा जाने लगा। घड़वा कला विश्व प्रसिद्ध कला है।

2. लौह शिल्प :–

बस्तर में लोहारों में अधिकांश परंपरागत लोहार हैं। बस्तर अंचल में लोहारों का विशिष्ट सामाजिक महत्व है। आदिवासी समाज में विभिन्न अवसरों पर उपयोग में आने वाली वस्तुओं का निर्माण इनके द्वारा किया जाता रहा है।

3. मिट्टी शिल्प (टेराकोटा) :–

मिट्टी कला बस्तर की प्रसिद्ध कला है। यहां चूल्हे से लेकर मकान तक मिट्टी के बने होते थे। टेराकोटा नाम से इसकी ख्याति दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। इस शिल्प के अन्तर्गत देवी, देवताओं, पशु आकृतियां, सज्जा सामग्रियों की वस्तुएं बनायी जा रही है।

4. काष्ठ कला :–

बस्तर में काष्ठ कला का प्रचलन आदि काल से है। सम्पूर्ण बस्तर संभाग में रहने वाले व़िभिन्न जनजातीय समूह जैसे– मुड़िया, माड़िया, बैगा, भतरा, हल्बा, भैना के लोग विभिन्न तरह के आर्थिक क्रियाकलापों में संलग्न हैं। अधिकांश जनजातियों के जीविकोपार्जन का साधन लकड़ी या लकड़ी से संबंधित हस्तकलाओं पर आधारित है।

5. बांस कला :-

बांस के माध्यम से अनेक प्रकार की कलाकृतियां एवं दैनिक उपयोग की बस्तुएं बनायी जाती हैं। बांस से बनी कलात्मक वस्तुएं सौंदर्य परक और जीवन उपयोगी भी होती हैं। इसलिए बांस शिल्प का महत्व और भी बढ़ जाता है।

6. पत्ता कला :-

बस्तर में अधिकांश जनजातियां विभिन्न पेड़ों के पत्तों के माध्यम से विभिन्न तरह की दैनिक उपयोगी वस्तुओं का निर्माण करती हैं जिनमें– दोना पत्तल, पत्ते से बनी कटोरी, थाली प्रमुख है।

7. तुम्बा शिल्प :-

लौकी को सब्जी के रूप में उपयोग करने के साथ–साथ ही इसे पकने के लिए छोड़ दिया जाता है। इन्ही फलो (तुम्बा या तुमा) का उपयोग अलंकृत कर लैंप, पानी की बॉटल, मुखोटा आदि के निर्माण में किया जाता है।

8. भित्ती शिल्प :-

यह सज्जा हेतु उपयोग में लाया जाता है, इसका उपयोग घर की खिड़कियों और बरामदे के लिए होता है। इनमें सुन्दर जालियां, शुभ सूचक, दीप, सर्प, पशु–पक्षी, आदि की कलाकृतियां होती हैं।

9. पत्थर शिल्प :-

जनजातीय शिल्पकार पत्थर/शिलाओं का उपयोग विभिन्न तरह की कलाकृतियों के निर्माण में करते हैं जैसे– पत्थर की देवी–देवताओं की मूर्तियां, पत्थर के औजार, पत्थर पर नक्काशी वाली कलात्मक वस्तुएं आदि।

10. गोदना हस्तशिल्प :-

छत्तीसगढ़ बस्तर संभाग में जनजातीय महिलाओं एवं पुरूषों में गोदना प्राचीन समय से प्रचलित रही है, गोदना को पछेना या अंकन भी कहा जाता है अंग्रेजी में इसे टैटु कहते है जो शरीर पर बनी कलाकृतियां होती है।

11. सीसल हस्तशिल्प :-

सीसल एक प्रकार का पौधा होता है जिसके पत्तों से रेशे निकाले जाते है, यह रेशे सफेद रंग के एवं मजबूत होते है। इसके रेशों से बनी रस्सियों का उपयोग जहाज बाधने के लिए लंगर के रूप में किया जाता रहा है क्योंकि इसकी बनी रस्सियां कई दिनों तक पानी में डूबे होने पर भी सड़ती नही है, इन्ही रेशों का उपयोग करके सजावटी कलाकृतियों का निर्माण किया जाता है।

12. कोसा हस्तशिल्प :-

बस्तर क्षेत्र के साल वनों में प्राकृतिक रूप से जन्म लेने वाले रैली कोसा से उच्च कोटी के धागे प्राप्त किए जाते है, कोसा से धागे निकालने का कार्य बस्तर क्षेत्र के धरमपुरा व कालीपुर में किया जा रहा है।

13. कशीदाकारी हस्तशिल्प :-

सुई–धागों की सहायता से कपड़ों पर विभिन्न तरह की कलाकृतियां बनाकर सज्जा करना महिलाओं का एक प्रिय कार्य रहा है। जनजातीय महिलाओं में भी कशीदाकारी प्रिय है, बस्तर क्षेत्र के तैलंगा, बंजारा, हल्बा, गोंड आदि विभिन्न जनजातियों/जातियों के द्वारा कशीदाकारी कार्य किया जाता रहा है।

	75 प्रतिशत
ी (संगठित एवं असंगठित क्षेत्र के कार्य)	15 प्रतिशत
ल्प निर्माण संबंधी कार्य	10 प्रतिशत

क्र. छत्तीसगढ़ के जनजातीय क्षेत्रों में जनजाति समुदाय द्वारा रोजगार व जीविकोपार्जन हेतु किए जाने वाले विभिन्न कार्य जनजाति प्रतिशत जो इन कार्यो में संलग्न है

01 कृषि 75 प्रतिशत

02 मजदूरी (संगठित एवं असंगठित क्षेत्र के कार्य) 15 प्रतिशत

03 हस्तशिल्प निर्माण संबंधी कार्य 10 प्रतिशत

सारणी 4 – छत्तीसगढ़ के जनजातीय क्षेत्रों में जनजाति समुदाय द्वारा रोजगार व जीविकोपार्जन हेतु किए जाने वाले विभिन्न कार्य

बस्तर संभाग में जनजातियों की समस्याएं :-

1. **शिक्षा व अज्ञानता संबधी समस्या** – शिक्षा की कमी व अज्ञानता के कारण जनजातीय लोगों द्वारा एकत्रित एवं उत्पादित सामग्रियों को बिचौलियों द्वारा कम कीमत देकर खरीदा जाता है जिससे ये प्रायः ठगी का शिकार हुआ करती हैं।

2. **स्वास्थ्य संबंधी समस्या** – सुदूर वन क्षेत्रों में निवास होने के कारण जनजातियों को बीमारी, दुर्घटना, गर्भावस्था में गांव के ही स्थानीय दाई व स्थानीय उपचार पर निर्भर रहना पड़ता है हालाकि आज हर गांव में स्वास्थ्य केन्द्र स्थापित किये गए हैं फिर भी कच्ची पथरीली सड़क होने के कारण बेहतर स्वास्थ्य सुविधा ग्रामीण क्षेत्रों से कोसों दूर होती है।

3. **शुद्ध पेयजल की समस्या** – जनजातीय क्षेत्रों में प्रायः शुद्ध पेय जल नहीं मिल पाता है। सुदूर जनजातीय क्षेत्रों में आज भी लोग पेय जल हेतु प्राकृतिक स्त्रोतों जैसे– तालाबों एवं कुओं पर निर्भर है। तालाबों–कुओं की साफ सफाई नहीं होने के कारण स्थिर पानी का उपयोग करने से कई तरह की बीमारियां होने का खतरा बना रहता है।

4. **सड़क व बिजली की समस्या** – ग्रामीण अंचल एवं सघन वन क्षेत्रों में निवास होने के कारण सड़क व बिजली संबंधी समस्या का सामना इन जनजातियों को करना पड़ता है। आज भी कई गांव ऐसे हैं जहां बिजली–सड़क की व्यवस्था नहीं हो पायी है।

5. **नक्सली समस्या** – बस्तर संभाग नक्सली समस्या के कारण पूरे भारत वर्ष में जाना जाता है। जनजातीय लोगों को इन क्षेत्रों में हर समय नक्सली समस्या का सामना करना पड़ रहा है।

बस्तर संभाग में जनजातियों की समस्याओं को दूर करने हेतु उपाय/सुझाव :

1. जनजातियों में शिक्षा को बढ़ावा देना होगा जिससे वे शिल्पकला के आर्थिक महत्व को समझकर उनकी कृतियो के बाजार मूल्य का वास्तविक ऑकलन कर सकें।
2. जनजातीय सदस्यों को स्वसहायता समूहों के माध्यम से शिल्पकला के विकास हेतु प्रोत्साहन देना होगा।
3. शिल्पकला हेतु उपयोग में लायी जाने वाली सामग्रियॉ सस्ते व उचित दामों में जनजातीय शिल्पियों को उपलब्ध कराया जाना चाहिए, जिससे उनके समक्ष आर्थिक बाधा उत्पन्न न हो।
4. ग्रामीण व दूरदराज के क्षेत्रों मे सड़को का त्वरित विकास आवश्यक है जिससे कि जनजातीय हस्तशिल्प कला को आसानी से मुख्य बाजार उपलब्ध हो सके।
5. जनजातियों मे मानव संसाधन विकास को प्रोत्साहन देना होगा जिससे वे राष्ट्र विकास में भागीदार बन

सके।

उपसंहार :–

जनजाति हस्तशिल्प से बस्तर के आदिवासियों के जीवन में आर्थिक रूप से सकारात्मक परिर्वतन स्पष्ट दिखायी पड़ता है। यह सत्य है कि प्रारंभ में आदिवासी कलाकारों को अपनी हस्तकला का सही मूल्य प्राप्त नही हो पाया और यह भी उतना ही सत्य है, कि गत दो दशक पहले तक भोले–भाले आदिवासी कलाकारों का आर्थिक शोषण कतिपय बिचौलियों द्वारा किया जाता रहा है। बस्तर के अद्वितीय जनजातीय कलाकारों के संरक्षण के लिए छत्तीसगढ़ शासन ने गत दस वर्षो में अत्यन्त सराहनीय एवं ठोस कदम उठाए हैं। इसके बावजूद जनजातीय कलाकारों तथा उनकी मूलभूत समस्याओं के लिए अभी भी कई महत्वपूर्ण कदम उठाने की आवश्यकता है। जनजातीय कलाकारों द्वारा निर्मित हस्तशिल्प वस्तुओं के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराने तथा विपणन के लिए अभी भी कदम उठाए जाने हेतु राज्य शासन को और गंभीर प्रयास करना होगा जिससे जनजातियों की आर्थिक स्तर में सुधार आने के साथ ही साथ उनका जीवन स्तर भी ऊँचा हो सके।

संदर्भ सूची :–

1. जगदलपुरी, लाला (1994). बस्तर लोक कला संस्कृति. भोपाल : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पेज नं. 76
2. महावर, निरंजन (2014). बस्तर ब्रान्जेस : ट्राइबल रिलेजियन एण्ड आर्ट. नई दिल्ली : अभिनव पब्लिकेशन्स, पेज नं. 96
3. निरगुणे, बंसत (2005). लोक संस्कृति. भोपाल : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पृष्ठ संख्या 76
4. शर्मा, ब्रम्हदेव (1980). आदिवासी विकास एक सैद्धांतिक विवेचन. भोपाल : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पृष्ठ संख्या 110
5. शुक्ल, हीरालाल (1978). प्राचीन बस्तर. नागपुर : विश्वभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 36
6. साव, मदनलाल (1983). बस्तर का इतिहास. इलाहबाद : शक्ति प्रकाशन मंदिर प्रथम संस्करण, पेज नं. 21
7. साहू, छबिराम (2012). जनजातीय हस्तकलाएं : एक ऐतिहासिक अध्ययन बस्तर संभाग के विशेष संदर्भ में. पीएच.डी. शोध प्रबंध, इतिहास अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर छ.ग., भारत।
8. एन.,ए.आर (2002). जनजातीय संस्कृति, भोपाल : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पेज नं. 36
9. बेहार, राजकुमार (1974). बस्तर आरण्यक. जगदलपुर : धर्मार पब्लिकेशन, पेज नं0 178
10. बरनार्ड, निकोलस (1993). भारतीय कला और शिल्प, लंदन कॉनरन ऑक्टोपस लिमिटेड, पेज नं. 182–183
11. बेहार, राजकुमार (2003). छत्तीसगढ़ी विभुतियां एवं संस्कृति. रायपुर : छत्तीसगढ़ शोध संस्थान, पेज नं. 15

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 122-129
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हल्बा स्त्रियों के जीवन स्तर में सुधार – एक अध्ययन (कांकेर जिले के संदर्भ में)

डॉ. सुरेश कुमार
अर्थशास्त्र विभाग
शहीद महेन्द्र कर्मा विश्वविद्यालय, जगदलपुर, (छ.ग.)

शोध सारांश :

किसी समाज की सम्पनता तथा भविष्य को संवारने के लिए महिलायें उपयुक्त मार्गदर्शक होती है। साथ ही विकास एवं सम्पनता को मापने के लिए उस समाज की महिलाओं के सामाजिक–आर्थिक–व्यवसायिक स्तर को एक बेहतर सूचकांक माना जाता हैं। छत्तीसगढ़ राज्य जनजाति बहुत प्रदेश हैं 2011 की जनगणनानुसार राज्य की कुल जनसंख्या 2,55,45,198 है। राज्य में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या 78,22,902 है जो राज्य की जनसंख्या का 30.6 प्रतिशत है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में परिवार की अर्थव्यवस्था में पुरूषों के साथ–साथ स्त्रियों की सक्रिय सहभागिता हैं। कृषि क्षेत्र में इनका प्रतिशत अधिक हैं। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी है। समाज की संरचना में जनजातीय स्त्रियों की भागीदारी न केवल परिवार के विकास में उत्तरदायी है। बल्कि वह व्यैक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, भौगोलिक एवं सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से भी अधिक है। इस प्रकार कह सकते है कि जनजातीय महिलायें जननी के रूप में सकारात्मक भूमिका निभाने की सहभागिता के साथ सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में परिवार व समाज को एक सुदृढ़ दिशा प्रदान करने में सकरात्मक परिणाम दे रही है।

कुंजी शब्द – जनजातीय महिलाएं, जनजाति महिला शिक्षा, जनजातीय महिला सहभागिता, जनजातीय महिला सशक्तिकरण, जनजाति महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति।

प्रस्तावना :–

छत्तीसगढ़ राज्य जनजाति बहुत प्रदेश है। 2011 की जनगणनानुसार राज्य की कुल जनसंख्या 2.55,45,198 है। जहॉ कुल अनुसूचित जनजाति जनसंख्या 78,22,902, राज्य की जनसंख्या का 30.6 प्रतिशत है। वहीं कांकेर जिले में कुल अनुसूचित जनजाति जनसंख्या 4,14,770 जहाँ पुरूष जनसंख्या 2,03,934 वहीं महिला जनसंख्या 2,10,836 जो कुल जनसंख्या का 55.38 प्रतिशत है। इस क्षेत्र में महिला जनसंख्या भी आर्थिक व्यवसायिक सहभागिता को प्रभावित करती है। किसी भी समाज की उन्नति व विकास में स्त्री–पुरूषों का समान भागीदार व सहयोग अति आवश्यक है। स्त्री सहभागिता केवल किन्ही विशेष कार्यो को संपन्न करने के लिए नहीं अपितु परिवार, समाज एवं देश के संपूर्ण विकास के लिए आवश्यक है। अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जो तकनीकियां व कार्यो के माध्यम से करना ही (आर्थिक) धन संबंधी कहलाता है। किसी भी

परिवार में आर्थिक क्रियाकलापों में आर्थिक सहभागिता स्त्रियों की परिवार के साथ–साथ संपूर्ण समाज व देश के विकास के द्योतक है। भारतीय सभ्यता के उद्भव के समय से ही जनजातियां अस्तित्व में रही है। और वन उसके आश्रम एवं जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन था और आर्थिक जीवन परोक्षतः आश्रित है। जनजातियों और वनों के इस संबंध को सहजीवी संबंध भी कह सकते है।

अध्ययन का मुख्य उद्देश्य :–

1. छत्तीसगढ़ के कांकेर जिले के तहसील में निवास कर रहीं जनजातीय महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक एवं व्यवसायिक स्थिति का अध्ययन करना।
2. जनजातीय महिलाओं में शिक्षा के प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पना :–

1. जनजातीय महिलाओं में शिक्षा ही एक ऐसा आधार है जिसे प्राप्त कर विभिन्न कौशल अपनाकर उच्च जीवन–स्तर की कल्पना की जा सकती है।
2. आय ही एक मात्र क्षमता सृजनकारी कारक नहीं है, बल्कि महिला श्रम की सामाजिक भूमिका उसकी क्षमता आर्थिक रूप से भविष्य के निधारिकों को प्रभावित करता है, साथ ही कुछ क्षेत्र जैसे–कृषि, घरेलु कार्य में महिला श्रम की आय कम होने के कारण उनकी कार्यक्षमता को आय प्राप्त न होना है।

प्राथमिक व द्वितीयक संमकों के प्रयोग प्रत्यक्ष अवलोकन वार्तालाप एवं सरल साख्यिकी विधियों आदि के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये है।

अध्ययन का क्षेत्र :–

प्रस्तुत अध्ययन हेतु छत्तीसगढ़ राज्य के कांकेर जिले को लिया गया है। कांकेर जिले के अन्तर्गत सात विकासखण्ड आते है, इन सात विकासखण्ड– कांकेर, भानुप्रतापुर, चारामा, दुर्गकोंदल, नरहरपुर, अंतागढ़, कोयलीबेढ़ा में जनजातीय महिलाओं पर शिक्षा का प्रभाव एवं सामाजिक आर्थिक स्थिति का अध्ययन किया गया है।

शोध विधि –

प्रस्तुत शोध गुणात्मक एवं संख्यात्मक शोध अनुसंधान पर आधारित है। प्रस्तुत शोध में दैव–निदर्शन विधि का उपयोग किया गया है। साक्षात्कार एवं अनुसूची के माध्यम से आकड़े एकत्रित किए गए है। सांख्यिकीय उपकरण के अंतर्गत औसत, सहसंबंध गुणाक, माध्य आदि का उपयोग किया गया है।

शोध आकार :–

गांवों के कुल 425 परिवारों मे से 314 व्यक्ति को निर्देशित किये गये जो कि इन 9 गांवों की संपूर्ण जनसंख्या का 10–04 प्रतिशत है।

जनजातियों की व्यावसायिक संरचना :–

प्रस्तुत वर्गीकरण में जनजातियों की आर्थिक व्यवस्था स्पष्ट होती है, वर्गीकरण इस प्रकार हैं।

1. **वन आखेट** – मत्स्यमारण एवं खाद्य तथा पेय पदार्थ के रूप में वनोपज की प्राप्ति।
2. **पहाड़ी कृषि** – स्थानांतरित खेती, झूम खेती के नाम से जाना जाता हैं।
3. **मैदानी कृषि** – सालभर में मौसम अनुसार फसल उगायें जाते है।

4. **साल कारीगार** – हस्त शिल्प व्यवसाय से संबंधित हैं।

5. **पशु चालक** – पालतु जानवरों के समुह को चाराकर अपना जीवन–निर्वाह करते है।

6. कृषि कार्य एवं अन्य श्रामिक का कार्य करते हे।

जनजातीय महिलाओं की सहभागिता :–

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में परिवार की अर्थव्यवस्था में पुरूषों के साथ–साथ स्त्रियों की सक्रिय सहभागिता है। बड़ा प्रतिशत कृषि में महिला श्रम का है। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी हैं। इस सहभागिता को स्त्रियां अपने पूरी जिम्मेदारीयों के साथ पूर्ण कर रही हैं। समाज के संरचना में स्त्रियों की भागीदारी न केवल परिवार के विकास में उत्तरदायी है। बल्कि वह व्यैक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, भौगोलिक एवं सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में जनजातीय महिलाओं में शिक्षा के स्तर में काफी सुधार हुआ है एवं समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

जनजातीय समाज :–

प्रायः सभी जनजातियों मे वन व कृषि से जीविकोंपार्जन करने का प्रमुख साधन हैं। गांव का पटेल समाज का मुखिया होता हैं। महिलायें वन से संबंधित कंदमुल फल एकत्र करती है। हल्बा जनजाति में गौत्र व्यवस्था होती है एक ही गौत्र में विवाह नहीं होता हैं। विवाह निश्चित होने पर यदि घर पर किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो विवाह महुआ के वृक्ष के साथ कर दिया जाता है जिससे पवित्रता बनी रहती हैं। जनजातियों की अब भी ऐसी मान्यता है जिसके अन्तर्गत समाज में वधु मुल्य प्रचलन में है, अंर्तजातीय विवाह करने पर आजीवन जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है। मृतक का दाह संस्कार करते है। बाल मुंडवाते है। स्त्रियां गुदना गोदवाती है। दशहरा, दीपावली, होली, त्योहार मानते है। जिदरी एवं नवाखानी भी पूजते है।

प्रस्तुत अध्ययन हेतु छत्तीसगढ़ के कांकेर जिले में रहने वाली जनजाति का चयन वर्ष 2011 की जनगणना को आधार मानकर किया गया है। तथा अध्ययन हेतु आवश्यक उपयोगी तथ्यों को अनुसूची का प्रयोग किया गया है।

सारणी क्रमांक – 01

तहसीलवार अनुसूचित जनजाति जनसंख्या

क्र.	तहसील का नाम	जनसंख्या	पुरूष	महिला	प्रतिशत
1.	चारामा	50,754	24,646	26,108	65.293
2	भानुप्रतापपुर	59,896	29,210	30,680	92.21
3.	दुर्गकोंदल	61,951	30,205	31,746	50.10
4.	कांकेर	61,951	30,205	31,746	86.071
5.	नरहरपुर	72,919	35,638	37,281	114.05
6.	अंतागढ़	60,248	29,936	30,312	118.99
7.	कोयलीबेड़ा (पखांजूर)	59,752	30,000	29,752	48.186
योग		4,14,770	2,03,934	2,10,836	

स्रोत : जिला सांख्यिकी कार्यालय कांकेर (छ.ग.)

सारणी क्रमांक-02

कांकेर जिले में शिक्षा-व्यवस्था

Sr. No.	Name of CD Block	Total number of inhabited villages	Type of educational institutions available			
			No school	At least one primary school and no middle school	At least one primary school and one middle school	At least one middle school and one secondary school
1	2	3	4	5	6	7
1	0115-CHARAMA	97	1	23	73	21
2	0116-DURGKONDAL	150	8	79	63	12
3	0117-BHANUPRATAPPUR	110	1	44	65	14
4	0118-KANKER	100	3	33	64	17
5	0119-SARANA(NARHARPUR)	118	2	35	81	19
6	0120-ANTAGARH	189	12	106	71	10
7	0121-KOYALIBEDA	299	18	164	117	24
	Total	1063	45	484	534	117

स्रोत : जिला सांख्यिकी कार्यालय कांकेर (छ.ग.)

सारणी क्रमांक-03

कांकेर जिले में कार्यशील जनसंख्या

Name of Sub-district	Persons / Males/ Females	Total population	Main workers		Marginal workers		Total workers (main and marginal morkers)		Non workers	
			Number	Percentage	Number	Percentage	Number	Percentage	Number	Percentage
2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
03348-Charama	Persons	106462	43634	40.99	16296	15.31	59930	56.29	46532	43.71
	Males	52163	25626	49.13	6031	11.56	31657	60.69	20506	39.31
	Females	54299	18008	33.16	10265	18.90	28273	52.07	26026	47.93
03349-Bhanupratappur	Persons	94937	40198	42.34	7075	7.45	47273	49.79	47664	50.21
	Males	46855	24375	52.02	2389	5.10	26764	57.12	20091	42.88

	Females	48082	15823	32.91	4686	9.75	20509	42.65	27573	57.35
03350-Durgkondal	Persons	64293	25175	39.16	11973	18.62	37148	57.78	27145	42.22
	Males	32211	15363	47.69	3994	12.40	19357	60.09	12854	39.91
	Females	32082	9812	30.58	7979	24.87	17791	55.45	14291	44.55
03351-Kanker	Persons	123650	45470	36.77	17898	14.47	63368	51.25	60282	48.75
	Males	61180	29021	47.44	6790	11.10	35811	58.53	25369	41.47
	Females	62470	16449	26.33	11108	17.78	27557	44.11	34913	55.89
03352-Narharpur	Persons	110424	40759	36.91	22609	20.47	63368	57.39	47056	42.61
	Males	53931	24875	46.12	7586	14.07	32461	60.19	21470	39.81
	Females	56493	15884	28.12	15023	26.59	30907	54.71	25586	45.29
03353-Antagarh	Persons	78175	26147	33.45	15603	19.96	41750	53.41	36425	46.59
	Males	39040	16174	41.43	5904	15.12	22078	56.55	16962	43.45
	Females	39135	9973	25.48	9699	24.78	19672	50.27	19463	49.73
03354-Pakhanjur	Persons	171000	64153	37.52	12369	7.23	76522	44.75	94478	55.25
	Males	87958	44468	50.56	4917	5.59	49385	56.15	38573	43.85
	Females	83042	19685	23.70	7452	8.97	27137	32.68	55905	67.32
District: Uttar Bastar Kanker (413)	Persons	748941	285536	38.13	103823	13.86	389359	51.99	359582	48.01
	Males	373338	179902	48.19	37611	10.07	217513	58.26	155825	41.74
	Females	375603	105634	28.12	66212	17.63	171846	45.75	203757	54.25

स्रोत : जिला सांख्यिकी कार्यालय कांकेर (छ.ग.)

सारणी क्रमांक–04

कांकेर जिले में साक्षर–जनसंख्या

Sr.No.	Name of Sub-district	Total/ Rural/ Urban	Number of literates and illiterates				Literacy rate		Gap in male-female literacy rate			
			Number of literates			Number of illiterates						
			Persons	Males	Females	Persons	Males	Females	Persons	Males	Females	
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
1	03348-Charama	Total	73403	40456	32947	33059	11707	21352	77.44	87.55	67.82	19.73
		Rural	66394	36753	29641	30361	10678	19683	76.95	87.34	67.06	20.28
		Urban	7009	3703	3306	2698	1029	1669	82.39	89.68	75.51	14.17

2	03349-Bhanupratappur	Total	58779	32943	25836	36158	13912	22246	71.4	81.42	61.72	19.7
		Rural	52249	29522	22727	34563	13295	21268	69.59	80.06	59.49	20.57
		Urban	6530	3421	3109	1595	617	978	90.17	95.48	84.97	10.51
3	03350-Durgkondal	Total	34174	20018	14156	30119	12193	17926	62.62	73.37	51.87	21.5
		Rural	34174	20018	14156	30119	12193	17926	62.62	73.37	51.87	21.5
		Urban	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
4	03351-Kanker	Total	84782	46596	38186	38868	14584	24284	77.36	86.11	68.83	17.28
		Rural	55265	31342	23923	30943	11417	19526	72.5	82.97	62.21	20.76
		Urban	29517	15254	14263	7925	3167	4758	88.48	93.36	83.79	9.57
5	03352-Narharpur	Total	67747	37927	29820	42677	16004	26673	69.24	79.84	59.24	20.6
		Rural	64400	36181	28219	41515	15530	25985	68.62	79.41	58.44	20.97
		Urban	3347	1746	1601	1162	474	688	83.84	89.77	78.21	11.56
6	03353-Antagarh	Total	38566	22891	15675	39609	16149	23460	59.29	70.39	48.2	22.19
		Rural	33598	20120	13478	37800	15512	22288	56.91	68.27	45.59	22.68
		Urban	4968	2771	2197	1809	637	1172	82.7	90.85	74.3	16.55
7	03354-Pakhanjur	Total	98591	57467	41124	72409	30491	41918	68.14	76.98	58.72	18.26
		Rural	90779	53127	37652	70020	29461	40559	66.9	75.99	57.24	18.75
		Urban	7812	4340	3472	2389	1030	1359	86.86	91.64	81.54	10.1
	District: Uttar Bastar Kanker(413)	Total	456042	258298	197744	292899	115040	177859	70.29	80.03	60.64	19.39
		Rural	396859	227063	169796	275321	108086	167235	68.34	78.58	58.19	20.39
		Urban	59183	31235	27948	17578	6954	10624	86.9	92.46	81.43	11.03

स्रोत : जिला सांख्यिकी कार्यालय कांकेर (छ.ग.)

किसी जनसंख्या की साक्षरता संपूर्ण जानकारी का दपर्ण होता है। जहॉ साक्षरता का उच्च–स्तर जनसंख्या के जीवन के उच्च स्तर को बताता है। इसलिए जनांकिकी के अध्ययन के लिए शिक्षा एवं साक्षरता एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक कारक है। शिक्षा का सीधा संबंध उसके जनन व्यवहार से होता है। उच्च शिक्षित परिवार का छोटा आकार और अशिक्षित परिवार का बड़ा आकार उनके जनन व्यवहार के कारण होता है। आर्थिक–सामाजिक मूल्यों को शिक्षा प्रभावित करती है। कांकेर जिले में विभिन्न आयु वर्गो में 55.4 प्रतिशत जनजाति साक्षरता है वही अध्ययन से स्पष्ट होता है। ग्रामीण क्षेत्र में महिलायें 58.19 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में 81.43 प्रतिशत है। इस प्रकार कुल जनजातीय जनसंख्या में महिला साक्षरता 60.64 प्रतिशत है। परिणामस्वरूप महिलायें कार्यशील जनसंख्या में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। प्राय: जनजाति कांकेर जिल–तहसील के गांवों में निवासरत है। इसमें जनसंख्या के आधार पर गांवो का चयन कर 425 परिवारों को न्यादर्श निवास कर रहें

जनजातियों को आधार मानकर अध्ययन किया गया है। कुल जनसंख्या 1800 उसमें 884 पुरूष और 916 महिलायें रहती है। 0–6 आयु वर्ग के बच्चे 212 कुल जनसंख्या 11.78 प्रतिशत है। लिगानुपात 1036 व साक्षरता दर 72.80 प्रतिशत है।

वितरण :–

छत्तीसगढ़ में लगभग 42 जनजातियां एवं उपसमुह विभिन्न भागों में निवास करती है। सामान्य रूप से जनजाति पूरे भारतवर्ष में पाई जाती है।

आर्थिक कार्यों में महिलाओं की भागीदारी :–

जनजातिय महिलायें सूर्योदय से ही खेतों में काम करती है तो घरेलु कामकाज, मजदूरी तथा स्थानीय बाजार में वनोपज बेचने का काम करती है। इन परिवारों के पास भूमि स्वामित्व कम है, भूमि उपजाऊ नहीं है। महिलायें खेत में मजदूरी करती है। इसके अलावा बांस के लट्ठों से ठोकरी, मिट्टी के घड़े बनाती है। परिवार की अर्थव्यवस्था का अधिकांश भाग इन महिलाओं की अर्जित आय पर निर्भर करता है। किसी भी समाज के सामाजिक, आर्थिक स्थिति को उसकी आय तथा जीविकोपार्जन प्रभावित करती है। अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जनजातियां वनों पर निर्भर रहती है। बांस जैसे वृक्ष से आदिकाल से अब तक घर बनाते आ रहे है। बांस के ऊपर मिट्टी छाब देते है। जिससे इसमें मजबूती आती है। महुआ वृक्ष बहुत ही पसंदीदा वृक्ष है। जिससे वे पेय पदार्थ निकालते है और उसे बेचकर आम प्राप्त करते है। और विशेष अवसर पर ''पेय मंद'' तैयार करते है। ''कोसा'' का भी संग्रहण करके स्थानीय घर बाजार में आयें व्यापारियों को बेचते है। साल तेंदूपत्ता संग्रहण कर बेचा जाता है। चिरोंजी, शहद, सरई के पत्तों, पलास, लाख, गोंद आदि का उपयोग अपनी रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा कर विक्रय भी करते है। जनजातियां आज भी मिट्टी के बर्तन तथा खाने के लिए पेड़ों से प्राप्त पत्तों को दोने पत्तें का आकार देकर इस्तेमाल करती है। जनजाति में अनेक वन्य वृक्षों का प्रयोग विभिन्न प्रकार बीमारियों के औषधियों के रूप में भी करते है। जैसे काली मुसली, सफेद मुसली, चिरायता आदि इनका निजी उपयोग के साथ–साथ विक्रय भी करते है। वन वृक्षों को छालों से ये रस्सी का निर्माण करते है। इसके अतिरिक्त इमली, आंवला, बेहड़ा बीज, कुसुम आदि संग्रहणकर विक्रय करके आय के हिस्सों के स्त्रोत बनाते है। इन सब कार्यों में महिलाओं की सहभागिता अधिक रहती है।

निष्कर्ष :–

विश्लेषण के आधार पर जनजातियों में इस अध्ययन से ज्ञात होता है कि जनजातीय परिवारों में 10–15 प्रतिशत एकांकी परिवार है क्योंकि ये परिवार प्रायः शिक्षित होती जा रही हैं और आधुनिकता से जुड़ रही है ऐसे परिवारों में स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी होती है व अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के साथ जिम्मेदारी पूर्ण आर्थिक कार्यो का निष्पादन सलंग्न रहकर करती है। मौसमी उतार–चढ़ाव के कारण फसल अच्छा न होने पर ये महिलायें देशांतरण कम करती है। और घर पर रहकर ही वनों से प्राप्त चीजों का विक्रयकर आर्थिकोपार्जन कर घर चलाती है। जैसे – झाडू, निर्माण, मिटटी के बर्तन, बांस के बने शिल्प बनाती है। घरेलू कार्यों में कार्यशील तथा अकार्यशील आयु वर्ग की स्त्रियां संलग्न होकर करती रहती है जिनसे इनके परिवार की आर्थिक सुदृढ़ता बनी रहती है। आर्थिक संरचना मुख्यतः कृषि व जंगली उपज पर निर्भर है इस कारण यें वनों पर अधिक आश्रित है इससे संबंधित क्रियाकलापों का निष्पादन समयानुसार करते रहते है। अध्ययन से स्पष्ट है कि जिला–कांकेर में

जनजातिं स्त्रियों की स्थिति अच्छी होती जा रही है। वर्तमान में कई नवयुवतियां शिक्षण प्राप्त कर नौकरी में आ रहे है और उनसे उनके परिवार की आर्थिक स्थिति में निरंतर सुधार हो रहा है।

संदर्भ एवं ग्रंथ सूची :-

1. एल्विन वेरियर (1991) : द अगारिमा वन्य प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. क्रं. 58–59
2. त्रिपाठी के. एच. चन्द्राकर 2001 : छत्तीसगढ़ का भूगोल शारदा प्रकाशन बिलासपुर भाग 1, पृ. क्रं. 79–80
3. मिश्र जे.पी. (2003) : जनांकिकी, साहित्य भवन, पब्लिकेशन आगरा, पृ. क्र. 77
4. तिवारी बी. के. (2001) : छत्तीसगढ़ की जनजातियां ''हिमालया पब्लिसिंग हाउस, पृ. क्रं. 44–45
5. Census to India (2011) : Chhatishgarh at the galance.
6 Ministrey of tribal development M.P. Govt. sub plan : 2005, P.1
7. जैन, श्रीचन्द्र (1980) : ''आदिवासियों के बीच'' कमल प्रेस, दिल्ली, पृ. क्रं. 37–39

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 130-140
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

चरकसंहितायां प्रतिफलितं सांख्यतत्त्वम्

डा. उत्तम-माझिः
अतिथि–प्राध्यापकः, संस्कृत–विभागः,
काजी–नजरुल–विश्वविद्यालयः, पश्चिमबर्धमानः, आसानसोलः, पश्चिमवङ्गः–713340
प्रभात-मण्डलः
शोधच्छात्रः, संस्कृतविभागः, बर्धमानविश्वविद्यालयः, पश्चिमवङ्गः

शोधसारः –

चरकसंहितायां सांख्यदर्शनस्य तत्त्वानि स्वीकृतानीति। यदि चरकानुसारं पुरुषः प्रकृतिश्च 'अव्यक्तम्' इति पदेन गृह्येते तर्हि सांख्यवत् पञ्चविंशतितत्त्वानि भवन्तीति। तथापि किञ्चित् वैसादृश्यमपि परिलक्ष्यते। चरकसंहितायं 'अव्यक्तम्' इति पदेन प्रकृतिपुरुषयोः बोधः सांख्यसिद्धान्तात् सर्वथा भिन्नः। सांख्यानुसारं प्रकृतिः पुरुषश्च सम्पूर्णतया भिन्नौ। सांख्ये पुरुषाणां भोगार्थम् अपवर्गार्थञ्च पुरुषसान्निध्यात् प्रकृत्या सृष्टिरारभ्यते। चरकानुसारेणापि क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः संयोगवशात् अव्यक्तप्रकृतेरर्थात् क्षेत्रज्ञाधिष्ठितप्रधानात् बुद्धिरुत्पद्यते, बुद्धेरहं भाव इति अहंकार उत्पद्यते, अहंकारात् खादीनि अर्थात् पञ्चतन्मात्राणि सूक्ष्मभूतानि वा उत्पद्यन्ते। चरसंहितायां चतुर्विंशतितत्त्वानि द्विधा विभज्यन्ते प्रकृतिः विकृतिश्चेति। अव्यक्तम्, बुद्धिः, अहंकारः, पञ्चमहाभूतानि च एतानि अष्टौ प्रकृतयः; पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि, पञ्चकर्मेन्द्रियाणि, मनः, शब्दः, स्पर्शः, रूपं, रसः, गन्धः- एते षोडश विकाराः। सिद्धान्तोऽयम् ईश्वरकृष्णीयसांख्यानुसारेण न सङ्गतः। धातुभेदेन पुरुषः त्रिविधरेकधातुकः षड्धातुकः चतुर्विंशतिधातुकश्चेति चरसंहितानुसारम्। यथा- एकाधातुकपुरुषः = पुरुषः = 1, षड्धातुकपुरुषः = पञ्चतन्मात्राणि + पुरुषः = 6, चतुर्विंशतिधातुकपुरुषः = बुद्धिः+ अहंकारः + मनः + पञ्चतन्मात्राणि + पञ्चतज्ञानेन्द्रियाणि + पञ्चकर्मेन्द्रियाणि + पञ्चमहाभूतानि + पुरुषः = 24. अतः चरकसंहितायां यथोक्तं पुरुषस्वरूपं सांख्यदर्शनानुसारमित्यनुमानं कर्तुं शक्यते। सांख्यदर्शनेऽपि पुरुषो व्यापकः, स्वतन्त्रः, ज्ञाता, साक्षी, निष्क्रियश्चेति वर्णितोऽस्ति। अतो सांख्यदर्शनस्य पञ्चविंशतितत्त्वानि आश्रितय **"चरकसंहितायां प्रतिफलितं सांख्यतत्त्वम्" इति** शोधप्रबन्धे समासेन समाक्षात्मकविचाराः प्रस्तूयन्ते।

कूटशब्दाः - पुरुषः, प्रकृतिः, महत्, सूक्ष्मभूतानि, अव्यक्तम्, चतुर्विंशतितत्त्वानि, खादीनि, अहंकारः, पञ्चतन्मात्राणि, पञ्चभूतानि, बुद्धितत्त्वम्, इन्द्रियाणि

प्रस्तावना -

षड्विधास्तिकदर्शनेषु सांख्यदर्शनं प्राचीनतमम् इति कथ्यते। सांख्यदर्शनस्य स्रष्टा महर्षिकपिलः। परन्तु परितापस्य विषयो यद् आदिकपिलस्य कापि उक्तिः कोऽपि ग्रन्थो वा इदानीं न प्राप्यते। विज्ञानभिक्षुनोक्तं – "कालार्कभक्षितं सांख्यशास्त्रं ज्ञान-सुधाकरम् (सांखप्रवचन भाष्य-भूमिका)"। अद्यावधि ईश्वरकृष्णस्य सांख्यकारिकामाध्यमेन कापिलसांख्यदर्शनं जीवितम्। विद्वत्समाजे सांख्यदर्शनं निरीश्वरसांख्यदर्शनरूपेण प्रसिद्धम् अस्ति। परन्तु श्रुति-स्मृति-महाभारत-पुराणादिषु महर्षिकपिलस्य तथा सांख्यदर्शनस्य श्रद्धापूर्वकोल्लेखत्वात् तत्र मूलचेतनकारणस्य मुख्यरूपेण उल्लेखत्वात् किन्तु सांख्यकारिकायां मूलचेतनकारणस्य ईश्वरस्य वा

अप्राधान्यत्वाद् सांख्यदर्शनस्य पुनर्मूल्यायणस्य अवकाशः परिलक्ष्यते। अत ईदानीं लघुशोधप्रबन्धे केवलं चरकसंहितायां प्रतिफलितं सांख्यतत्त्वम् प्रदीयते।

1 चरकसंहितायं पुरुषविचारः

धातुभेदेन पुरुषः त्रिविधरेकधातुकः षड्धातुकः चतुर्विंशतिधातुकश्चेति चरसंहितानुसारम्। **एकाधातुकः पुरुषः**- सर्वभूतानां चैतन्यस्य हेतुः, अचिन्त्यप्रभामयो ब्रह्मस्वरूपो महानिर्वाणे च स्थितः, अद्वितीयः चैतन्यधातुरेकधातुकपुरुषरूपेण प्रसिद्धः। **"चेतनाधातुरप्येकः स्मृतः पुरुषसंज्ञकः"**[1] अर्थात् शरीरे अवस्थानत्वात्तस्य पुरुषसंज्ञेति। **"यस्य धारणपोषणोपादानहेतुर्यः स तस्य धातुः। चेतना सर्वचैतन्यहेतुरचिन्त्यानन्तप्रभाववती मूलप्रकृतिः शक्तिर्ब्रह्म या महानिर्वाणेऽवशिष्यते । तच्चेतनाशक्त्युपादानः चेतनाधातुर्य एकः खल्वद्वितीयः सोऽपि पुरुषसंज्ञकः स्मृतः। पुरि व्याकृताव्याकृतशरीरे वसतीति बसेरीणादिकः कच् प्रत्ययः पुरुषः"**[2] इति गङ्गाधरेणोक्तम्। अत्र 'मूलप्रकृतिः' इति सृष्टेः मूल-चेतनकारणम्, न सांख्योक्तप्रधानमिति मन्यते।

षड्धातुकपुरुषः - चेतनधातोः पञ्चतन्मात्राणां च समाहारः षड्धातुकपुरुषरिति-**"खादयश्चेतनाषष्ठा धातवः पुरुषः स्मृतः।"**[3] अत्र स्थितः चेतनधातुः जगतो मूलीभूतः सर्वात्मा सर्वेषां भूतानां चैतन्यदायकोऽव्यक्त आत्मेति मन्यते। महाप्रलये अपि च सः स्थितः- **"खमाकाशं शब्दः तन्मात्ररूपं तदादिर्येषां वाय्वादीनां शब्दतन्मात्रादिरुपाणां न पूर्वपूर्वभूतानुप्रविष्टरूपाणाञ्च। चेतनाधातुः षष्ठो यत्र ते तथा चेतनाधातुषष्ठा। खादयः समस्तरूपेण स्मृतो न तु व्सस्तरूपेणेति षड्धातुक एकविधः पुरुषः। चेतना खलु सा महारनिर्वाणाख्यप्रलये यदवशिष्यते शक्तिर्ब्रह्म। सा चेतनाशक्तिर्मूलप्रकृतिः सर्वात्मा चेतन्यकारिणी, तच्चेतना धातुरव्यक्ताख्य आत्मा। खादयः पञ्च महाभूतानि ।"**[4] अत्र गङ्गाधरेण 'खादयः' इत्यनेन पञ्चमहाभूतानि इति बुध्यन्ते। किन्तु चक्रपाणिदत्तेन 'खादयः' इत्यनेन सूक्ष्मभूतानि तन्मात्राणि वा निर्दिश्यन्ते।

चतुर्विंशतिधातुकपुरुषः पुरुषः पुनः चतुर्विंशतिधातुकरूपेण निर्दिश्यते । चतुर्विंशतितत्त्वविषये चरकसंहितायाम् असहमतिरुक्ति दृश्यते। 'पुनश्च' उक्तिना चरकेण तद्दर्शितम्-

"पुनश्च धातुभेदेन चतुर्विंशतिकः स्मृतः।
मनो दशेन्द्रिण्यर्थाः प्रकृतिश्चाष्टधातुकी ॥
खादीनि बुद्धिरव्यक्तमहंकारस्तथाऽष्टमः।
भूतप्रकृतिरुद्दिष्टा विकाराश्चैव षोडश॥
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च।
समनस्काश्च पञ्चार्थां विकारा इति संज्ञिताः"॥[5]

अस्मिन् विषये टीकाकाराणां मध्ये अपि असहमतिः द्रष्टुं शक्यते। चक्रपाणिदत्तेन 'खादीनि' इत्यस्य अर्थः पञ्चतनमात्राणि, 'पञ्चार्थाः' इत्यस्य अर्थः पञ्चमहाभूतानि इति व्याख्यायन्ते। चक्रपाणिनानुसारं चतुर्विंशतितत्त्वानि। यथा - अव्यक्तं, बुद्धिः, अहंकारः, पञ्च तन्मात्राणि, मनो, दशेन्द्रियाणि, पञ्चमहाभूतानि चेति - **"खादीनि सूक्ष्मभूतखादीनि तन्मात्रशब्दाभिधेयानि । बुद्धिर्महच्छब्दाभिधेया। अव्यक्तं मूलप्रकृतिः। अहंकारो बुद्धिविकारः। स च त्रिविधः - भूतादिः, तैजसः, वैकारिकश्च ।.... पञ्चार्ता इति स्थूला आकाशादयः शब्दादिरूपा गुणगुणिनोर्हि परमार्थतो भेदो नास्त्सेवास्मिन् दर्शने।"**[6] अपरपक्षे गंगाधरेण 'खादीनि' इत्यस्यार्थः पञ्चमहाभूतानि, 'पञ्चार्थाः' इत्यस्य अर्थः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाश्चेति- **"कानि तानि चतुर्विंशतित्तत्त्वानीत्यत्र आह- मनो दशेन्द्रियाण्यर्थाः प्रकृतिश्चाष्टधातुकीति। तत्सूक्ष्मदेहे यदाहंकारिकं मनो. यान्याहंकारिकाणि दशेन्द्रियाणि, ये च खादिगुणाः पञ्चशब्दादयः, पञ्चभूताहंकारमहदव्यक्तानीत्यष्टौ चेति चतुर्विंशतिनिष्पन्नस्थूलदेही पुरुषः।"**[7]

अत्र धातवपुरुषवर्णनाप्रसङ्गे यत् 'अव्यक्तम्' पदमुक्तम् तस्य अर्थः पुरुष इति वक्तुं शक्यते। यतः एकाधातुकपुरुषे पुरुषो गृह्यते एवं षड्धातुकपुरुषे अपि पुरुषो गृह्यते। एवं चतुर्विंशतिधातुकपुरुषे पुरुषो ग्रहणीय इति।

एकाधातुकपुरुषः = पुरुषः = 1

षड्धातुकपुरुषः = पञ्चतन्मात्राणि + पुरुषः = 6

चतुर्विंशतिधातुकपुरुषः = बुद्धिः+ अहंकारः + मनः + पञ्चतन्मात्राणि + पञ्चतज्ञानेन्द्रियाणि + पञ्चकर्मेन्द्रियाणि + पञ्चमहाभूतानि + पुरुषः = 24.

यद्यपि पुरुषः त्रिविध इति उच्यते, तथापि स्वरूपतः पुरुष एकैव इति मन्यते। मोक्षे एकाधातुकः पुरुषः प्राप्यते। संसाररूपेण षड्धातुकपुरुषः चतुर्विंशतिधातुकपुरुषश्च बहव इति कल्प्यन्ते। आत्मा नित्यः शाश्वतश्चेति चरकमतानुसारेण। तस्य उत्पत्तिविनाशर्नास्तीति। आत्मैव परमात्मेति- **'प्रभवो न ह्यनादित्वाद् विद्यते परमात्मनः"।**[8] सृष्ट्यादौ स वर्तते। स अव्यक्तोऽव्ययः सर्वव्याप्यचिन्त्यः -

"तदेव भावादग्राह्यं नित्यत्वं न कुतश्चन।
भावाज् ज्ञेयं तदव्यक्तमचिन्त्यं व्यक्तमन्यथा॥
अव्यक्तमात्मा क्षेत्रज्ञः शाश्वतो विभुरव्ययः"॥[9]

आत्मा शुद्धः चिन्मय एकोऽद्वितीयः सर्वजीवानां चैतन्यः। स आत्मा ब्रह्मस्वरूपोऽन्तरात्मत्वेन जीवानां शरीरेषु तिष्ठति **"तस्य पुरुषस्य पृथिवी मूर्तिः आपः क्लेदः ब्रह्म अन्तरात्मा।"**[10] जीवात्मत्वेन सोऽनेकः, परमात्मत्वेन तु स एकोऽद्वितीयः। चरकेन आत्मा ब्रह्मस्वरूपत्वेन कल्पितः। स जीवानां शरीरेष्वन्तरात्मत्वेन विद्यते। सांख्ये तु आत्मा ब्रह्मस्वरूपत्वेन न स्वीकृतः। सांख्यदर्शने पुरुषबहुत्वं ज्ञायते।

चरकेन बुद्धि-अहंकार-मनः-दशेन्द्रिय पञ्चतन्मात्र पञ्चमहाभूतेभ्यः सह पुरुषः चतुर्विंशतिकपुरुष इति उच्यते। एषः पुरुषः 'राशि-पुरुष' इत्युच्यते-

"बुद्धीन्द्रियमनोऽर्थानां विद्याद् योगधरं परम्।
चतुर्विंशतिको ह्येष राशिः पुरुषसंज्ञकः॥"[11]

आत्मा नित्योऽनादि निर्विकारः सर्वधर्मरहितः। किन्तु राशिपुरुषः तद्विपरीत इति। राशिपुरुषस्य उत्पत्तिरस्ति। मोह-इच्छा-द्वेष-कर्मवशात् राशिपुरुषः उत्पद्यते- **"पुरुषो राशिसंज्ञस्तु मोहेच्छाद्वेषकर्मजः"।**[12] अत्र मोहशब्दोऽज्ञानार्थद्योतक इति मन्यते। मोहवशात् जीवस्य विषयासक्तिर्जायते। ततः कर्मणि प्रवृत्तिर्जायते। प्रवृत्ति द्विविधा शुभप्रवृत्तिरशुभप्रवृत्तिश्च। तस्याः फलमपि द्विधं धर्मोऽधर्मश्च। कर्मफलं भोगाय तदनुसारं शरीरमुत्पद्यते। एतत् शरीरमेव राशिपुरुष इति कथ्यते। कर्म कर्मफलं मोहः करुणा सुखं दुःखादिकं जन्मो मृत्युश्च अस्मिन् राशिपुरुषे दृश्यन्ते-

"अत्र कर्म फलं चात्र ज्ञानं चात्र प्रतिष्ठितम्।
अत्र मोहः सुखं दुःखं जीवितं मरणं स्वता॥
एवं यो वेद तत्त्वेन स वेद प्रलयोदयौ।
पारस्पर्यं चिकित्सा च ज्ञातव्यं यच्च किञ्च न॥"[13]

अयं राशिपुरुषः चिकित्सायोग्यः। राशिपुरुष इत्यनेन स्थूलशरीरं लक्ष्यते चरकानुसारमिति वक्तुं शक्यते। चरकसंहितायां प्राकृतिजाततत्त्वानां समवायः 'क्षेत्रम्' इत्युच्यते देहस्थित आत्मा च 'क्षेत्रज्ञः' इत्युच्यते। चरकानुसारं क्षेत्रेण सह क्षेत्रज्ञस्य सम्बन्धोऽनादिरिति-

आदिर्नास्त्यात्मनः क्षेत्रपारम्पार्यमनादिकम्।
अतस्तयोरनादित्वात् किं पूर्वमिति नोच्यते॥"[14]

रजस्तमोगुणद्वयस्य प्राधान्यमस्य संबन्धस्य कारणम्। अपरं तु सत्त्वगुणस्य प्राबल्यत्वेन शुद्धतत्त्वज्ञानं उत्पद्यते, तदा संसारस्य कारणं रजस्तमोगुणद्वयं नाश्यते। ततो विवेकज्ञानाद् आत्मानो मुक्तिः सिद्ध्यति-

"रजस्तमोभ्यां युक्तस्य संयोगोऽयमनन्तवान्।
ताभ्यां निराकृताभ्यां तु सत्त्ववृद्ध्या निवर्तते" ॥[15]

भोगतृष्णा शरीरोत्पत्तिहेतुः। भोगतृष्णानाशे सति जीवस्य रागो द्वेषो नाशः। अथ कर्मप्रवृत्तिः नाश्यते। धर्माधर्मो न कर्माभावादुत्पद्येते। जन्मनः शरीरोत्पत्तेरावश्यकता नास्ति। वर्तमानदेहे सञ्चितकर्मफलं भोगेन नाशः। भोगेन कर्मफलनष्टे सति जीवः शरीरात् मुक्तो भवति। अपि च तस्य पुनरागमनं न सम्भवति-

"उपधा हि परो हेतुर्दुःखाश्रयप्रदः।
त्यागः सर्वोपधानां च सर्वदुःखव्यपोहकः"॥[16]

पुरुषस्य मुक्तिविषये चरकस्य एतद्मतं सांख्यानुसारमिति मन्यते । आत्मा ज्ञाता; न तु सर्वदा सर्वं जानाति। बुद्धि-अहंकार-मन-इन्द्रियेभ्यः सह सम्बन्धात् आत्मानो ज्ञानं जायते **"आत्मा ज्ञः करणैर्योगाज् ज्ञानं तस्य प्रवर्तते "**।[17]

ड. दासगुप्तः शुद्धात्मानि ज्ञानस्य अस्तित्वं न स्वीकृतवान्। मनसा ज्ञानेन्द्रियेभ्यश्च सम्बन्धेनात्मनो बोधो जायते इत्युक्तं दासगुप्तेन ।[18]

बुद्ध्यादिकरणेभ्यः सह आत्मनः संयोगात् कर्मबन्धनं च उत्पद्यते, अपि च संयोगाभावात् कर्मनिवृत्त्यनन्तरं मोक्षः सञ्जायते। अविवेकवशात् बुद्ध्यादिकरणेभ्यः सह आत्मनः सम्बन्धः प्रतिष्ठितः –

"करणानि मनो बुद्धिर्बुद्धिकर्मेन्द्रियाणि च।
कर्तुः संयोगजं कर्म वेदना बुद्धिरेव च ॥
नैकः प्रवर्तते कर्तुं भूतात्मा नाश्नुते फलम् ।
संयोगाद् वर्तते सर्व तमृते नास्ति किञ्चन ॥"[19]

आत्मा ज्ञाता साक्षी चेतनः किन्तु निष्क्रियः। मनोऽचेतनं किन्तु क्रियाशीलम्। आत्मना सह वियुक्तस्य मनसो गतिर्न दृश्यते। मनसः कर्माण्येव आत्मनः कर्माणि इति भ्रमो जायते। चिन्मयपुरुषस्य सान्निध्यात् मनसः कर्म दृष्टत्वात् आत्मा कर्ता इति मन्यते। वस्तुत आत्मा निष्क्रिय एव। मनः सक्रियत्वेऽपि अचेतनत्वात् कर्तृत्वेन न उच्यते; परन्तु वस्तुतो मन एव कार्य्यनिष्पादककर्ता इति-

"अचेतनं क्रियावच्च मनश्चेतयिता परः।
युक्तस्य मनसा तस्य निर्दिश्यन्ते विभोः क्रिया ॥
चेतनावान् यतञ्चात्मा ततः कर्ता निरुच्यते।
अचेतनत्वाच्च मनः क्रियावदपि नोच्यते "॥[20]

अत्र मन इति अन्तःकरणस्य द्योतकम्। अतः चरकसंहितायां यथोक्तं पुरुषस्वरूपं सांख्यदर्शनानुसारमित्यनुमानं कर्तुं शक्यते। सांख्यदर्शनेऽपि पुरुषो व्यापकः, स्वतन्त्रः, ज्ञाता, साक्षी, निष्क्रियश्चेति वर्णितोऽस्ति ।

2. 'अव्यक्तम्' इत्यस्याऽर्थो निर्णयः

'अव्यक्तम्' इति शब्दस्य अर्थनिर्णये सांख्येन चरकेन च सह मतनैक्य वर्तते। चरकोऽव्यक्तात् बुद्धेरुत्पत्तिं वर्णयति **"जायते बुद्धिरव्यक्तात्।"**[21] अत्र 'अव्यक्तम्' इति पदेन सांख्यदर्शनस्य मूलप्रकृतिः निर्दिश्यते। चरकेन पुनः 'अव्यक्तम्' इति पदेन 'क्षेत्रज्ञ' इति वर्णितः-

"इति क्षेत्रं समुद्दिष्टं सर्वमव्यक्तवर्जितम् ।
अव्यक्तमस्य क्षेत्रस्य क्षेत्रज्ञमृषयो विदुः॥"[22]

अत्र 'अव्यक्तम्' इति पदेन पुरुषो निर्दिश्यते। यतोऽचेतना प्रकृतिः क्षेत्रज्ञो भवितुं न शक्नोति। अतः चरकानुसारम् 'अव्यक्तम्' इति पदेन पुरुषः प्रकृतिश्च उभौ वाच्यौ। किन्तु सांख्ये 'अव्यक्तम्' इति पदेन केवलं मूलप्रकृतिर्निर्दिश्यते। 'अव्यक्तम्' इति केवलं मूलप्रकृतिरिति यदि चरकस्य अभिप्रेता भवति तर्हि सः प्रकृत्यादितत्त्वैः सह अव्यक्तं क्षेत्ररूपतया निर्दिशति। किन्तु तेन तत् न कृतम्। पुनः आत्मनः कृते अव्यक्तं, प्रधानं, जीवः इति शब्दाः प्रयुक्ताः- **"चेतनाधातुः... निमित्तमक्षरं कर्ता मन्ता ब्रह्मा विश्वकर्मा विश्वरूपः पुरुषः प्रधानमव्यक्तं जीवो ज्ञः.... चान्तरात्मा चेति।"**[23] चरकसिंहितायं चक्रपाणिः 'अव्यक्तम्' इति पदेन प्रकृतिं पुरुषं च उभौ अवगन्तुमिच्छति **"यद्यपि पञ्चविंशतितत्त्वमयोऽयं पुरुषः सांख्यैरुच्यते, तथापीह प्रकृतिव्यतिरिक्तं चोदासीनं पुरुषमव्यक्तसाधर्म्यादव्यक्तायां प्रकृतावेव प्रक्षिप्य अव्यक्तशब्देनैव गृह्णाति। तेन चतुर्विंशतिकः पुरुषः इत्यविरुद्धम् ।"**[24] गंगाधरमतेन 'अव्यक्तम्' इति पुरुषस्य प्रकृतेश्च संहतरूपमिति – **"अव्यक्तस्तु शक्तिब्रह्मगायत्रीश्वर विद्याविद्यात्मकपञ्च-ब्रह्मपुरुषकाल-क्षेत्रज्ञप्रधानानीत्येतत् समुदायात्मकं समत्रिगुणलक्षणं संहतरूपम्।"**[25]

चरकसंहितायं 'अव्यक्तम्' इति पदेन प्रकृतिपुरुषयोः बोधः सांख्यसिद्धान्तात् सर्वथा भिन्नः। सांख्यानुसारं प्रकृतिः पुरुषश्च सम्पूर्णतया भिन्नौ। पुरुष अपरिणामी शुद्ध उदासीनो निर्गुणश्च। किन्तु प्रकृतिः सदा परिणामिणी प्रकृतेर्महदादिक्रमेण जगत् उत्पद्यते। अविवेकवशात् अचेतनया प्रकृत्या सह पुरुषस्य संयोगो भवति, ततः पुरुषस्य प्रतिबिम्बं प्रकृतिजातबुद्धौ प्रतिबिम्बितं भवति, तदा पुरुषस्य सुखदुःखादीनि च ज्ञायन्ते, वस्तुतः पुरुषो निर्गुण इति। अपरं तु चरकसंहितायां पुरुषः प्रकृतिश्च संहतरूपतया वर्णितौ। पुरुषस्य प्रतिविम्बं प्रकृतौ न पतति। पुरुषः प्रकृतिश्च अभिन्नत्तत्त्वमेव। तत् चरसंहितायां चतुर्विंशतितत्त्वानाम् उल्लेखोऽस्ति।

महाभारतस्य शान्तिपर्वणि जनक-पञ्चशिखसंवादे पुरुषावस्थापन्नप्रकृतेरुल्लखोऽस्ति। चरकसंहितायाम् अपि 'अव्यक्तम्' इति पदेन प्रकृतिपुरुषयोः एकसंहतरूपमुक्तम्। अस्मिन् विषये चरकसंहिता-महाभारतयोः मतसादृश्यं दृश्यते यद्यपि 'अव्यक्तम्' इति पदस्य अर्थविषये मतभेदोऽस्ति तथापि चरकसंहितायां सांख्यदर्शनस्य तत्त्वानि स्वीकृतानीति वक्तुं शक्यते । यदि चरकानुसारं पुरुषः प्रकृतिश्च 'अव्यक्तम्' इति पदेन गृह्येते तर्हि सांख्यवत् पञ्चविंशतितत्त्वानि भवन्तीति।

3. सृष्टिप्रक्रिया

सांख्ये पुरुषाणां भोगार्थम् अपवर्गार्थञ्च पुरुषसान्निध्यात् प्रकृत्या सृष्टिरारभ्यते। चरकानुसारेणापि क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः संयोगवशात् अव्यक्तप्रकृतेरर्थात् क्षेत्रज्ञाधिष्ठितप्रधानात्[26] बुद्धिरुत्पद्यते, बुद्धेरहं भाव इति अहंकार उत्पद्यते, अहंकारात् खादीनि अर्थात् पञ्चतन्मात्राणि सूक्ष्मभूतानि वा उत्पद्यन्ते-

"जायते बुद्धिरव्यक्तात् बुद्ध्याहमिति मन्यते।
परं खादीन्यहंकाराद् उत्पद्यन्ते यथाक्रमम्।।
ततः सम्पूर्णसर्वाङ्गो जातोऽभ्यूदित उच्यते "।।[27]

तैजसाहंकारसंयुक्तात् सात्त्विकाहंकारादेकादशेन्द्रियाणि जायन्ते। तैजसाहंकारसंयुक्तात् तामसाहंकारात् पञ्चमहाभूतानि उत्पद्यन्ते। तैजसाहंकारसहायं विना सात्त्विकहंकारः तामसाहंकारो वा स्रष्टुं न शक्नोतीति गंगाधरस्य मतम् - **"स च त्रिविधः। विषममलिनसत्त्वबहुलः सात्विको वैकारिको नाम। तादृशरजोबहुलस्तैजसो नाम राजसः। तादृशतमोबहुलस्तामसो भूतादिर्नामेति। तत्रादौ भूतादिरहंकारः तत्परं यथाक्रमं क्रमेण सत्वोद्रेकात्सत्त्वबहुलं शब्दमात्रगुणमाकाशमुपादत्ते रजोबहुलं स्पर्शमात्रगुणं वायुम्, सत्त्वरजोबहुलं रूपमात्रगुणं तेजः सत्त्वतमोबहला रसमात्रगुणा आपः, तमोबहुलां गन्धमात्रगुणाञ्च पृभिवीमिति । ततो वैकारिको नामाहंकारस्तैजससहायात् युगपदेव पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि बुद्धिकर्मोभयात्मके मनश्चोपादत्ते।।"**[28] गंगाधरः पञ्चतन्मात्राणि पृथक्तया न स्वीकरोति, तेषाम् उत्पत्तिमपि न वर्णयति। एषा सृष्टिप्रक्रिया सांख्यात्मकसृष्टिप्रक्रियायाः किञ्चित् भिन्नास्ति।

4. 'खादीनि' इत्यस्याऽर्थो निर्णयः

चक्रपाणिदत्तानुसारेण 'खादीनि' इत्यस्यार्थः पञ्चतन्मात्राणि एकादशेन्द्रियाणि च। अव्यक्तात् प्रधानात् वा महान्, महतोऽहंकारः, अहंकारातदेकादशेन्द्रियाणि पञ्चतन्मात्राणि च उत्पद्यन्ते। पञ्चतन्मात्रेभ्यः क्रमेण पञ्चमहाभूतान्युत्पद्यन्ते- **"खादीनीति खादीनि सूक्ष्माणि तन्मात्ररूपाणि, तथैकादशेन्द्रियाणि। यथाक्रममिति यस्मादहंकारादुत्पद्यते तेन क्रमेण। तत्र वैकृतात् सात्विकादहंकारात् तैजससहायादेकाशेन्द्रियाणि भवन्ति। भूतादेस्त्वहंकारात् तामसात् तैजससहायात् पञ्चतन्मात्राणि। तत इति आहंकारिककार्यानन्तरं तन्मात्रेभ्य उत्पन्नस्थूलभूतसम्बन्धात् ॥"**[29]

5. चरकसंहितायां चतुर्विंशतितत्त्वानि

चरसंहितायां चतुर्विंशतितत्त्वानि द्विधा विभज्यन्ते प्रकृतिः विकृतिश्चेति। अव्यक्तम्, बुद्धिः, अहंकारः, पञ्चमहाभूतानि च एतानि अष्टौ प्रकृतयः; पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि, पञ्चकर्मेन्द्रियाणि, मनः, शब्दः, स्पर्शः, रूपं, रसः, गन्धः- एते षोडश विकाराः -

"खादीनि बुद्धिरव्यक्तमहंकारस्तथाऽष्टमः।
भूतप्रकृतिरुद्दिष्टा विकाराश्चैव षोडश ॥
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च।
समनस्काश्च पञ्चार्था विकारा इति संज्ञिताः।।"[30]

सिद्धान्तोऽयम् ईश्वरकृष्णीयसांख्यानुसारेण न सङ्गतः। गंगाधर एतादृशं विभागं स्वीकृतवान्। किन्तु चक्रपाणीदत्तेन एतान् चतुर्विंशतितत्त्वानि विभागत्रयेण विभज्यन्ते- प्रकृतिः, प्रकृतिविकृतिः, केवलं विकृतिरिति। तस्य मतेन अव्यक्तम् मूलप्रकृतिरूपेण व्याख्यातम्। बुद्धिरहंकारः पञ्चतन्मात्राणि च प्रकृतिविकृतयः। एकादशेन्द्रियाणि पञ्चमहाभूतानि च केवलं विकृतयः **"अव्यक्तं मूलप्रकृतिः। .....अत्र चाव्यक्तं प्रकृतिरेव परम्। बुद्ध्यादयस्तु स्वकारणविकृतिरूपा अपि स्वकार्यापेक्षया प्रकृतिरूपा इह प्रकृतित्वेनोक्ताः। विकारान् आह- विकारा इत्यादि। एवशब्दो भिन्नक्रमेऽवधारणे, तेन विकारा एव षोडश, परं न प्रकृतयः।"**[31] चक्रपाणिमहोदयस्य एतादृशः तत्त्वविभागः सांख्यसिद्धान्तानुसारम् इत्यस्मिन् विषये कोऽपि संशयो नास्ति।

चरसंहितायां सत्त्वगुणविषये विशेषविमर्शो नास्ति। तथापि चरको जीवस्य संसारबन्धनस्य विषये उक्तवान् यत् रजस्तमोगुणयुक्तः पुरुषः संसारे चक्रवत् परिभ्रमणं करोति। ये ज्ञानेन अहंकारत्यागं कर्तुं समर्थाः, ते रजस्तमोगुणप्रभावात् मुक्ताः भवन्ति, तेषां संसारबन्धनं नाश्यते-

"रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चक्रवत् परिवर्तते।
येषां द्वन्द्वे परा शक्तिरहंकारपराश्च ये।
उदयप्रलयी तेषां न तेषां ये त्वतोऽन्यथा"।।[32]

अतः सांख्यदर्शननुसारं जीवानां बन्धनमुक्तयोः गुणत्रयस्य प्रभावं चरकेन स्वीकृतमिति वक्तुं शक्यते। तथापि वक्तुं शक्यते यत् सांख्ये गुणत्रयनाशात् मोक्षो भवति किन्तु चरकसंहितायां मोक्षार्थं सत्त्वनाशविषये किमपि न उच्यते।

चरसंहितायां प्रकृतिविषये चर्चा नास्ति। चरसंहितायां 'अव्यक्तम्' इति पदस्य सन्दर्भोऽस्ति। चक्रपाणिमतेन प्रकृतिः पुरुषश्च 'अव्यक्तम्' इति पदेन निर्दिश्येते। पुनः टीकाकारस्य गंगाधरमतेन 'अव्यक्तम्' इति पदेन प्रकृतिपुरुषयोः संहतिरूपत्वं बुध्यते। चरकसंहितायां पुरुषस्य बहुधा चर्चा अस्ति; किन्तु प्रकृतेः विषये विशेषचर्चा नास्ति।

चरकसंहितायां तत्त्वानि द्विधा विभज्यन्ते - व्यक्तं अव्यक्तं च। यदुत्पद्यते प्रलीयते च तदनित्यं तदेव व्यक्तमिति। महदादीनि तत्त्वानि व्यक्तानि उत्पत्तिविलयत्वाभ्याम् अनित्यत्वाच्च। अपरपक्षे 'अव्यक्तम्' इति पदेन कारणान्तररहित्वं सृष्टेरादौ वर्तमानत्वं, नित्यत्त्वम् अचिन्त्यम् अव्ययं सर्वव्यापी शाश्वतः क्षेत्रज्ञ आत्मा इत्यादयोऽर्था निर्दिश्यन्ते-

"तदेव भावादग्राह्यं नित्यत्वं न कुतश्चन।
भावाज् ज्ञेयं तदव्यक्तमचिन्त्यं व्यक्तमन्यथा ॥

अव्यक्तमात्मा क्षेत्रज्ञः शाश्वतो विभुरव्ययः।
तस्मात् यदन्यत् तद्व्यक्तम्"॥[33]

अत्र चक्रपाणिणोक्तं - "**भावादुपत्तिधर्मकात्। तन्नित्यत्वं न कुतोऽपि भावाद् भवति, नित्यं न हि कुतोऽपि भवति। ततश्चात्मा भावं प्रति निरपेक्षत्वात् सर्वेभ्यो भावेभ्योऽप्यग्रे नित्यं सदेव। तच्चैवं भूतं नित्यमव्यक्तं ज्ञेयम्। अचिन्त्यमित्यव्यक्तविशेषणम्। अव्यक्तं च मूलप्रकृतिः। व्यक्तमन्यथेति प्रकृतेरन्यतमं कार्यं महदादिकमनित्यम्। आकाशमपि विकाररूपतयाऽनित्यमेव। उदासीनपुरुषस्तु नित्य एवाव्यक्तशब्देनैव लक्षित इत्युक्तमेव ।**"[34] सांख्यदर्शने तु प्रकृतिमात्रम् 'अव्यक्तम्' इति पदेन निर्दिश्यते। चरकसंहितायान्तु 'अव्यक्तम्' इति पदेन पुरुषः प्रकृतिश्च अन्तर्भवतः। व्यक्ताव्यक्तयोः द्वितीया परिभाषा चरसंहितायाम् उल्लिखिता अस्ति। अस्याः परिभाषानुसारं यत् प्रतीयमानम् इन्द्रियग्राह्यञ्च तत् व्यक्तम्। अपरं तु यत् अतीन्द्रियम् अनुमानग्राह्यं तत् अव्यक्तमिति। द्वितीयपरिभाषानुसारं प्रकृतिः, पुरुषः, मनः, बुद्धिः, अहंकारः, तन्मात्राणि च 'अव्यक्तम्' इति वर्गे अन्तर्भवन्ति-

"व्यक्तमैन्द्रियकं चैव गृह्यते तद् चदिन्द्रियैः।
अतोऽन्यत् पुनरव्यक्तं लिङ्ङ्गग्राह्यमतीन्द्रियम्" ॥[35]

अत्र चक्रपाणिणोक्तं- "**लिङ्गग्राह्यमिति अनुमानग्राह्यम्। अतीन्द्रियमित्यनेन चेन्द्रियग्रहणायोग्यं यत् केनापि शब्दादिलिङ्गेन गृह्यते, न तदव्यक्तम्ः किन्तु यन्नित्यानुमेयं मनोऽहंकारादि तदेवाव्यक्तम्**"॥[36] एतत् न सांख्यसम्मतम्। यतो हि मनः, बुद्धिः, अहंकारः, तन्मात्राणि चेति तत्त्वानि अतीन्द्रियाणि अनुमानग्राह्याणि च सन्ति तथापि सांख्यदर्शन 'अव्यक्तम्' इति पदेन न उल्लिखितानि इति वक्तुं शक्यते।

6. अहंकारः

अहंकारः त्रिविधः सात्त्विको वैकारिको वा, तैजसः राजसो वा, तामसः। तैजसाहंकारसंयुक्तात् सात्त्विकहंकारादेकादशेन्द्रियाणि जायन्ते। तैजसाहंकारसंयुक्तात् तामसाहंकारात् पञ्चमहाभूतानि उत्पद्यन्ते। तैजसाहंकारसहायं विना सात्त्विकहंकारः तामसाहंकारो वा स्रष्टुं न शक्नोति इति ।

7. बुद्धितत्त्वम्

चरकानुसारं शब्दादिविषयान् इन्द्रियाणि निर्विकल्पकतया सामान्यरूपेण गृह्णन्ति। मनसा ते विषया हेयोपादेयरूपतया विचार्य्यन्ते। अथ मनसा कल्पितविषये बुद्धिः प्रवर्तते। बुद्धिः विषयान् ग्रहणीयरूपेण वर्जनीयरूपेण वा निर्णयं कृत्वा निश्चितसिद्धान्तं गृह्णाति। अतो बुद्धेः स्वरूपं निश्चयात्मिकाध्यवसाय इति। सांख्येऽपि बुद्धेः स्वरूपमनुरूपमिति। बुद्ध्या स्थिरीकृत्य विषयं प्रति जीवस्य प्रवृत्तिर्जायते। सर्वाणि कर्माणि बुद्धिपूर्वकं अनुष्ठीयन्ते-

"इन्द्रियेणेन्द्रियार्थों हि समनस्केन गृह्यते।
कल्प्यते मनसा तूर्ध्वं गुणतो दोषतोऽथवा॥
जायते विषये तत्र या बुद्धिर्निश्चयात्मिका।
व्यवस्यति तया वक्तुं कर्तुं वा बुद्धिपूर्वकम्"॥[37]

इन्द्रियाण्याश्रित्य बुद्धितत्त्वस्य वृत्तिविशेषत्वेन ज्ञानमुत्पद्यते, तत्तत् ज्ञानं तत्तद् इन्द्रियपरिभाषया उच्यते। यथा चक्षुर्विषयकज्ञानं चक्षुर्बुद्धिः कर्णविषयकज्ञानं श्रोत्रबुद्धिरिति। एवं मनसा उत्पद्यमानानां भावनादिविषयकज्ञानमेव मनोबुद्धिरिति कथ्यते। अत इन्द्रियभेदेन षड्विधा बुद्धिः। बुद्धौ ज्ञानोत्पत्त्यर्थमात्मेन्द्रियमनोविषयाणाम् एकत्र सान्निध्यमावश्यकम्-

"या यदिन्द्रियमाश्रित्य जन्तोर्बुद्धिः प्रवर्तते।
याति सा तेन निर्देशं मनसा च मनोभवा॥

भेदात् कार्येन्द्रियार्थानां बह्वयो वै बुद्धयः स्मृताः।
आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानामेकैका सन्निकर्षजा"।।[38]

बुद्धितत्त्वत्विषये चरकेण सह सांख्यस्य विशेषो भेदो नास्ति। बुद्धिरुभयत्र अचेतना भवति। तथापि चरसंहितायाम् इन्द्रियभेदेन बुद्धेर्यत् भेदा परिलक्ष्यन्ते ईश्वरकृष्णीयसांख्ये तत् न दृश्यते।

8. पञ्चतन्मात्राणि पञ्चभूतानि च

चरकसंहितानुसारम् आकाशादिपञ्चमहाभूतानां भौतिकगुणाः क्रमशः शब्दः, स्पर्शः, रूपं, रसः, गन्धश्च सन्ति। चरकेणाप्युक्तं यत् उत्तरमहाभूतं पूर्वमहाभूतस्य गुणं वा गृह्णाति। स्थिरता, द्रवता, गतिशीलता, उष्णता, शून्यता च क्रमशः पृथिव्याः, जलस्य, वायोरग्नेः, आकाशस्य च असाधारणानि लक्षणानि इति-

"महाभूतानि खं वायुरग्निरापः क्षितिस्तथा।
शब्दः स्पर्शः रूपं च रसो गन्धश्च तद्गुणाः।।
तेषामेकगुणः पूर्वो गुणवृद्धिः परे परे।
पूर्वः पूर्वगुणश्चैव क्रमशो गुनिषु स्मृतः।।
खरद्रवचलोष्णत्वंग भुजलानिलतेजसाम्।
आकाशस्याप्रतिवातो दृष्टं लिङ्गं यथाक्रमम्"।।[39]

चरसंहितायां पञ्चतन्मात्राणां गुणानामुल्लेखो नास्ति। टीकाकारचक्रपाण्यनुसारं पञ्चभूतानां उत्पत्तिः पञ्चतान्मात्रेभ्य इति। चक्रपाणिव्याख्यानात् चरकसंहितायां येषां महाभूतानां गुणा उल्लिखिताः ते तेषाम् उपादानभूततन्मात्राणामपि गुणा इति अवगन्तु शक्यते। यथा शब्दतन्मात्रस्य गुणः शब्द एव, स्पर्शतन्मात्रस्य गुणौ शब्दस्पर्शौ, रूपतन्मात्रस्य गुणाः शब्दस्पर्शरूपाणि, रसतन्मात्रस्य गुणाः शब्दस्पर्शरूपरसा गन्धतन्मात्रस्य गुणाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाश्चेति। चरकसंहितायामुल्लिखितानां पञ्चभूतानां गुणा अपि ईश्वरकृष्णीयसांख्यदर्शनानुसारम्।

9. इन्द्रियाणि

चरकसंहितानुसारमिन्द्रियाणि भौतिकानि भवन्ति। ईश्वरकृष्णीयसांख्यदर्शनानुसारम् अहंकारादिन्द्रियाणि उत्पद्यन्ते। चरकः कथयति यत् पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च भौतिकानि सन्ति। तत्तेजो-महाभूतस्यासाधारणगुणो रूपं चक्षुरिन्द्रियेण प्रकाश्यते। अतः रूपतन्मात्रात् चक्षुरिन्द्रियमुत्पद्यते। एवं श्रोतेन्द्रियम् शब्दतन्मात्रात्, स्पर्शेन्द्रिम् रूपतन्मात्रात्, रसनेन्द्रियं रसतन्मात्रात्, घ्राणेन्द्रियं गन्धतन्मात्राच्च उत्पद्यन्ते **"खादीनां मध्ये एकैकेनाधिकेन भूतेन युक्तानिरिन्द्रियाणि पञ्च चक्षुरादीनि। एकैकाधिकपदेन पञ्चापि पञ्चभौतिकानि, परं चक्षुषि तेजोऽधिकमित्यादुक्तं सुचयति। यद्यपि सांख्ये अहंकाराणीन्द्रियाणि तथापि मतभेदाद् भौतिकत्वमिन्द्रियाणां ज्ञेयम्। किवा औपाचारिकमेतद् भौतिकत्वमिन्द्रियाणां ज्ञेयम्। उपचारबीजं च यद्गुणभूयिष्ठं यदिन्द्रियं गृह्णाति, तत् तद्भूयिष्ठमित्युच्यते। चक्षुष्तेजो गृह्णाति, तेन तैजसमुच्यते इत्यादि ज्ञेयम्"।**[40]

चरकसंहितायां मनोविषये बहुधा चर्चा अस्ति। यद्यपि आत्मा इन्द्रियाणि ग्राह्यपदार्था एकत्र सहवर्तन्ते, अनेकेन्द्रियाणि अनेकविषयेभ्यः सह युगपत् संयुज्यन्ते च, तथापि सर्वविषयाणां ज्ञानं युगपत् न उत्पद्यते। मनसा संयुक्तेन येन इन्द्रियेण यत् विषयः सम्बद्ध्यते तस्य विषयस्यैव ज्ञानं उत्पद्यते न त्वन्यस्य विषयस्य इति। मनसः सान्निध्यं ज्ञानोत्पत्तिं प्रति कारणं, मनसोऽसान्निध्यं च ज्ञानाभावं प्रति कारणमेति। अतः चरको ज्ञानस्य अस्तित्वं ज्ञानाभावं च मनसो लक्षणत्वेन उक्तवान्। चरकानुसारं मनः अनुपरिमाणमेकञ्च। मनो यदि महत्परिमाणविशिष्टम् अनेकञ्च भवति तर्हि एकस्मिन् काले एव पञ्चज्ञानेन्द्रियैः भिन्नभिन्नविषयेषु ज्ञानमुत्पद्यते, किन्तु तत् न दृश्यते। एतस्मात् कारणात् मनसोऽनुत्वमेकत्वं च स्वीकृतं चरकानुसारम्-

"लक्षणं मनसो ज्ञानस्याभावो भाव एव च।

सति ह्यात्मेन्द्रियार्थानां सन्निकर्षे न वर्तते ।।

वैवृत्यान्मनसो ज्ञानं सान्निध्यात्तच्च वर्तते।

अनुत्वमथ चैकत्वं द्वौ गुणी मनसः स्मृतौ।।"[41]

अत्र मनसः स्वरूपम् कर्म च न्यायानुसारमिति। ईश्वरकृष्णीयसांख्येऽपि मनोऽव्यापकम् किन्तु चरकवदनुपरिमाणविशिष्टं न, घटवत् मध्यमपरिमाणविशिष्टमिति ।

मन इन्द्रियाणाम् अधिष्ठाता। मनः इन्द्रियाणां परिचालको नियन्त्रयकश्च। पुनो शब्दादिविषयालोचनमपि मनसः कर्म अस्ति। मनः शब्दादिविषयम् हेयत्वेन उपादेयत्त्वेन वा विचारयति। मनसा विचाराद् अनन्तरं बुद्धेः कर्मारभ्यते। निश्चयात्मकसिद्धान्तग्रहणं बुद्धेः कर्म भवति। अतः द्रष्टव्यं यत् महर्षिचरकेण सांख्यसिद्धान्तः स्वीकृतः, तथापि चरकसिद्धान्त-सांख्यसिद्धान्तयोः किञ्चित् भेदो दृश्यते। सांख्यदर्शने बाह्यज्ञानेन्द्रियाणि विषयान् निर्वकल्पत्वेन गृह्णन्तिः मनः तान् विशेषतया हेयोपादेयरूपेण विचारं करोति; तदा अहंकारेण 'मम कृते एते विषयाः' इत्यादिरूपत्वेन गृहीतम्। ततो बुद्धिः निश्चयात्मकसिद्धान्तग्रहणं करोति। किन्तु चरकसंहितायां तु यद्यपि विषयानां निर्विकल्पत्वेन ग्रहणं बाहोन्द्रियविषयः, तथापि तैः इन्द्रियैः सह मनसः सम्बन्धात् तत् मनसः कर्मत्वेन उक्तम्। पुनः चरकसंहितायां ज्ञानोत्पत्तावहंकारस्य व्यापारत्वं न उल्लिखितम्। अहंकारस्य व्यापारत्वं बुद्धिव्यापारे अन्तर्भुक्तं भवति। मनसः कर्मणोऽनन्तरं मनसा कल्पितविषये बुद्धिः प्रवर्तते-

"इन्द्रियाभिग्रहः कर्म मनसः स्वस्य निग्रहः।

ऊहो विचारश्च, ततः परं बुद्धिः प्रवर्तते"।।[42]

अत्र चक्रपाणिनोक्तम्- **"अत्रोहः आलोचनज्ञानं निर्विकल्पम्, विचारो हेयोपादेयतया विकल्पनम्। ऊहस्तु यद्यपि बाह्यचक्षुरादि कर्म, तत्रापि मनोऽधिष्ठानमस्तीति मनः कर्मतयोक्तः। अहंकारव्यापारश्चाभिमननमिहानुक्तोऽपि बुद्धिव्यापारेणैव सुचितो ज्ञेयः। बुद्धिर्हि त्यजाम्येनमुपाददामीति वा अध्यावसायं कुर्वती अहंकाराभीमत एव विषये भवति। तेन बुद्धिव्यापारेणैवाहोङ्कारव्यापारोऽपि गृह्यते। बुद्धौ हि सर्वकरणव्यापारर्पणं भवति"।।**[43]

उपसंहृतिः -

अतः चरकसंहितायां यथोक्तं पुरुषस्वरूपं सांख्यदर्शनानुसारमित्यनुमानं कर्तुं शक्यते। सांख्यदर्शनेऽपि पुरुषो व्यापकः, स्वतन्त्रः, ज्ञाता, साक्षी, निष्क्रियश्चेति वर्णितोऽस्ति। चरकसंहितायं 'अव्यक्तम्' इति पदेन प्रकृतिपुरुषयोः बोधः सांख्यसिद्धान्तात् सर्वथा भिन्नः। सांख्यानुसारं प्रकृतिः पुरुषश्च सम्पूर्णतया भिन्नौ। चरकसंहितायाम् अपि 'अव्यक्तम्' इति पदेन प्रकृतिपुरुषयोः एकसंहतरूपमुक्तम्। अस्मिन् विषये चरकसंहिता-महाभारतयोः मतसादृश्यं दृश्यते यद्यपि 'अव्यक्तम्' इति पदस्य अर्थविषये मतभेदोऽस्ति तथापि चरकसंहितायां सांख्यदर्शनस्य तत्त्वानि स्वीकृतानीति वक्तुं शक्यते । यदि चरकानुसारं पुरुषः प्रकृतिश्च 'अव्यक्तम्' इति पदेन गृह्येते तर्हि सांख्यवत् पञ्चविंशतितत्त्वानि भवन्तीति। अतः सांख्यदर्शननुसारं जीवानां बन्धनमुक्तयोः गुणत्रयस्य प्रभावं चरकेन स्वीकृतमिति वक्तुं शक्यते। तथापि वक्तुं शक्यते यत् सांख्ये गुणत्रयनाशात् मोक्षो भवति। किन्तु चरकसंहितायां मोक्षार्थं सत्त्वनाशविषये किमपि न उच्यते । चरसंहितायां प्रकृतिविषये चर्चा नास्ति । बुद्धितत्त्वत्विषये चरकेण सह सांख्यस्य विशेषो भेदो नास्ति। बुद्धिरुभयत्र अचेतना भवति। तथापि चरसंहितायाम् इन्द्रियभेदेन बुद्धेर्यत् भेदा परिलक्ष्यन्ते ईश्वरकृष्णीयसांख्ये तत् न दृश्यते। चरसंहितायां पञ्चतन्मात्राणां गुणानामुल्लेखो नास्ति। चरसंहितायां पञ्चतन्मात्राणां गुणानामुल्लेखो नास्ति। टीकाकारचक्रपाण्यनुसारं पञ्चभूतानां उत्पत्तिः पञ्चतान्मात्रेभ्य इति। चरकसंहितायामुल्लिखितानां पञ्चभूतानां गुणा अपि ईश्वरकृष्णीयसांख्यदर्शनानुसारम्। अत्र मनसः स्वरूपम् कर्म च न्यायानुसारमिति। ईश्वरकृष्णीयसांख्येऽपि मनोऽव्यापकम् किन्तु चरकवदनुपरिमाणविशिष्टं न, घटवत् मध्यमपरिमाणविशिष्टमिति ।

सन्दर्भाः -

1. *चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/16
2. गङ्गाधरकृता कल्पतरुटीका (*चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/16)
3. *चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/16
4. गङ्गाधरकृता कल्पतरु-टीका (*चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/16)
5. चरकसंहिता, शारीराध्यायः – 1/17, 63-64
6. चक्रपाणिकृता आयुर्वेददीपिका- टीका (*चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/63-64)
7. गङ्गाधरकृता कल्पतरु-टीका (*चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/17)
8. *चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/53
9. तत्रैव, 1/60-61
10. *चरकसंहिता*, शारीराध्यायः, 5/5
11. *चरकसंहिता*, शारीराध्यायः, 1/35
12. तत्रैव, 1/53
13. तत्रैव, 1/37-38
14. तत्रैव, 1/82
15. तत्रैव, 1/36
16. *चरकसंहिता*, शारीराध्यायः, 1/95
17. तत्रैव, 1/54
18. The self is itself without consciousness. Consciousness can only come to it through its connection with the sense organs and manas.- History of Indian Philosophy- Vol.-2, P.- 214, S. N. Dasgupta.
19. *चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/56-57
20. तत्रैव, 1/75-76
21. तत्रैव, 1/66
22. *चरकसंहिता*, शारीराध्यायः, 1/65
23. तत्रैव, 4/8
24. तत्रैव, 1/17
25. गङ्गाधरकृता कल्पतरु-टीका (*चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/63)
26. यदिदमव्यक्तं कालानुप्रविष्टक्षेत्रज्ञाधिष्ठितप्रधानत्रिगुणसाम्यलक्षणं- गङ्गाधरकृता कल्पतरु-टीका (*चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/66)
27. *चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/66-6
28. गङ्गाधरकृता कल्पतरु-टीका (*चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/66-67)
29. चक्रपाणिकृता आयुर्वेददीपिका- टीका (*चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/66-67
30. चरकसंहिता, शारीराध्यायः – 1/63-64
31. चक्रपाणिकृता आयुर्वेददीपिका-टीका (*चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/63-64)
32. *चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/68-69

33. तत्रैव, 1/60-61

34. चक्रपाणिकृता आयुर्वेददीपिका- टीका (*चरकसंहिता*, शारीराध्यायः- 1/60-61)

35. *चरकसंहिता*, शारीराध्यायः 1/62

36. चक्रपाणिकृता आयुर्वेददीपिका- टीका (*चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/62)

37. *चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/22-23

38. तत्रैव, 1/32-33

39. तत्रैव, 1/27-29

40. चक्रपाणिकृता आयुर्वेददीपिका- टीका (*चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/24)

41. *चरकसंहिता*, शारीराध्यायः 1/18-1

42. तत्रैव, 1/21

43. चक्रपाणिकृता आयुर्वेददीपिका- टीका (*चरकसंहिता*, शारीराध्यायः – 1/21)

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 141-145
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ऑनलाइन संगीत शिक्षा प्राप्त करने का उपयुक्त समय : भारतीय शास्त्रीय संगीत के संदर्भ में एक अध्ययन

Savita Gill
Research Scholar
Music Vocal, PGGCG – 11, CHD.

सारांश :

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि भारतीय शास्त्रीय संगीत के संदर्भ में ऑनलाइन संगीत शिक्षा किस अवस्था में प्रभावी सिद्ध होती है और किन परिस्थितियों में इसकी सीमाएँ सामने आती हैं। भारतीय संगीत में स्वर, ताल, श्वास–नियंत्रण, पिच तथा अभ्यास–पद्धति जैसे अनेक जटिल और सूक्ष्म तत्व निहित होते हैं, जिनकी शिक्षा परंपरागत रूप से प्रत्यक्ष गुरु–शिष्य परंपरा में अधिक सफल मानी गई है। विशेष रूप से 'सा' का अभ्यास, श्वास भरने और छोडध्ने की विधि, स्वर–लगाव तथा पिच की पहचान जैसे आधारभूत पक्ष ऐसे हैं, जिन्हें प्रारंभिक स्तर पर ऑनलाइन माध्यम से समझना कठिन हो जाता है।

अध्ययन यह दर्शाता है कि ऑनलाइन संगीत शिक्षा के दौरान नेटवर्क समस्याओं और ऑडियो लैग के कारण स्वर–शुद्धता और ताल–बोध में बाधा उत्पन्न होती है। बंदिश, आलाप और तान में मात्रा–बोध, सम, ताली और खाली की स्पष्ट समझ न होने पर शिक्षार्थी भ्रमित हो सकता है। यह समस्या विशेष रूप से पूर्णतः नए शिक्षार्थियों (Beginners) के लिए अधिक गंभीर होती है, क्योंकि उन्हें निरंतर सहगायन और प्रत्यक्ष मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है, जो ऑनलाइन माध्यम में सीमित हो जाता है।

हालाँकि, यदि शिक्षार्थी को पहले से स्वर, ताल और अभ्यास की बुनियादी जानकारी हो, तो ऑनलाइन संगीत शिक्षा अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो सकती है। इस अवस्था में विद्यार्थी घर पर स्वतंत्र अभ्यास कर सकता है, जिससे आत्म–अध्ययन की प्रवृत्ति विकसित होती है तथा गुरु और शिष्य दोनों का समय एवं संसाधन सुरक्षित रहता है। अतः यह अध्ययन निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि ऑनलाइन संगीत शिक्षा आरंभिक प्रशिक्षण का विकल्प नहीं, बल्कि पूर्व–प्रशिक्षण के पश्चात् एक सहायक और प्रभावी माध्यम है।

मुख्य शब्द :

1. ऑनलाइन संगीत शिक्षा।
2. भारतीय शास्त्रीय संगीत।
3. स्वर एवं ताल प्रशिक्षण।
4. गुरु–शिष्य परंपरा।

5. आधारभूत संगीत ज्ञान।

इक्कीसवीं सदी में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन किए हैं। आज शिक्षा केवल कक्षा और संस्थान तक सीमित न रहकर डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से वैश्विक स्तर पर सुलभ हो गई है। संगीत शिक्षा भी इस परिवर्तन से प्रभावित हुई है और ऑनलाइन माध्यम द्वारा संगीत सीखने की प्रवृत्ति निरंतर बढ़ रही है। विशेष रूप से कोविड–19 महामारी के पश्चात् ऑनलाइन संगीत शिक्षा को एक वैकल्पिक और आवश्यक माध्यम के रूप में अपनाया गया।

परंतु भारतीय शास्त्रीय संगीत, जो कि सदियों से गुरु–शिष्य परंपरा पर आधारित रहा है, उसकी प्रकृति अत्यंत सूक्ष्म, अनुभवजन्य और अनुशासनात्मक है। ऐसे में यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या भारतीय शास्त्रीय संगीत को ऑनलाइन माध्यम से प्रारंभिक स्तर से सिखाया जा सकता है, अथवा इसके लिए किसी पूर्व प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। यह शोध–पत्र इसी प्रश्न का विश्लेषण करता है और यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि ऑनलाइन संगीत शिक्षा प्राप्त करने का उपयुक्त समय कौन–सा है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत की शैक्षिक परंपरा :

भारतीय शास्त्रीय संगीत की शिक्षा परंपरागत रूप से गुरु–शिष्य परंपरा के माध्यम से दी जाती रही है। इस परंपरा में शिष्य गुरु के सान्निध्य में रहकर न केवल संगीत की तकनीक सीखता है, बल्कि संगीत की भावना, अनुशासन, साधना और जीवन–मूल्यों को भी आत्मसात करता है। संगीत यहाँ केवल कला नहीं, बल्कि साधना और तपस्या का रूप है।

गुरु द्वारा शिष्य को प्रत्यक्ष रूप से स्वर, ताल, लय और भाव का अनुभव कराया जाता है। शिष्य गुरु के स्वर का अनुकरण करता है, उनकी श्वास–प्रणाली, उच्चारण और अभ्यास पद्धति को प्रत्यक्ष देखकर सीखता है। यह प्रत्यक्षता भारतीय शास्त्रीय संगीत शिक्षा की आत्मा मानी जाती है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में 'सा' का महत्व :

भारतीय शास्त्रीय संगीत में 'सा' को आधार स्वर माना जाता है। सम्पूर्ण संगीत संरचना इसी स्वर पर आधारित होती है। 'सा' का अभ्यास केवल स्वर निकालने तक सीमित नहीं होता, बल्कि यह श्वास–नियंत्रण, स्वर–स्थिरता और शरीर की आंतरिक ऊर्जा से जुड़ा होता है।

'सा' का अभ्यास करते समय यह सिखाया जाता है कि श्वास पेट से कैसे ली जाए, कितनी श्वास भरनी है, श्वास को कितनी देर तक रोकना है और किस प्रकार नियंत्रित ढंग से बाहर छोड़ना है। इसके साथ–साथ स्वर को एक निश्चित स्थान पर स्थिर रखना भी आवश्यक होता है। यह समस्त प्रक्रिया शारीरिक अनुभव और प्रत्यक्ष निरीक्षण पर आधारित होती है, जिसे केवल मौखिक निर्देशों द्वारा समझ पाना कठिन होता है।

ऑनलाइन माध्यम में 'सा' अभ्यास की जटिलता :

ऑनलाइन संगीत शिक्षा में 'सा' जैसे आधारभूत अभ्यास को सिखाना अत्यंत चुनौतीपूर्ण हो जाता है। शिक्षक छात्र की श्वास–प्रणाली, शरीर की मुद्रा और स्वर–स्थिरता को प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख पाता। छात्र भी यह नहीं समझ पाता कि वह श्वास सही ढंग से ले रहा है या नहीं।

इसके अतिरिक्त, माइक्रोफोन और स्पीकर की सीमाओं के कारण स्वर की वास्तविक गुणवत्ता परिवर्तित हो जाती है। इससे छात्र को अपने स्वर की शुद्धता का सही आकलन नहीं हो पाता। इस कारण प्रारंभिक स्तर

पर ऑनलाइन माध्यम से 'सा' का अभ्यास प्रभावी सिद्ध नहीं होता।

स्वर-लगाव और पिच की समझ :

भारतीय शास्त्रीय संगीत में स्वर–लगाव अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। कौन–सा स्वर कितना ऊँचा या नीचा लगेगा, यह उसकी पिच पर निर्भर करता है। प्रत्येक व्यक्ति की प्राकृतिक पिच भिन्न होती है, जिसे पहचानने में गुरु की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

प्रारंभिक स्तर पर छात्र यह नहीं जान पाता कि स्वर सही स्थान पर है या नहीं। गुरु प्रत्यक्ष रूप से सुनकर और देखकर छात्र को सुधार करता है। ऑनलाइन माध्यम में नेटवर्क समस्याओं और ऑडियो गुणवत्ता की कमी के कारण यह प्रक्रिया बाधित हो जाती है।

नेटवर्क और ऑडियो गुणवत्ता की समस्या :

ऑनलाइन संगीत शिक्षा की एक प्रमुख सीमा तकनीकी समस्याएँ हैं। इंटरनेट नेटवर्क में अस्थिरता, ऑडियो लैग और ध्वनि विकृति के कारण शिक्षक और छात्र के बीच संप्रेषण प्रभावित होता है। कई बार स्वर में देरी से आवाज़ पहुँचती है, जिससे ताल और लय का संतुलन बिगड़ जाता है।

इन समस्याओं के कारण छात्र यह नहीं समझ पाता कि त्रुटि उसके स्वर में है या तकनीकी माध्यम में। यह भ्रम सीखने की प्रक्रिया को धीमा कर देता है।

गायन और बंदिश की शास्त्रीय संरचना :

भारतीय शास्त्रीय संगीत में बंदिश का विशेष स्थान है। बंदिश केवल शब्दों का समूह नहीं होती, बल्कि स्वर और ताल का संतुलित संयोजन होती है। किसी भी बंदिश को गाने के लिए यह समझना आवश्यक होता है कि वह किस मात्रा से प्रारंभ हो रही है और किस मात्रा पर समाप्त हो रही है।

इसके साथ–साथ आलाप और तान में भी स्वर और ताल का सूक्ष्म संतुलन आवश्यक होता है, जिसे प्रत्यक्ष अभ्यास द्वारा ही भली–भांति सीखा जा सकता है।

ताल-बोध और ऑनलाइन शिक्षा :

ताल भारतीय शास्त्रीय संगीत की आत्मा है। ताली, खाली और सम की स्पष्ट समझ के बिना संगीत अधूरा माना जाता है। प्रारंभिक स्तर के विद्यार्थियों के लिए ताल को समझना स्वयं में एक चुनौती होती है।

ऑनलाइन माध्यम में ऑडियो लैग के कारण ताल की सही अनुभूति नहीं हो पाती। कई बार ताली और खाली का स्थान स्पष्ट नहीं सुनाई देता, जिससे छात्र ताल में भ्रमित हो जाता है।

शब्द और स्वर का ताल में रख-रखाव :

शास्त्रीय संगीत में शब्दों और स्वरों का ताल में सही स्थान पर होना अत्यंत आवश्यक है। यदि यह संतुलन बिगड़ जाए तो रचना की शुद्धता समाप्त हो जाती है। ऑनलाइन माध्यम में यह सूक्ष्मता कई बार स्पष्ट नहीं हो पाती, विशेषकर उन छात्रों के लिए जिनकी ताल की बुनियादी समझ विकसित नहीं हुई होती।

नवशिक्षार्थियों के लिए ऑनलाइन शिक्षा की सीमाएँ :

पूर्णतः नए विद्यार्थियों के लिए भारतीय शास्त्रीय संगीत को ऑनलाइन माध्यम से सीखना अत्यंत कठिन सिद्ध होता है। ऐसे विद्यार्थियों को निरंतर सहगायन और प्रत्यक्ष मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है।

ऑनलाइन माध्यम में एक साथ गाना या बजाना संभव नहीं होता। प्रत्येक छात्र को अलग–अलग गाना

पड़ता है, जिससे शुरुआती स्तर पर आवश्यक सहयोग और आत्मविश्वास नहीं बन पाता।

सहगायन का महत्व :

प्रारंभिक स्तर पर छात्र गुरु या सहपाठी के साथ–साथ गाकर सीखता है। इससे उसे सही स्वर, ताल और लय का अनुभव होता है। यह सहगायन ऑनलाइन माध्यम में संभव नहीं हो पाता, जिससे सीखने की प्रक्रिया प्रभावित होती है।

ऑनलाइन शिक्षा और शौकिया संगीत :

यदि उद्देश्य केवल फिल्मी गीत, लोकगीत या शौक के रूप में संगीत सीखना हो, तो ऑनलाइन माध्यम प्रारंभ से ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इन गीतों में शास्त्रीय संगीत की जटिलताएँ अपेक्षाकृत कम होती हैं और तकनीकी त्रुटियों का प्रभाव भी सीमित रहता है।

पूर्व प्रशिक्षण के पश्चात् ऑनलाइन शिक्षा :

जब विद्यार्थी को पहले से स्वर, ताल और अभ्यास की बुनियादी जानकारी प्राप्त हो जाती है, तब ऑनलाइन संगीत शिक्षा अत्यंत प्रभावी सिद्ध होती है। ऐसे विद्यार्थी शिक्षक द्वारा प्रस्तुत सामग्री को समझने और आत्मसात करने में सक्षम होते हैं।

आत्म–अध्ययन की भूमिका :

ऑनलाइन शिक्षा में आत्म–अध्ययन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। विद्यार्थी घर पर बैठकर स्वतंत्र रूप से अभ्यास कर सकता है, रिकॉर्डिंग सुन सकता है और अपनी त्रुटियों को स्वयं पहचान सकता है। यह प्रक्रिया संगीत साधना को और अधिक सुदृढ़ बनाती है।

समय और संसाधनों की बचत :

ऑनलाइन संगीत शिक्षा से गुरु और शिष्य दोनों का समय और यात्रा व्यय बचता है। दूर–दराज़ क्षेत्रों में रहने वाले विद्यार्थी भी योग्य गुरु से शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं, जो कि ऑनलाइन माध्यम की एक बड़ी उपलब्धि है।

प्रत्यक्ष कक्षाओं की आवश्यकता :

हालाँकि ऑनलाइन शिक्षा के अनेक लाभ हैं, फिर भी समय–समय पर प्रत्यक्ष कक्षाओं की आवश्यकता बनी रहती है। प्रत्यक्ष कक्षाओं के माध्यम से विद्यार्थी अपनी तकनीकी त्रुटियों को सुधार सकता है और संगीत की सूक्ष्मताओं को गहराई से समझ सकता है।

निष्कर्ष :

इस विस्तृत अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि ऑनलाइन संगीत शिक्षा भारतीय शास्त्रीय संगीत के लिए आरंभिक प्रशिक्षण का विकल्प नहीं है। यह माध्यम उन विद्यार्थियों के लिए अधिक उपयुक्त है, जिन्हें पहले से स्वर, ताल और अभ्यास की बुनियादी जानकारी प्राप्त हो चुकी हो।

अतः ऑनलाइन संगीत शिक्षा प्राप्त करने का सही समय वही है, जब विद्यार्थी संगीत की मूलभूत संरचना से परिचित हो चुका हो और उसे आत्म–अध्ययन की क्षमता विकसित हो गई हो।

संदर्भ सूची :

1. शर्मा, पं. विष्णु नारायण. भारतीय संगीत का इतिहास. नई दिल्ली : संगीत कार्यालय, 2015।

2. भटनागर, डॉ. प्रीति. भारतीय शास्त्रीय संगीत : सिद्धांत एवं व्यवहार. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2018।
3. त्रिपाठी, डॉ. रामशंकर. गुरु–शिष्य परंपरा और भारतीय संगीत. वाराणसी : संगीत सदन, 2016।
4. दत्त, प्रो. सुनील. संगीत शिक्षण पद्धतियाँ. नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट, 2017।
5. जोशी, पं. वसंत. रियाज़ और स्वर साधना. मुंबई : लोकप्रिय प्रकाशन, 2014।
6. Mishra, S. (2020). Online Music Education in India : Challenges and Opportunities. International Journal of Music Education, 38(2), 245–252.
7. Patel, R. & Singh, A. (2021). Impact of Digital Platforms on Classical Music Learning. Journal of Performing Arts, 5(1), 34–41.
8. UNESCO. (2019). Music Education in the Digital Age. Paris : UNESCO Publishing.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 146-149
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी सिनेमा में चित्रित नारी जीवन

Dr. Salini. C
Associate Professor, Dept of Hindi
Govt. College For Women Vazhutacaud Tvpm

बीसवीं सदी का सृजन और अभिव्यक्ति के माध्यमों में सबसे श्रेष्ठ एवं शक्तिशाली माध्यम है 'सिनेमा'। विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर आधारित होने के कारण मनोरंजन और जनसंचार के रूप में इसका विकास बड़ी तेजी से होगा। आधुनिक युग में मानव के मन और बुद्धि को आगे बढ़ाने का सबसे सरल एवं सहज माध्यम है 'सिनेमा'। मानव मन में सिनेमा एक तरफ की चाह पैदा करती है साथ ही साथ अपनी आँखों देखी सुंदर दृश्यों को अंकित कर देती है। इसलिए कहते हैं कि सिनेमा मनोरंजन का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। सिनेमा के अन्य अनेक पर्यायवाची शब्द हैं – चलचित्र, छायाचित्र, मोशन पिक्चर, मूवी और फिल्म आदि। इनमें से सिनेमा शब्द ही चलचित्र के व्यापक एवं विशाल अर्थ के रूप में प्रयुक्त होता है।

नारी सदा से ही पूजनीय एवं वंदनीय रही है। नारी सम्मान को हमारी भारतीय संस्कृति में बहुत बड़ा महत्व दिया गया है। नारी सम्मान से संबंधित एक श्लोक है –

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'।

इसका मतलब जो है – जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता का निवास होता है। जहाँ नारी की सम्मान एवं आदर होती है वहाँ उनकी जरूरतों की पूर्ति होती है। उस स्थान, समाज तथा परिवार पर देवताओं प्रसन्न रहते हैं। जहाँ ऐसा नहीं होता, और नारी के प्रति तिरस्कारमय व्यवहार किया जाता है तो वहाँ देवताओं की कृपा कटाक्ष नहीं मिलती। इसके सिवा वहाँ संपन्न किये गये कार्य सफल नहीं होता।

हमारे देश में नारी की पूजा करते थे, उसे शक्ति की देवी भी समझते थे। हमारी प्राचीन संस्कृति में मातृशक्ति के प्रति असीम ध्यान देती थी लेकिन आधुनिक काल में इस स्थिति में कुछ बदलाव आने लगे। समाज में इनकी हालत बहुत शोचनीय रहा। कभी–कभी दहेज के कारण, शिक्षा के कारण और अनमेल एवं बेमेल विवाह के कारण नारी को सदा शोषण करते रहते हैं। आज भी ऐसी अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। घरेलू हिंसा की प्रताड़ना स्वयं सहन करनी पड़ती है। इसके साथ पुरुष के मानसिक दबाव, आस्तिकी एवं तुच्छ बातों से भी स्त्री को मानसिक यातना झेलनी पड़ती है। सदियों तक उन्हें अशिक्षा के अंधेरे में बेसहारा बनकर सहना पड़ा। घर–गृहस्थी एवं अपनी परिवारवालों की देख–भाल अपना कर्तव्य मानते हुए अपनी पूरी जिन्दगी घर की चार दीवारों पर बंद करने लगी। उन्हें अपनी व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास दिखाने का अवसर नहीं मिला। कहना चाहती हूँ कि उस समय स्त्री अपने घर की चार दीवारों में बँधे हुए और भोगविलास की वस्तु के समान अपनी जीवन

बिताती है। केवल पुरुष की भोगविलास के रूप में जीती थी। आज भी स्त्रियों की हालत में कोई बदलाव नहीं आया। पुरुष वर्ग उन्हें अपनी अधिकार में दबाना चाहते हैं।

लेकिन आधुनिक युग में कुछ माता–पिता ने अपनी लड़कियों को शिक्षित करने में रुचि लेते हैं। उन्हें अपने पैरों पर खड़ा रहने का अवसर देता है। विदेश में जाकर पढ़ने का मौका भी देता है। साथ ही आत्मविश्वास जगाने का अवसर भी देती है। शिक्षा के माध्यम से स्त्रियाँ सभी क्षेत्रों में काम करने के लिए तैयार हो जाती है। पुरुष के समान शासन कार्य में मौजूद हैं आज की स्त्री। पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर वे काम करती है। एक सच्चा कलाकार के रूप में स्त्री आगे बढ़ी। फिल्म के क्षेत्र में भी वे अपना अलग पहचान रख दिया। एक अभिनेत्री के रूप में, नृत्यकार के रूप में, गायक के रूप में, निर्देशक के रूप में, और निर्माता के रूप में आदि अन्य अनेक क्षेत्रों में भी नारी आगे बढ़कर अपनी पूरी दायित्व को कर्मनिष्ठ होकर स्वयं निभाती है।

हिंदी सिनेमा के क्षेत्र में भी स्त्री का योगदान महत्वपूर्ण है। भारतीय हिंदी सिनेमा के सौ वर्षों के विशाल फलक पर नारी अपनी समस्याओं के साथ खड़ी हुई है। पिछले पचास वर्षों की फिल्मों पर दृष्टि डालें तो नारी अधिकतर रूप में एक सजावटी चीज के समान प्रयुक्त की गई है। एक तो किसी एक नायिका के रूप में खूबसूरत होना, नृत्य और संगीत में प्रवीण होना और लुभावनी अदाओं का होना, निर्धारित शर्त भी मानी जाती थी। अधिकतर हिंदी सिनेमा में प्रेमकथाएँ बनती थीं और उनमें नायिका का लोकलुभावन रूप ही प्रस्तुत किया जाता है। लेकिन पौराणिक और ऐतिहासिक फिल्मों की बात दूसरी थी। उनमें नायिकाओं की तेजस्वी तथा शौर्यपूर्ण रूप नहीं लाया गया है। वे किसी दूसरे धरातल पर नजर आती है। उस समय में सामाजिक सिनेमा बनने लगी। स्त्रियों को बेटी, बहन, पत्नी तथा माँ के रूप में त्याग और बलिदान की मूर्ति बनाना ही उनका लक्ष्य रहा। उन सिनेमा में आँसू बहाती हुई नायिकाएँ दर्शकों की सहानुभूति का पात्र बन सकती है।

उस समय स्त्री भागीदारी को लेकर हमेशा उदासीन रहा। लेकिन आज उस स्थिति में कुछ परिवर्तन आया। स्त्रियाँ पहले सशक्त और प्रतिभाशाली नहीं थी। बस किनारे में खड़ी हुई और अपनी बारी के इंतजार में भी थे। जल्दी ही उन्हें यह पता चलता है कि लाइन में खड़े होकर मौका भी नहीं मिलेगा। लिहाजा वह भीड़ को धक्का देकर आगे बढ़ने पर विश्वास हुई। सिनेमा के इतिहास को पलट कर देखें तो सौ वर्षों के लम्बे समय में आवश्यक प्रयोजन बिंदु होते हुए भी स्त्रियाँ हाशिए पर रही। मतलब है कि पुरुषों ने उन्हें हमेशा के लिए कमजोर और दुर्बल समझा था। उनकी कार्यक्षमता को कम करके नीचे दिखा दिया। ऐसा भी नहीं हिन्दी में स्त्री समस्या पर केन्द्रित फिल्मों का निर्माण भी नहीं हुआ। अधिकतर हिन्दी सिनेमा में स्त्री को एक आदर्शवादी और ममतामयी माँ, बहन, भाभी, पत्नी और प्रेमिका के रूप में चित्रित किया है। जो विरोध यानी संघर्ष करती है तो क्षण भर के लिए।

सवाक फिल्मों के शुरुआत में लगभग 1980 तक ऐसी फिल्मों का निर्माण हुआ, जिसमें स्त्री अपने अधिकार और अस्मिता के लिए खड़ी हो जाती है। ऐसी सिनेमा में चित्रलेखा, महल, दहेज, बिराज बहू, मदर इंडिया, सुजाता, मैं चुप रहूँगी, बंदिनी, ममता, साहब बीबी और गुलाम, फकीरा, परिणीता, उमराव जान, आदि कुछ महत्वपूर्ण है। इन सिनेमा में अभिनय करनेवाले नायिकाएँ भी जनमानस को छूने लगी। उस समय के मानव मन को झकझोरने नायिकाओं के नाम इस प्रकार के हैं – मधुबाला, वैजयंतीमाला, मुमताज, वहीदा रहमान, नरगिस, तनुजा दत्त, शशि कपूर, हेमामालिनी और श्रीदेवी आदि प्रमुख है।

1980 के बाद स्त्री चेतना से युक्त लेंस फिल्मों का निर्माण हुआ। इसमें बहुत भूमिका निभानेवाले हैं समानान्तर सिनेमा। ये समानान्तर सिनेमा में स्त्री की उन्मुक्त भावनाओं को नया आसमान दे दिया। स्त्रियाँ अपनी आजादी के नये रंग दिखाना शुरू किया। अपने अधिकारों की नई सूची में उनके हाथ लग गयी। ऐसे सिनेमा का नाम इस प्रकार के हैं – मंडी, बाजार, मिर्च मसाला, प्रतिघात और रिहाई आदि। 1990 के बाद का हिन्दी सिनेमा भूमंडलीकरण और उदारीकरण के प्रभाव से तेजी से बदला हुआ है। नये निर्देशकों ने अपनी नई विचार धाराओं के द्वारा हिन्दी सिनेमा को तमाम साहित्यिक विषयों से जोड़ दिया। हिन्दी सिनेमा और साहित्य के बीच में ही एक सामंजस्य स्थापित हुआ है। इसलिए हिन्दी सिनेमा में स्त्री विमर्श का स्पेस (Space) हमेशा मिलता रहा। दिशा, दर्पण, बवंडर, गॉड मदर, फायर, मातृभूमि, चमेली, जज्बा, चाँदनी बार, इश्कध्यिा, जैसी सिनेमा में स्त्री विमर्श का एक नया आयाम खुला दिया है। इतना ही नहीं इन सिनेमा में स्त्री की बदलती छवि को बड़ी बारीकी के साथ प्रस्तुत किया गया है, जैसे – डेड इशकिया, हाइवे, गुलाब गैंग, क्वीन (Queen), रिवॉल्वर रानी, मर्दानी, कांची, मेरी कॉम, रंग रसिया, आदि।

इनमें से कुछ स्त्री केन्द्रित फिल्मों का एक छोटा–सा परिचय यहाँ दिया गया है –

1. **डेढ़ इश्किया :**

ये तो तीन महिलाओं की जीवन की कहानी है। माधुरी दीक्षित और हुमा कुरैशी ने पर्दे पर जिस चरित्र का जीवन दर्शावले नायिकाएँ हैं। इन दोनों ने पूरी फिल्म में उन्मुक्त होती स्त्री के जीवन के तमाम पहलुओं को बहुत खूबी के साथ किया है। विवाह के लिए अभी तक एक स्त्री को पुरुष की मानसिकता पर खरा उतरने की पाबन्दी थी पर यहाँ का मामला तो उल्टा है। यहाँ अभिनेत्री माधुरी दीक्षित ने एक ऐसी स्त्री की भूमिका को जीवन किया है, जो अपने जीवन के अकेलेपन को तोड़ने के लिए किसी मर्द के कंधों का सहारा आसानी से नहीं लेती।

2. **मैरी कॉम :**

यह तो एक स्त्री की जिजीविषा और प्रतिस्पर्धी चेतना की सबसे बड़ी अभिव्यक्ति है। यह सिनेमा अभाव में जीते हुए लड़कियों और औरतों के लिए आगे जीने का प्रेरणा देने वाली सिनेमा है। जिनके जीवन में अभाव है, गरीबी है। उस स्त्रियों की कहानी है। शून्य से शिखर तक पहुँचने वाली इस कहानी को प्रियंका चोपड़ा जी ने अभिनय किया है। इस सिनेमा की कहानी एक मामूली और साधारण स्त्री के जीवन संघर्ष की कहानी है।

3. **रंग रसिया :**

इस सिनेमा में कला और अर्न्तद्वन्द्व को परिभाषित किया गया है। 'रंग रसिया' इस दशक की बेहतरीन फिल्मों में एक है। जिसका केन्द्र–पात्र ही एक स्त्री है। समाज जिस स्त्री को वेश्या कहलाता है, तो जो कलाकार यानी चित्रकार जिसे देवी कहते हैं। महान कलाकार रवि वर्मा के जीवन पर केन्द्रित है यह सिनेमा। फिल्म के नायक रवि वर्मा सौन्दर्य के उपासक भी थे साथ ही साथ एक भोगी भी। इस सिनेमा के नायक को देवता मानकर, उसे प्रेम करती है। दुनिया के लिए उपेक्षित नायिका को प्रेम मिलता है तो वह उसकी प्रेम में पिघल हो जाती है। यह तो स्त्रियों की मानसिक दशा है। कलाकार उसकी तस्वीरे बनाता है और देवी के समान पूजा करता है।

4. **जुबेदा :**

इस सिनेमा भी नारी संघर्ष की कहानी है। जुबेदा एक फिल्म निर्माता की बेटी थी। वे गुप्त रूप से ही

फिल्म में काम करती थी। जब उसकी पिता को इस काम के बारे में पता चलता है तो जल्दी ही जुबेदा की शादी अपना दोस्त के बेटे के साथ तय कर देता है। कुछ दिन बाद वे एक बेटे का जन्म देती है। साथ ही साथ जुबेदा की पिता और पति के पिता के साथ मतभेद जाते है, तलाक की अवस्था में पहुँचते है। फिर जु जुबेदा की मुलाकात फतेहपुर के महाराजा विजयसिंह से हो सकता है। वह भी शादी शुदा है फिर भी दोनों के मन में प्यार होने लगे। अपनी दरबार के रीति–रिवाजों को तोड़ना नहीं चाहते थे राजा विजय सिंह। अन्त में जुबेदा अपना देवर उदयसिंह के साथ विवाहेतर सम्बन्ध में पड़कर अपना जीवन बिताना चाहती है।

इन सिनेमा में नारी जीवन की त्रासदी है। इन फिल्मों के नायिकाओं ने अपनी संघर्षमय जीवन बिताते हैं। इनकी जीवन में सुख और दुख है, चाह है, इच्छा है और प्रतिरोध एवं प्रतिशोध करने का स्वर भी है। हम संक्षेप में कह सकते है कि हिन्दी सिनेमा में नारी जीवन का चित्रण बड़ी मार्मिकता एवं सजीवता के साथ किया गया है।

सहायक ग्रंथ सूची :

1. फिल्म सफर : कल और आज – डॉ. सुमा. एस।
2. नारी अस्मिता और भारतीय हिन्दी सिनेमा – डॉ. मृदुला चन्द्र, डॉ. जुही।

Mob : 9656441853

E mail : salusasidhar651@gmail.com

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 150-156
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रगतिशील कहानियों में आर्थिक विषमता और नैतिक मूल्यों का अंतर्विरोध

आशा कुमारी, शोध छात्रा,
डॉ. विनोद कुमार शर्मा, शोध निर्देशक
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
डॉ. सी. वी. रमण विश्वविद्यालय, वैशाली, बिहार।

सार :

प्रगतिशील हिंदी कथा–साहित्य ने भारतीय समाज की जटिल सामाजिक, आर्थिक और नैतिक संरचनाओं को गहराई से उजागर किया है। विशेष रूप से आर्थिक विषमता और नैतिक मूल्यों के अंतर्विरोध को इन कहानियों में अत्यंत यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचंद, यशपाल, फणीश्वरनाथ 'रेणु', भगवतीचरण वर्मा और भीष्म साहनी जैसे लेखकों ने उस वर्गीय असमानता को रेखांकित किया, जिसने समाज में नैतिक पतन और मानवता के ह्रास को जन्म दिया। इन कहानियों में गरीब वर्ग की विवशता, श्रमजीवी जीवन का संघर्ष, और संपन्न वर्ग की नैतिक उदासीनता को एक ही सामाजिक धरातल पर टकराते हुए देखा जा सकता है।

प्रगतिशील कहानीकारों ने आर्थिक विषमता को केवल आर्थिक संदर्भ में नहीं, बल्कि मानवीय संवेदनाओं के विनाश के रूप में देखा। गोदान, ठाकुर का कुआँ, कफन जैसी कहानियाँ आर्थिक असमानता की त्रासदी और उसके कारण जन्म लेने वाले नैतिक संकटों को दर्शाती हैं। इन कहानियों में समाज के शोषित वर्ग की पीड़ा और अमीर वर्ग की असंवेदनशीलता के बीच गहरा विरोधाभास दिखाई देता है।

यह अध्ययन इस बात की पड़ताल करता है कि किस प्रकार प्रगतिशील कथा–साहित्य ने आर्थिक विषमता को केवल भौतिक असमानता नहीं, बल्कि मानवीय मूल्यों के क्षरण की प्रक्रिया के रूप में चित्रित किया। इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि आर्थिक अन्याय सामाजिक नैतिकता के पतन का प्रमुख कारण है, और प्रगतिशील लेखकों ने साहित्य के माध्यम से समाज को इस सच्चाई से रूबरू कराया।

कुंजी शब्द :

आर्थिक विषमता, नैतिक मूल्य, प्रगतिशील कथा–साहित्य, सामाजिक न्याय, वर्ग–संघर्ष, मानवीय संवेदनाएँ।

प्रस्तावना :

अध्ययन का परिप्रेक्ष्य :

हिंदी साहित्य के विकास क्रम में प्रगतिशील आंदोलन का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। यह वह दौर

था जब साहित्य केवल सौंदर्याभिव्यक्ति का माध्यम नहीं रहा, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का उपकरण बन गया। 1936 में लखनऊ में हुए "प्रगतिशील लेखक संघ" के प्रथम अधिवेशन ने हिंदी कहानी को नई दिशा दी। इस आंदोलन का मूल उद्देश्य था– समाज में व्याप्त अन्याय, शोषण, आर्थिक विषमता और नैतिक पतन के विरुद्ध एक सशक्त वैचारिक प्रतिरोध खड़ा करना।

प्रगतिशील लेखकों का मानना था कि साहित्य केवल कल्पना या मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि समाज को जागरूक करने का माध्यम है। इसी कारण उन्होंने यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाया। उन्होंने मनुष्य को उसके परिवेश के साथ देखा और सामाजिक व्यवस्था की विसंगतियों को उजागर किया। आर्थिक असमानता, वर्ग–संघर्ष, नैतिक मूल्यों का ह्रास और स्त्री–पुरुष संबंधों की जटिलता– ये सब विषय प्रगतिशील कथा–साहित्य के केंद्र में रहे।

विषय की प्रासंगिकता :

वर्तमान युग में जहाँ आर्थिक असमानता, नैतिक पतन और सामाजिक असंतुलन तेजी से बढ़ रहे हैं, वहाँ प्रगतिशील हिंदी कहानियों का अध्ययन और भी प्रासंगिक हो जाता है। आज जब पूँजीवाद, उपभोक्तावाद और प्रतिस्पर्धा ने मानवता के मूल्यबोध को चुनौती दी है, तब प्रेमचंद, यशपाल, भीष्म साहनी और अमरकांत जैसे कहानीकारों की दृष्टि हमें पुनः मानव–केंद्रित समाज की ओर लौटने का मार्ग दिखाती है।

उनकी कहानियों में आर्थिक विषमता को केवल सामाजिक समस्या के रूप में नहीं, बल्कि नैतिक मूल्य–व्यवस्था को प्रभावित करने वाली शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिए, प्रेमचंद की "कफन" में गरीबी इतनी गहरी है कि वह मानवीय संवेदना को ही समाप्त कर देती है। इसी प्रकार यशपाल की कहानियों में समाज के उच्च वर्ग के नैतिक द्वंद्व को उजागर किया गया है। इन रचनाओं में यह संदेश निहित है कि जब तक समाज में समानता और न्याय की स्थापना नहीं होगी, तब तक नैतिकता का पुनरुत्थान संभव नहीं है।

आर्थिक विषमता का साहित्यिक परिप्रेक्ष्य :

आर्थिक विषमता किसी समाज की केवल भौतिक स्थिति का नहीं, बल्कि उसके मानसिक और सांस्कृतिक स्वरूप का भी संकेतक होती है। हिंदी कहानी के विकासक्रम में यह विषय लगातार प्रमुख रहा है। प्रेमचंद ने किसान, मजदूर, दलित और निम्नवर्गीय लोगों की दुर्दशा को कहानी के केंद्र में रखा। उनकी दृष्टि में साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि समाज की वास्तविकता को सामने लाना था।

प्रगतिशील कहानीकारों ने इस विचारधारा को और आगे बढ़ाया। उन्होंने कहा कि जब तक आर्थिक समानता स्थापित नहीं होती, तब तक नैतिकता और मानवीयता की बातें केवल आदर्श बनकर रह जाएँगी। इसलिए उन्होंने समाज के गरीब तबके को नायक के रूप में प्रस्तुत किया और उनकी पीड़ा को कथा का मुख्य स्वर बनाया।

उदाहरण के लिए, अमरकांत की कहानियों में छोटा आदमी आर्थिक संघर्ष में जीते हुए भी अपने आत्मसम्मान को बनाए रखने का प्रयास करता है। रेणु की कहानियों में ग्रामीण समाज की आर्थिक विषमताओं के साथ–साथ उनकी मानवीय जिजीविषा भी झलकती है।

नैतिक मूल्यों का संकट :

आर्थिक विषमता का सबसे बड़ा दुष्प्रभाव नैतिक मूल्यों पर पड़ता है। जब व्यक्ति आर्थिक सुरक्षा से वंचित होता है, तो उसके नैतिक निर्णय भी प्रभावित होते हैं। यह स्थिति प्रगतिशील कहानियों में बार–बार देखने को मिलती है।

"कफन" के घीसू और माधव गरीबी से इतने पीड़ित हैं कि बेटी की मृत्यु पर भी संवेदना नहीं बची। यह केवल अमानवीयता नहीं, बल्कि उस आर्थिक व्यवस्था की विफलता का प्रतीक है जिसने उन्हें इस स्थिति तक पहुँचाया। इसी प्रकार यशपाल और भीष्म साहनी के पात्र नैतिक द्वंद्व में उलझे हुए दिखाई देते हैं– एक ओर सामाजिक प्रतिष्ठा की चाह, दूसरी ओर नैतिक सत्य के प्रति दायित्व।

इस संकट को लेखकों ने केवल व्यक्ति की समस्या न मानकर समाज की सामूहिक समस्या के रूप में देखा। उन्होंने यह संदेश दिया कि नैतिकता का आधार केवल धर्म या परंपरा नहीं, बल्कि समानता, न्याय और सहानुभूति पर आधारित होना चाहिए।

प्रगतिशील कहानीकारों का योगदान :

प्रगतिशील कहानीकारों ने हिंदी कथा साहित्य को यथार्थ के धरातल पर उतारा। उन्होंने साहित्य को समाज के दुख–दर्द से जोड़ते हुए यह स्थापित किया कि कला का अंतिम उद्देश्य मानवता की सेवा है।

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों से यह दिखाया कि आर्थिक विषमता व्यक्ति की आत्मा को कुंठित कर देती है। यशपाल ने दिखाया कि समाज में सत्ता और पूँजी का गठजोड़ नैतिकता को कैसे नष्ट करता है। भीष्म साहनी की "चीफ की दावत" उच्च वर्ग की कपटपूर्ण नैतिकता पर करारा व्यंग्य करती है। वहीं अमरकांत और रेणु ने यह बताया कि गरीब वर्ग में भी नैतिक चेतना जीवित है, जो संघर्ष के बावजूद मानवीयता को नहीं छोड़ती।

इन सभी लेखकों की दृष्टि में आर्थिक न्याय ही नैतिकता की नींव है। उनके साहित्य ने भारतीय समाज को आत्ममंथन करने के लिए प्रेरित किया और साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का औजार बना दिया।

आधुनिक समय में प्रगतिशील दृष्टि की प्रासंगिकता :

आज के युग में जब वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति और उपभोक्तावाद ने जीवन को भौतिक दृष्टि से समृद्ध बनाया है, वहीं मानवीय संवेदनाएँ और नैतिक मूल्य कमजोर हुए हैं। अमीरी–गरीबी की खाई बढ़ी है, और सामाजिक न्याय का प्रश्न अब भी अनुत्तरित है।

ऐसे समय में प्रगतिशील कहानियाँ हमें यह याद दिलाती हैं कि साहित्य केवल शब्दों का खेल नहीं, बल्कि मानवीय विवेक और करुणा का माध्यम है। वे आज भी सामाजिक असमानता, शोषण और अन्याय के विरुद्ध एक वैचारिक प्रतिरोध प्रस्तुत करती हैं।

इस दृष्टि से, प्रगतिशील साहित्य केवल ऐतिहासिक महत्व का नहीं, बल्कि समकालीन चेतना का दर्पण भी है। इन कहानियों का अध्ययन आधुनिक समाज में नैतिकता और समानता की पुर्नस्थापना के लिए आवश्यक प्रेरणा प्रदान करता है।

शोध का औचित्य :

यह शोध इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रगतिशील कहानियों में निहित सामाजिक–आर्थिक विचारों और

नैतिक मूल्यों के अंतर्विरोध का गहन अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह न केवल साहित्यिक विश्लेषण है, बल्कि समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी उपयोगी है।

प्रगतिशील कथा–साहित्य को केवल यथार्थवादी कहानियों के रूप में नहीं, बल्कि एक नैतिक दस्तावेज के रूप में पढ़ा जा सकता है। इन रचनाओं के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार आर्थिक विषमता समाज की नैतिक संरचना को प्रभावित करती है, और साहित्य इस असमानता के विरुद्ध जागरूकता का कार्य करता है।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि हिंदी के प्रगतिशील कहानीकारों ने समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता और नैतिक पतन को गहराई से देखा, महसूस किया और अपनी रचनाओं में उसे जीवंत किया। उनके साहित्य का उद्देश्य केवल यथार्थ का चित्रण नहीं, बल्कि मानवता की प्रतिष्ठा और नैतिक पुनर्निर्माण की दिशा में सक्रिय हस्तक्षेप था। यही कारण है कि उनकी कहानियाँ आज भी सामाजिक चेतना का आधार हैं और साहित्यिक दृष्टि से उतनी ही सशक्त और सार्थक प्रतीत होती हैं।

उद्देश्य :

1. प्रगतिशील कहानियों में आर्थिक विषमता के विविध रूपों का विश्लेषण करना :

प्रगतिशील कहानियों में समाज की वर्गीय असमानता और श्रम–पूंजी के टकराव को प्रमुखता से दिखाया गया है। लेखक ने गरीब वर्ग की पीड़ा और अमीर वर्ग के शोषण के यथार्थ को उजागर कर आर्थिक विषमता की गहराई का चित्रण किया है।

2. इन कहानियों में नैतिक मूल्यों के ह्रास और संघर्ष को समझना :

इन कहानियों में नैतिकता का संकट स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। समाज में स्वार्थ, अन्याय और नैतिक पतन के कारण मानवीय संबंध कमजोर होते जा रहे हैं। कहानीकार इस संकट को मानव चेतना के भीतर के द्वंद्व के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

3. साहित्य के माध्यम से सामाजिक समानता और नैतिक पुनर्निर्माण की संभावनाओं को उजागर करना :

प्रगतिशील साहित्य का उद्देश्य केवल आलोचना नहीं बल्कि परिवर्तन की प्रेरणा देना भी है। इन कहानियों में समानता, न्याय और मानवता के मूल्यों को पुर्नस्थापित करने की चेतना दिखाई देती है, जिससे समाज में सकारात्मक परिवर्तन की दिशा निर्मित होती है।

अनुसंधान विधियाँ :

1. शोध का स्वरूप और प्रकृति :

यह शोध गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक दोनों प्रकृतियों का है। प्रगतिशील साहित्य मात्र कथा–कला नहीं, बल्कि समाज, राजनीति और नैतिकता के जटिल संबंधों का दस्तावेज है। इसलिए शोध में सांख्यिकीय विश्लेषण से अधिक महत्व व्याख्यात्मक अध्ययन को दिया गया है। इस अध्ययन के माध्यम से यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार प्रगतिशील कहानियाँ सामाजिक विषमताओं, आर्थिक अन्याय और नैतिक द्वंद्वों को अभिव्यक्त करती हैं।

2. अनुसंधान की पद्धति :

इस शोध में सामग्री विश्लेषण पद्धति को प्रमुखता दी गई है। चयनित कहानियों– जैसे प्रेमचंद की कफन,

यशपाल की पार्टी कामरेड, भीष्म साहनी की चीफ की दावत, और फणीश्वरनाथ रेणु की पंचलाइट– का गहन अध्ययन कर यह विश्लेषण किया गया है कि उनमें सामाजिक चेतना किस प्रकार अभिव्यक्त होती है। साथ ही, तुलनात्मक पद्धति का भी प्रयोग किया गया है ताकि विभिन्न रचनाकारों की दृष्टि, संवेदना और सामाजिक चिंतन में निहित अंतर स्पष्ट किया जा सके।

3. स्रोत सामग्री का उपयोग :

अध्ययन में दो प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है –

प्राथमिक स्रोत : प्रगतिशील कहानीकारों की मूल रचनाएँ जैसे गोदान, गबन, पंचलाइट, चीफ की दावत, परिवार, आदि। इन रचनाओं को शोध के प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में लिया गया।

द्वितीयक स्रोत : आलोचनात्मक ग्रंथ, शोध आलेख, साहित्यिक पत्रिकाएँ, और प्रगतिशील आंदोलन से संबंधित ऐतिहासिक दस्तावेज। इन स्रोतों का उपयोग कथा–संदर्भों की व्याख्या में तुलनात्मक दृष्टि विकसित करने हेतु किया गया।

4. ऐतिहासिक और सैद्धांतिक दृष्टिकोण :

प्रगतिशील कहानियाँ अपने समय के सामाजिक–राजनीतिक परिवर्तनों से गहराई से जुड़ी हैं। इसलिए शोध में ऐतिहासिक पद्धति का भी उपयोग किया गया है। 1936 में लखनऊ में हुए प्रगतिशील लेखक संघ के गठन से लेकर स्वतंत्रता के बाद के सामाजिक–राजनीतिक बदलावों तक का अध्ययन इस दृष्टि से किया गया कि वे कहानियों की विषयवस्तु, पात्र–निर्माण और नैतिक दृष्टि को कैसे प्रभावित करते हैं। इसके साथ ही सामाजिक यथार्थवाद और मार्क्सवादी साहित्य–सिद्धांत को सैद्धांतिक आधार के रूप में अपनाया गया है।

5. शोध की सीमा और प्रयोजन :

शोध की सीमा यह है कि यह केवल प्रगतिशील हिंदी कहानियों तक सीमित है, निबंध, उपन्यास या नाटकों का अध्ययन इसमें सम्मिलित नहीं किया गया है। तथापि, इस सीमित परिप्रेक्ष्य में भी शोध का उद्देश्य यह दिखाना है कि प्रगतिशील कहानीकारों ने किस प्रकार सामाजिक संवेदनाओं को नई दिशा दी और आधुनिक साहित्य को मानवीय सरोकारों से जोड़ा।

परिणाम एवं चर्चा :

प्रगतिशील हिंदी कहानियों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इन रचनाओं ने भारतीय समाज की यथार्थ समस्याओं को न केवल अभिव्यक्त किया, बल्कि उन्हें सुधारने की दिशा में वैचारिक चेतना भी उत्पन्न की। कहानियों के माध्यम से लेखकों ने सामाजिक विषमता, शोषण, गरीबी, स्त्री असमानता और नैतिक पतन जैसे मुद्दों को केंद्र में रखकर जनता की संवेदनाओं को झकझोरा। प्रेमचंद, यशपाल, भीष्म साहनी, राजेन्द्र यादव और नागार्जुन जैसे कथाकारों ने अपने लेखन से यह सिद्ध किया कि साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि समाज परिवर्तन का सशक्त माध्यम भी है।

इन कहानियों में नायक–नायिका किसी आदर्श कल्पना के प्रतीक नहीं, बल्कि वास्तविक समाज से उठे व्यक्ति हैं, जो संघर्ष, अभाव और अन्याय का सामना करते हुए सामाजिक यथार्थ का आईना बनते हैं। उदाहरण के रूप में प्रेमचंद की कहानियाँ 'कफन' और 'सद्गति' में निम्नवर्गीय जीवन की दारुण स्थितियाँ दिखाई देती हैं, जहाँ गरीबी और शोषण के कारण मानवीय संवेदनाएँ तक कुंठित हो जाती हैं। वहीं, यशपाल और नागार्जुन

की कहानियों में स्वतंत्रता–उत्तर भारत की सामाजिक असमानता और नैतिक पतन के स्वर उभरते हैं।

चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रगतिशील कहानियों ने समाज के हर वर्ग को अपनी सोच और दृष्टिकोण पर पुनर्विचार करने को बाध्य किया। इन कहानियों में नारी चेतना, वर्ग संघर्ष, श्रमिक असमानता और मानवाधिकार जैसे मुद्दों को नई दिशा मिली। साथ ही, कहानीकारों ने यह संदेश दिया कि सच्ची प्रगति केवल भौतिक विकास में नहीं, बल्कि संवेदनात्मक और नैतिक उत्थान में निहित है। इस प्रकार, प्रगतिशील हिंदी कहानियाँ समाज की आत्मा का दर्पण बनकर मानवता के मूल्य पुर्नस्थापित करने का कार्य करती हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव –

निष्कर्ष :–

प्रगतिशील हिंदी कहानियों के समग्र अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि इन कहानियों ने भारतीय समाज के यथार्थ को अत्यंत सजीवता और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया। लेखकों ने समाज की जटिल समस्याओं– जैसे गरीबी, शोषण, लैंगिक असमानता, जातिगत विषमता और नैतिक पतन को कहानी के माध्यम से उजागर करते हुए जनमानस में परिवर्तन की चेतना जगाई। प्रेमचंद, यशपाल, भीष्म साहनी, राजेन्द्र यादव और नागार्जुन जैसे साहित्यकारों ने अपनी कहानियों में आम जनता की पीड़ा को स्वर देकर साहित्य को समाज सुधार का उपकरण बनाया। इन कहानियों से यह स्पष्ट होता है कि प्रगतिशील लेखन का उद्देश्य केवल आलोचना नहीं, बल्कि समाज को नई दिशा देना और संवेदनाओं को मानवतावादी दृष्टि से पुनः स्थापित करना है।

वर्तमान समय में जब साहित्य का स्वरूप तेजी से बदल रहा है, तब भी प्रगतिशील कहानियों का महत्व कम नहीं हुआ है। आज की कहानियों में भी वही सामाजिक चेतना और मानवीय सरोकार देखने को मिलते हैं, जो प्रगतिशील युग की पहचान थे। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि प्रगतिशील कहानियाँ केवल ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं हैं, बल्कि वे आज के समाज को भी दिशा प्रदान करती हैं। उन्होंने यह सिद्ध किया कि साहित्य तभी सार्थक है जब वह समाज के दुख–दर्द से जुड़ा हो और उसमें परिवर्तन की आकांक्षा जागृत करे।

सुझाव :

1. आधुनिक हिंदी कहानीकारों को चाहिए कि वे प्रगतिशील दृष्टिकोण को समकालीन सामाजिक संदर्भों से जोड़ें, ताकि साहित्य अधिक प्रासंगिक बने।
2. स्त्री, दलित और श्रमिक वर्ग की आवाजों को अधिक गहराई से कहानियों में स्थान दिया जाना चाहिए।
3. साहित्यिक संस्थाओं और विश्वविद्यालयों को प्रगतिशील कहानियों पर नए शोध कार्यों को प्रोत्साहित करना चाहिए।
4. पाठ्यक्रमों में इन कहानियों को अधिकाधिक शामिल किया जाए, ताकि नई पीढ़ी सामाजिक यथार्थ से जुड़ सके।
5. डिजिटल युग में प्रगतिशील साहित्य को ऑनलाइन माध्यमों से अधिक व्यापक रूप में प्रसारित करने की आवश्यकता है।

अंत में हम कह सकते हैं,कि प्रगतिशील हिंदी कहानियाँ आज भी समाज की संवेदनशील चेतना को दिशा देने का कार्य कर रही हैं और भविष्य में भी साहित्य को मानवीयता के मूल्यों से जोड़े रखने की प्रेरणा देती रहेंगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. प्रेमचंद. (1936). कफन. इलाहाबाद : सरस्वती प्रेस।
2. यशपाल. (1948). पार्टी कामरेड. लखनऊ : लोकभारती प्रकाशन।
3. भीष्म साहनी. (1972). चीफ की दावत. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
4. फणीश्वरनाथ रेणु. (1954). पंचलाइट. पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद।
5. नागार्जुन. (1952). बाबूनी की ममता. वाराणसी : भारती भवन।
6. रामविलास शर्मा. (1954). प्रेमचंद और प्रगतिशील आलोचना. नई दिल्ली : लोकभारती।
7. नामवर सिंह. (1964). कहानी नई कहानी. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
8. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी. (1958). हिंदी साहित्य और समाज. वाराणसी : भारती भवन।
9. डॉ. नरेश मेहता. (1981). प्रगतिशील हिंदी कहानी का विकास. भोपाल : मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।
10. डॉ. विद्यानिवास मिश्र. (1984). कहानी के आयाम. इलाहाबाद : भारतीय ज्ञानपीठ।
11. डॉ. गोपाल राय. (1992). हिंदी कहानी का इतिहास. नई दिल्ली : लोकभारती।
12. डॉ. रामआसरे दास. (1998). प्रगतिशील आंदोलन और हिंदी कहानी. वाराणसी : साहित्य भवन।
13. डॉ. मंगला प्रसाद. (2003). हिंदी कथा–साहित्य में सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली : साहित्य अकादमी।
14. डॉ. सुशील कुमार. (2010). प्रगतिशील हिंदी साहित्य की सामाजिक दृष्टि. पटना : ज्ञानदीप प्रकाशन।
15. डॉ. रेखा वर्मा. (2019). समकालीन हिंदी कहानी और सामाजिक परिवर्तन. लखनऊ : अभिनव पब्लिकेशन।

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 157-171
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत की समकालीन आर्थिक विकास योजनाओं का राजनीतिक एवं पर्यावरणीय विश्लेषण

प्रियंका
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना।

सारांश (Abstract)

यह शोध पत्र भारत की समकालीन आर्थिक विकास योजनाओं और उनके पर्यावरणीय प्रभावों का राजनीतिक–पर्यावरणीय (Political–Ecological) दृष्टिकोण से समालोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। उदारीकरण के पश्चात् विशेषकर 2014 के बाद भारत में औद्योगिकीकरण, अवसंरचना विस्तार, तीव्र शहरीकरण, विशेष आर्थिक क्षेत्रों (SEZs) तथा मेगा–परियोजनाओं को आर्थिक विकास का प्रमुख माध्यम बनाया गया है। इन योजनाओं ने जहाँ एक ओर आर्थिक वृद्धि, निवेश और वैश्विक प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित किया है (Government of India, 2014; NHAI, 2017; Government of India, 2015) वहीं दूसरी ओर वनों की कटाई, भूमि अधिग्रहण, जल संसाधनों का क्षरण, जैव विविधता में गिरावट और पारिस्थितिक असंतुलन जैसी गंभीर पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म दिया है।

यह अध्ययन "मेक इन इंडिया", "स्मार्ट सिटी मिशन", "भारतमाला परियोजना", जैसी प्रमुख विकास योजनाओं का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट करता है कि किस प्रकार राजनीतिक विचारधाराएँ, चुनावी प्राथमिकताएँ, कॉर्पोरेट हित और नीति निर्माण की प्रक्रिया इन परियोजनाओं की दिशा और स्वरूप को निर्धारित करती हैं। शोध में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (EIA), नियामक संस्थाएँ और न्यायिक हस्तक्षेप अक्सर राजनीतिक दबावों के कारण कमजोर पड़ जाते हैं, जिससे विकास और पर्यावरण के बीच असंतुलन और अधिक गहरा हो जाता है।

राजनीतिक पारिस्थितिकी और पर्यावरणीय न्याय के सैद्धांतिक ढाँचे के आधार पर यह अध्ययन निष्कर्ष निकालता है कि भारत में आर्थिक विकास योजनाओं को तकनीकी या आर्थिक परियोजनाओं के रूप में नहीं, बल्कि राजनीतिक निर्णयों और सत्ता संरचनाओं के प्रतिफल के रूप में समझना आवश्यक है। शोध यह रेखांकित करता है कि दीर्घकालिक और टिकाऊ विकास के लिए पर्यावरणीय सरोकारों को केवल औपचारिक बाधा न मानकर नीति निर्माण की केंद्रीय धुरी बनाया जाना अनिवार्य है।

कुंजी शब्द : आर्थिक विकास योजनाएँ, राजनीतिक पारिस्थितिकी, पर्यावरणीय प्रभाव, नीति निर्माण, सतत विकास,

भारत, पर्यावरणीय न्याय।

1. प्रस्तावना (Introduction)

इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में भारत ने एक उभरती हुई वैश्विक आर्थिक शक्ति की दिशा में तीव्र गति से कदम बढ़ाए हैं। आर्थिक उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण की नीतियों के विस्तार के साथ–साथ भारत में बड़े पैमाने पर औद्योगिक विस्तार, अवसंरचना निर्माण, शहरी पुनर्विकास और निवेश–उन्मुख विकास योजनाओं को राष्ट्रीय प्रगति का पर्याय माना जाने लगा है (नेहरू विश्वविद्यालय शोध समूह, 2022)। परंतु इस तेज विकास की प्रक्रिया में पर्यावरणीय संतुलन एक महत्वपूर्ण प्रश्न बनकर उभरा है। विशेष रूप से वर्ष 2014 के पश्चात् प्रारंभ की गई विकास परियोजनाएँ– जैसे मेक इन इंडिया, स्मार्ट सिटी मिशन, भारतमाला परियोजना और विविध औद्योगिक गलियारे सहित खनन उद्योग, पर्यटन उद्योग इत्यादि आर्थिक नीतियां भारत की विकास रणनीति का केंद्रीय आधार बन गई हैं, परिणामस्वरूप खनन एवं दिशाहीन आर्थिक अवसंरचनाओं के निर्माण हेतु जंगलों एवं पहाड़ों की कटाई, जल स्रोतों का अतिक्रमण, उपजाऊ जमीनों का मनमाने ढंग से अधिग्रहण, इत्यादि तीव्र आर्थिक विकास की प्रक्रिया ने पर्यावरणीय संतुलन (जल, जंगल, जमीन) को गंभीर चुनौती दी है (सिंह, 2015, जोशी – शर्मा, 2018) जल स्रोतों के क्षरण, जैव विविधता संकट, प्रदूषण वृद्धि, उत्तराखंड जैसे पहाड़ी राज्यों में आने वाली प्राकृतिक आपदाएं, गिरता भू जलस्तर, यह संकेत देते हैं कि विकास की मौजूदा दिशा पारिस्थितिकीय सीमाओं को लगातार लाँघ रही है।

इस संदर्भ में "विकास बनाम पर्यावरण" की बहस केवल आर्थिक लागतदृलाभ या तकनीकी प्रबंधन तक सीमित न रह कर एक गहन राजनीतिक प्रश्न के रूप में उभरती है। विकास परियोजनाओं के चयन, स्थान निर्धारण, पर्यावरणीय स्वीकृति की प्रक्रिया तथा प्रभावित वंचित समुदायों के पुनर्वास से जुड़े निर्णय राजनीतिक सत्ता, नीति निर्माण और चुनावी प्राथमिकताओं से गहराई से जुड़े होते हैं। कौन–सा क्षेत्र "राष्ट्रीय हित" में विकास के लिए चुना जाएगा, किन प्राकृतिक संसाधनों का दोहन होगा और किन सामाजिक समूहों को इसके दुष्परिणाम झेलने पड़ेंगे ये सभी निर्णय राजनीतिक हित, दबाव समूहों और सत्ता संरचना के अंतर्गत लिए जाते हैं। उदाहरण के लिए छत्तीसगढ़ राज्य में जंगलों की कटाई विगत वर्षों में विवाद का विषय बन गया है जिसपर राज्य सरकार आदिवासियों के विरोध के स्वर को अनसुना कर रही है।

इस प्रकार, पर्यावरणीय क्षरण को केवल अनपेक्षित परिणाम के रूप में नहीं, बल्कि राजनीतिक निर्णयों के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में समझना आवश्यक हो जाता है। राजनीति सत्ता एवं शक्तियां अपने निर्णयों से पर्यावरण को कैसे प्रभावित करती हैं इसका ताजा उदाहरण उत्तराखंड में पर्यटन उद्योग द्वारा आर्थिक क्षमता बढ़ाने हेतु वर्ष 2025 में प्रधानमंत्री द्वारा उत्तराखंड को "नो ऑफ सीजन" घोषित किया जाना था जबकि उसी उत्तराखंड में रिसॉर्ट, होटल्स इत्यादि दिशाहीन निर्माणों की वजह से वहां की जैव विविधता को अपार क्षति पहुंची है (www.the hindu.com 2025)

भारत में विकास योजनाओं को अक्सर "राष्ट्रीय प्रगति", "रोजगार सृजन" और "वैश्विक प्रतिस्पर्धा" के प्रतीक के रूप में जबकि पर्यावरणीय नियमों को विकास में बाधक के रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है। इस विमर्श ने नीति निर्माण में पर्यावरणीय चिंताओं को गौण बना दिया है। पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (EIA) जैसी प्रक्रियाएँ और नियामक संस्थाएँ राजनीतिक अथवा कॉर्पोरेट दबावों के कारण कई बार अपेक्षित भूमिका निभाने

में असफल दिखाई देती हैं। राज्य–बाजार–कॉरपोरेट गठजोड़ के अंतर्गत प्राकृतिक संसाधनों का दोहन विकास के नाम पर वैध ठहराया जाने लगा है (Levien, 2018; Jenkins, 2019)

यह शोध पत्र इसी पृष्ठभूमि में भारत की समकालीन आर्थिक विकास योजनाओं का राजनीतिक–पर्यावरणीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि किस प्रकार राजनीतिक विचारधाराएँ, सत्ता की प्राथमिकताएँ, चुनावी रणनीतियाँ और कॉर्पोरेट हित विकास योजनाओं की दिशा को निर्धारित करते हैं तथा इनके परिणामस्वरूप पर्यावरणीय संतुलन किस हद तक प्रभावित होता है (Government of India, 2014; Government of India, 2015; NHAI, 2017)।

यह शोध राजनीतिक पारिस्थितिकी (Political Ecology) और पर्यावरणीय न्याय (Environmental Justice) के सैद्धांतिक ढाँचे के माध्यम से यह तर्क प्रस्तुत करता है कि भारत में विकास और पर्यावरण के बीच बढ़ता असंतुलन मूलतः एक राजनीतिक समस्या है, जिसका समाधान उत्तरदायी, सहभागी और पर्यावरण–संवेदी नीति निर्माण से ही संभव है (IPCC, 2023; MoEFCC, 2021)।

1.1 साहित्य समीक्षा (Literature Review)

भारत में विकास और पर्यावरण के अंतर्संबंधों पर विद्वानों द्वारा व्यापक स्तर पर अध्ययन किया गया है, किंतु इन अध्ययनों में प्रायः विकास परियोजनाओं के पर्यावरणीय दुष्परिणामों को औद्योगिक प्रदूषण, वनों की कटाई और संसाधन क्षरण के रूप में रेखांकित किया गया, जबकि राजनीतिक प्रक्रियाओं और सत्ता संरचनाओं की भूमिका अपेक्षाकृत गौण रही है।

सिंह, एम. (2015). ने अपने अध्ययन "भारत में विकास बनाम पर्यावरणरू नीतिगत विरोधाभास" में यह स्पष्ट किया है कि भारत में पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (EIA) एक अनिवार्य प्रक्रिया होते हुए भी व्यवहार में औपचारिक मात्र रह गया है। उनका तर्क है कि विकास परियोजनाओं की स्वीकृति में आर्थिक लाभ को प्राथमिकता दी जाती है, जबकि पर्यावरणीय जोखिमों का समुचित मूल्यांकन नहीं किया जाता। यह अध्ययन नीति स्तर पर मौजूद अंतर्विरोधों को उजागर करता है, किंतु राजनीतिक हस्तक्षेपों की गहराई पर सीमित चर्चा करता है।

जोशी और शर्मा (2018) ने औद्योगिक गलियारों के विस्तार का विश्लेषण करते हुए यह दर्शाया है कि मेगा परियोजनाएँ ग्रामीण पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। उनके अनुसार, भूमि अधिग्रहण, जल संसाधनों पर दबाव और प्रदूषण के कारण न केवल पर्यावरणीय असंतुलन बढ़ता है, बल्कि सामाजिक असमानताएँ भी गहरी होती हैं। यह अध्ययन सामाजिक–पर्यावरणीय प्रभावों को सामने लाता है, किंतु नीति निर्माण के राजनीतिक आयामों को पर्याप्त रूप से नहीं जोड़ता।

Economic and Political Weekly (2020) में प्रकाशित चारधाम सड़क परियोजना पर केंद्रित अध्ययन हिमालयी क्षेत्र की पारिस्थितिक संवेदनशीलता को रेखांकित करता है। लेख में यह बताया गया है कि सड़क चौड़ीकरण और तीव्र आर्थिक निर्माण गतिविधियों ने भूस्खलन, वनों की कटाई और जल स्रोतों के क्षरण की समस्या को गंभीर बना दिया है। यह अध्ययन वैज्ञानिक और पर्यावरणीय चेतावनियों को सामने रखता है, किंतु राजनीतिक निर्णय–प्रक्रिया और चुनावी प्राथमिकताओं के संदर्भ में सीमित विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

नेहरू विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं (2022) द्वारा किए गए राजनीतिक अर्थशास्त्र संबंधी अध्ययन में

यह निष्कर्ष निकाला गया है कि भारत में विकास योजनाएँ अक्सर कॉर्पोरेट हितों और राजनीतिक लाभ से प्रेरित होती हैं। उनके अनुसार, नीति निर्माण में वैज्ञानिक साक्ष्यों की तुलना में सत्ता समीकरण और निवेशक हित अधिक प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं। यह अध्ययन विकास और राजनीति के अंतर्संबंध को स्पष्ट करता है, किंतु पर्यावरणीय प्रभावों का व्यवस्थित विश्लेषण सीमित दायरे में करता है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर, Intergovernmental Panel on Climate Change (IPCC, 2023) की रिपोर्टें शहरीकरण, औद्योगीकरण और अवसंरचना विकास को जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारकों के रूप में चिन्हित करती हैं। भारत जैसे विकासशील देशों के संदर्भ में रिपोर्ट यह चेतावनी देती है कि अनियंत्रित शहरी विस्तार और ऊर्जा–गहन विकास मॉडल भविष्य में गंभीर जलवायु संकट उत्पन्न कर सकते हैं। यद्यपि यह रिपोर्ट वैश्विक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, परंतु राष्ट्रीय राजनीति और नीति निर्माण की विशिष्टताओं पर इसका फोकस सीमित है।

1.2 शोध अंतर (Research Gap)

उपरोक्त साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश अध्ययन मे पर्यावरणीय क्षरण को प्रायः औद्योगिकीकरण या शहरीकरण का अनपेक्षित परिणाम माना गया है, राजनीतिक निर्णय सत्ता संरचना, चुनावी रणनीति, नीति निर्माण की प्रक्रिया, कॉर्पोरेट प्रभाव की भूमिका किस प्रकार पर्यावरणीय परिणामों को प्रभावित करती है। इस प्रश्न पर केंद्रित अध्ययन अपेक्षाकृत कम हैं। विशेष रूप से 2014 के बाद की समकालीन आर्थिक विकास योजनाओं के राजनीतिक–पर्यावरणीय अंतर्संबंधों पर समग्र और व्यवस्थित शोध का अभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है अब तक के साहित्य में पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (EIA), नियामक संस्थाओं और न्यायिक हस्तक्षेपों की भूमिका पर चर्चा तो की गई है, किंतु यह विश्लेषण पर्याप्त रूप से यह नहीं स्पष्ट करता कि राजनीतिक हस्तक्षेप और नीतिगत प्राथमिकताएँ इन संस्थाओं की प्रभावशीलता को कैसे सीमित करती हैं। लोकतांत्रिक जवाबदेही, जनभागीदारी और पर्यावरणीय न्याय के प्रश्नों को नीति निर्माण की प्रक्रिया से जोड़कर देखने का प्रयास अत्यंत सीमित रहा है।

विकास और पर्यावरण के मुद्दे को राजनीतिक पारिस्थितिकी (Political Ecology) के दृष्टिकोण से देखने वाले अध्ययन भारतीय संदर्भ में कम विकसित हैं। विशेष रूप से यह प्रश्न कि विकास का लाभ किसे मिलता है और पर्यावरणीय क्षति का बोझ किन सामाजिक समूहों पर पड़ता है? अब तक के शोधों में समुचित स्थान नहीं पा सका है।

अतः,यह शोध उपर्युक्त रिक्तताओं को संबोधित करते हुए भारत की समकालीन आर्थिक विकास योजनाओं का राजनीतिक–पर्यावरणीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

1.3 शोध के उद्देश्य (Research Objectives)

इस शोध अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

भारत की समकालीन (2014 के बाद) आर्थिक विकास योजनाओं की प्रकृति, संरचना और प्राथमिकताओं का राजनीतिक एवं पर्यावरणीय दृष्टिकोण से विश्लेषण करना।

किस प्रकार राजनीतिक विचारधाराएँ, चुनावी रणनीतियाँ, नीति निर्माण की प्रक्रिया और कॉर्पोरेट हित विकास योजनाओं की दिशा और पर्यावरणीय परिणामों को प्रभावित करते हैं।

पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (EIA), नियामक संस्थाओं और न्यायिक हस्तक्षेपों की भूमिका का विश्लेषण करना तथा यह आकलन करना कि राजनीतिक हस्तक्षेप इन तंत्रों की प्रभावशीलता को किस सीमा तक प्रभावित करता है।

राजनीतिक पारिस्थितिकी और पर्यावरणीय न्याय के सैद्धांतिक ढाँचे के माध्यम से विकास और पर्यावरण के बीच असंतुलन को समझना तथा अधिक टिकाऊ और उत्तरदायी नीति निर्माण की संभावनाओं की पहचान करना।

1.4 मुख्य शोध प्रश्न (Research Questions)

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु यह अध्ययन निम्नलिखित शोध प्रश्नों पर केंद्रित है :

1. भारत की प्रमुख समकालीन आर्थिक विकास योजनाओं के पर्यावरणीय प्रभावों की प्रकृति और परिमाण क्या हैं?
2. इन विकास योजनाओं के निर्माण, प्राथमिकता निर्धारण और क्रियान्वयन में राजनीतिक शक्तियाँ, विचारधाराएँ और सत्ता संरचनाएँ किस प्रकार कार्य करती हैं?
3. वर्तमान पर्यावरणीय नीति ढाँचे विशेषकर पर्यावरणीय प्रभाव आकलन, नियामक संस्थाएँ और न्यायिक तंत्र विकास परियोजनाओं के संदर्भ में किस सीमा तक प्रभावी हैं?
4. राजनीतिक हस्तक्षेप, कॉर्पोरेट प्रभाव और चुनावी प्राथमिकताएँ पर्यावरणीय संरक्षण के प्रयासों को कैसे कमजोर करती हैं?

1.5 शोध पद्धति (Research Methodology)

यह अध्ययन भारत की समकालीन आर्थिक विकास योजनाओं और उनके पर्यावरणीय प्रभावों का विश्लेषण राजनीतिक–पर्यावरणीय (Political–Ecological) दृष्टिकोण से करता है। शोध की प्रकृति गुणात्मक (Qualitative) है, जिसमें वर्णनात्मक (Descriptive) तथा विश्लेषणात्मक (Analytical) पद्धतियों का संयोजन किया गया है।

1.6 शोध की प्रकृति और दृष्टिकोण –

यह अध्ययन व्याख्यात्मक (Explanatory) और समालोचनात्मक (Critical) शोध दृष्टिकोण अपनाता है। शोध में यह मान्यता निहित है कि पर्यावरणीय क्षरण किसी तटस्थ तकनीकी प्रक्रिया का परिणाम नहीं, बल्कि राजनीतिक प्राथमिकताओं और नीतिगत विकल्पों का प्रतिफल है। अतः अध्ययन में विकास और पर्यावरण के अंतर्संबंध को एक राजनीतिक समस्या के रूप में विश्लेषित किया गया है।

1.7 डेटा के स्रोत (Sources of Data) –

शोध में मुख्यतः द्वितीयक आँकड़ों (Secondary Data) का उपयोग किया गया है, जिनमें निम्नलिखित स्रोत सम्मिलित हैं :

1. भारत सरकार के आधिकारिक दस्तावेज एवं रिपोर्टें (नीति आयोग, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय – (MoEFCC)
2. राष्ट्रीय हरित अधिकरण (NGT) तथा उच्चतम न्यायालय के निर्णय।
3. शैक्षणिक पत्रिकाएँ एवं शोध लेख (जैसे Economic and Political Weekly)

4. अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं की रिपोर्टें (IPCC, UNEP आदि)

5. स्वतंत्र पर्यावरणीय संगठनों एवं शोध संस्थानों की प्रकाशित रिपोर्टें।

1.8 डेटा विश्लेषण की विधि –

शोध में थीमैटिक एनालिसिस (Thematic Analysis) और तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis) का प्रयोग किया गया है। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं को राजनीतिक निर्णय, पर्यावरणीय प्रभाव और सामाजिक परिणाम जैसे प्रमुख विषयों के अंतर्गत वर्गीकृत कर उनका विश्लेषण किया गया है।

1.9 शोध की सीमाएँ –

यद्यपि यह अध्ययन राजनीतिक–पर्यावरणीय विश्लेषण को गहराई से प्रस्तुत करता है, फिर भी यह मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। प्राथमिक फील्ड अध्ययन और मात्रात्मक आँकड़ों का समावेश भविष्य के शोध के लिए संभावित क्षेत्र के रूप में छोड़ा गया है।

2. सैद्धांतिक ढाँचा (Theoretical Framework) –

इस अध्ययन में दो प्रमुख सैद्धांतिक ढाँचों का प्रयोग किया गया है :

2.1 राजनीतिक पारिस्थितिकी (Political Ecology) :

यह ढाँचा यह समझने में सहायता करता है कि किस प्रकार सत्ता, राजनीति और आर्थिक हित प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग और वितरण को प्रभावित करते हैं।

2.2 पर्यावरणीय न्याय (Environmental Justice) :

इस दृष्टिकोण के माध्यम से यह विश्लेषण किया गया है कि विकास परियोजनाओं से उत्पन्न पर्यावरणीय क्षति (जल, जंगल, जमीन) का बोझ किन सामाजिक समूहों– विशेषकर आदिवासी, किसान और हाशिए पर स्थित समुदायों पर अधिक पड़ता है।

2.3 नियामक एवं न्यायिक विश्लेषण –

शोध में भारत की पर्यावरणीय शासन व्यवस्था (Environmental Governance) का विश्लेषण किया गया है, जिसमें निम्नलिखित पहलुओं को शामिल किया गया है :

1. पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (EIA) प्रक्रिया में तत्कालीन नीतिगत परिवर्तनों का अध्ययन।
2. पर्यावरणीय स्वीकृति देने वाली संस्थाओं की भूमिका।
3. NGT एवं सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए पर्यावरण–संबंधी निर्णयों का विश्लेषण।
4. यह आकलन कि राजनीतिक हस्तक्षेप इन संस्थाओं की स्वायत्तता को किस सीमा तक प्रभावित करता है?

3.1 मेक इन इंडिया (Make in India) –

2014 में शुरू की गई यह योजना भारत को वैश्विक विनिर्माण केंद्र बनाने का प्रयास था। इसके अंतर्गत विदेशी निवेश को आकर्षित करने, व्यवसाय में आसानी (Ease of Doing Business) बढ़ाने और औद्योगिक बुनियादी ढांचे को सुधारने पर जोर दिया गया। इसके अंतर्गत विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZs), फास्ट ट्रैक पर्यावरण मंजूरी और भूमि अधिग्रहण को आसान बनाया गया (Government of India, 2014)

पर्यावरणीय प्रभाव : भारी उद्योगों के लिए खेती योग्य उपजाऊ जमीनों का भूमि अधिग्रहण किया गया

जिससे पारंपरिक खेती का ह्रास एवं भूमि क्षरण में इजाफा, पानी की अत्यधिक खपत, और प्रदूषण में वृद्धि हुई। अनेक परियोजनाओं में पर्यावरणीय मंजूरी प्रक्रिया को सरल किया गया जिससे पर्यावरणीय नियमों का उल्लंघन बढ़ा।

3.2 स्मार्ट सिटी मिशन –

2015 में शुरू किया गया यह मिशन देशभर में 100 स्मार्ट शहरों के विकास का लक्ष्य लेकर चला। इसका उद्देश्य आधुनिक इन्फ्रास्ट्रक्चर, डिजिटल तकनीक और सुगम शहरी जीवन प्रदान करना था। इस योजना के तहत पुराने शहरों का पुनर्विकास, झुग्गी क्षेत्रों का पुर्नस्थापन, और ग्रीनफील्ड टाउनशिप का निर्माण किया गया (Government of India, 2015)

पर्यावरणीय प्रभावरू हरित क्षेत्रों की कटौती, जल निकायों का संकुचन, वृहद मात्रा में वृक्षों की कटाई एवं अत्यधिक ऊर्जा उपयोग, के फलस्वरूप शहरी हीट आइलैंड प्रभाव (Urban Heat Island Effect) में वृद्धि हुई।

3.3 भारतमाला परियोजना –

2017 में शुरू की गई यह एक मेगा सड़क विकास योजना है (83,000 किमी.) जिसका उद्देश्य भारत भर में हाईवे नेटवर्क को जोड़ना और लॉजिस्टिक्स को तेज करना है। इसके अंतर्गत पर्वतीय, घने जंगलों, उपजाऊ जमीनों और पारिस्थितिक रूप से संवेदनशील क्षेत्रों में भी सड़क निर्माण किया गया (NHAI, 2017)

पर्यावरणीय प्रभाव : बड़े पैमाने पर वनों की कटाई, जंगली जीवों के आवास में विघटन, खेती करने योग्य जमीनों का जबरन भूमि अधिग्रहण द्वारा जैव विविधता को भारी नुकसान पहुंचाया गया। इसके फलस्वरूप भूस्खलन (विशेषकर पहाड़ी क्षेत्रों में), वायु प्रदूषण में वृद्धि हुई।

3.4 डेडिकेटेड फ्रेट कॉरिडोर (DFC) –

रेलवे आधारित एक बड़ी परियोजना जो मालगाड़ियों को तेज और कुशल बनाने हेतु विशेष ट्रैक बनाती है और औद्योगिक ट्रांसपोर्ट, को बढ़ावा देती है (Indian Railways, 2014)

पर्यावरणीय प्रभाव : निर्माण के दौरान बड़े पैमाने पर भूमि अधिग्रहण कर हरित पट्टियों का नुकसान किया गया भारी मात्रा में किसानों का विस्थापन हुआ, जलाशय प्रभावित हुए और पारिस्थितिकीय असंतुलन में वृद्धि हुई।

3.5 औद्योगिक गलियारे (Industrial Corridors) –

जैसे दिल्ली–मुंबई औद्योगिक गलियारा, जिसमें बड़ी संख्या में औद्योगिक टाउनशिप, विशेष आर्थिक जोन (SEZs) और स्मार्ट सिटीज शामिल हैं।

पर्यावरणीय प्रभाव : बड़ी मात्रा में ऊर्जा की खपत, औद्योगिक अपशिष्ट में वृद्धि, जल स्रोतों पर दबाव, और पारंपरिक कृषि भूमि का ह्रास हुआ।

3.6 अमृत योजना (AMRUT & Atal Mission for Rejuvenation and Urban Transformation) –

2015 में लॉन्च की गई यह योजना बुनियादी शहरी सेवाएं जैसे जल आपूर्ति, सीवरेज, हरित क्षेत्र में सुधार हेतु लाया गया। यह योजना आंशिक रूप से पर्यावरण सुधार की दिशा में थी, लेकिन तेजी से होते निर्माण ने जल स्रोतों और हरित क्षेत्र को क्षति ही पहुँचाई।

पर्यावरणीय प्रभाव : गलत ढंग से निर्माण प्रक्रिया को बढ़ावा देने के फलस्वरूप शहरी एवं स्थानीय पारिस्थितिकी दबाव में वृद्धि हुई।

3.7 राष्ट्रीय औद्योगिक गलियारा विकास कार्यक्रम (NICDP) –

प्रमुख गलियारे : दिल्ली–मुंबई, अमृतसर–कोलकाता, चेन्नई–बेंगलुरु।

उद्देश्य : इंडस्ट्रियल टाउनशिप, निवेश जोन, एक्सपोर्ट हब का निर्माण। यह मेगा परियोजना विशेष रूप से अंतर्राष्ट्रीय निवेशकों के लिए तैयार की गई थी, जिसमें भूमि अधिग्रहण और अधोसंरचना विकास को तीव्रता से अंजाम दिया गया।

पर्यावरणीय प्रभाव : पारंपरिक कृषि भूमि का विनाश, जलाशयों की कमी, औद्योगिक अपशिष्ट, स्थानीकृत जलवायु परिवर्तन।

3.8 स्टैच्यू ऑफ यूनिटी और टूरिज़्म इंफ्रास्ट्रक्चर –

पर्यटन को राष्ट्र पटल पर 'विकास प्रतीक' के रूप में प्रस्तुत किया गया लेकिन इसके लिए विशाल पर्यावरणीय बलिदान भी किया गया।

पर्यावरणीय प्रभाव : नदी क्षेत्र में परिवर्तन, आदिवासी विस्थापन, जल आपूर्ति दबाव, पर्यावरणीय अध्ययन के बिना निर्माण।

3.9 चारधाम सड़क परियोजना –

उत्तराखंड में धार्मिक और सामरिक दृष्टि से सड़क नेटवर्क के फलस्वरूप हिमालयी क्षेत्र में तेजी से आर्थिक अवसंरचनाओं का विकास किया गया जिसके लिए व्यापक मात्रा में पेड़ों की कटाई की गई, पहाड़ों और जंगलों को तहस नहस किया गया, जिससे भूस्खलन में वृद्धि देखने को मिली। इससे हिमालय क्षेत्र के पारिस्थितिक तंत्र को भी खतरा पहुंचा है, बर्फबारी के स्वरूप में भी परिवर्तन देखने को मिला।

4. विकास योजनाओं के पर्यावरणीय प्रभाव का मूल्यांकन –

भारत की समकालीन आर्थिक विकास योजनाएँ केवल आर्थिक संरचना ही नहीं बल्कि देश के प्राकृतिक संसाधनों, पारिस्थितिक तंत्र और सामाजिक–पर्यावरणीय संबंधों को भी गहराई से प्रभावित करती हैं जिसका निम्नलिखित रूप से समालोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है :

4.1 भूमि अधिग्रहण, विस्थापन और सामाजिक-पारिस्थितिकी संकट –

औद्योगिकीकरण, अवसंरचना निर्माण और शहरी विस्तार के लिए बड़े पैमाने पर भूमि अधिग्रहण किया गया है। इस प्रक्रिया में कृषि भूमि, वन क्षेत्र और सामुदायिक संसाधनों का निजीकरण बढ़ा है, जिसके परिणामस्वरूप किसान, आदिवासी और ग्रामीण समुदायों का विस्थापन हुआ है (जोशी – शर्मा, 2018) भूमि अधिग्रहण केवल आजीविका का नुकसान नहीं करता, बल्कि स्थानीय सामाजिक–पारिस्थितिक तंत्र को भी विघटित करता है (माधव गाडगिल 'ए वॉक अप द हिल – लिविंग विद पीपल एंड नेचर')

छत्तीसगढ़ के आदिवासी समुदाय (Gonds, Baigas) पर किए गए अध्ययन (Niyogi & Roy, 2018) में पाया गया कि खनन और औद्योगिक गतिविधियों के कारण वन क्षेत्र में कटौती हुई, जिससे पारंपरिक कृषि और वन उत्पादों पर निर्भरता घट गई। परिणामस्वरूप, आदिवासी आर्थिक रूप से कमजोर हुए और उनकी सांस्कृतिक जीवनशैली प्रभावित हुई।

राजनीतिक पारिस्थितिकी के दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह विस्थापन असमान शक्ति संबंधों का परिणाम है, जहाँ विकास का लाभ शहरी और औद्योगिक वर्गों को मिलता है, जबकि पर्यावरणीय और सामाजिक लागत

हाशिए पर स्थित समुदायों को उठानी पड़ती है।

4.2 वनों की कटाई और जैव विविधता में ह्रास –

विकास परियोजनाओं के अंतर्गत वनों की कटाई एक गंभीर पर्यावरणीय समस्या के रूप में उभरी है। सड़क, रेलवे, खनन और औद्योगिक परियोजनाओं के लिए बड़े पैमाने पर वन भूमि का उपयोग किया गया है (EPW, 2020) उदाहरण के तौर पर, चारधाम सड़क परियोजना के तहत हिमालयी क्षेत्र में हुई वृक्षों की कटाई ने न केवल जैव विविधता को नुकसान पहुँचाया है, बल्कि पहाड़ी ढलानों की स्थिरता को भी कमजोर किया है(https://www.jansatta.com/national/india&mountains&and&forests&are&being&harmed&by&development&work/3117339/) भारत में छोटे और बड़े पहाड़ों को जिस तरह विकास का मुहरा बनाया गया, उससे पिछले तीस–चालीस वर्षों में जितना नुकसान हुआ उतना पिछले पांच सौ वर्षों में नहीं हुआ। पहाड़ों में विस्फोट कर विकास के लिए बनाई जा रहीं सुरंगें, राजमार्ग और सड़कों से कई छोटी पहाड़ियों का अस्तित्व ही खत्म होने को हैं। वनों का क्षरण वन्य जीवों के आवास को नष्ट करता है और मानव–वन्यजीव संघर्ष की संभावनाओं को बढ़ाता है। यह स्थिति दर्शाती है कि पर्यावरण संरक्षण के कानूनी प्रावधानों को विकास की राजनीति के तहत अक्सर शिथिल कर दिया जाता है (https://www.divyahimachal.com/2023/09/the&challenge&of&development&to&the&stability&of&the&mountains/)

4.3 जल संसाधनों का क्षरण और प्रदूषण –

तीव्र औद्योगिकीकरण और शहरीकरण ने जल संसाधनों पर अभूतपूर्व दबाव डाला है बेंगलुरू, चेन्नई जैसे मेट्रो सिटीज में तीव्र औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण का मार उनके वृहद झीलों और वेटलैंड्स पर साफ साफ दिख रहा है (रामचंद्र, टी. वी.,एवं भरत, एच. ए. 2019, KSPCB 2020) नदियाँ, झीलें और भूजल स्रोत औद्योगिक अपशिष्ट, सीवेज और निर्माण गतिविधियों के कारण प्रदूषित हो रहे हैं (केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड रिपोर्ट) गंगा और यमुना जैसी प्रमुख नदियाँ इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, जहाँ विकास परियोजनाओं (नमामि गंगे) के बावजूद जल गुणवत्ता में अपेक्षित सुधार नहीं देखा गया है (IPCC, 2023)

राजनीतिक दृष्टि से यह स्थिति दर्शाती है कि जल संरक्षण से जुड़ी नीतियाँ विकास लक्ष्यों के सामने गौण कर दी जाती हैं और पर्यावरणीय नियमों का अनुपालन प्रभावी रूप से सुनिश्चित नहीं किया जाता।

4.4 शहरीकरण, ऊर्जा खपत और पर्यावरणीय दबाव –

स्मार्ट सिटी मिशन और औद्योगिक टाउनशिप के विकास ने शहरी क्षेत्रों में ऊर्जा की खपत को बढ़ाया है। उच्च–ऊर्जा आधारित इमारतें, बढ़ता परिवहन और तकनीकी अवसंरचना शहरी हीट आइलैंड प्रभाव को बढ़ावा देती हैं। इससे शहरी पर्यावरण में तापमान वृद्धि, वायु प्रदूषण और सार्वजनिक स्वास्थ्य संबंधी जोखिम उत्पन्न होते हैं। पुणे में 2013–22 के बीच तेजी से शहरी विस्तार के कारण कार्बन अवशोषण क्षमता में 34% गिरावट आई, जिससे बाढ़ और गर्मी की तीव्रता में वृद्धि हुई (timesofindia.indiatimes.com) यह परिघटना इस बात को रेखांकित करती है कि शहरी विकास योजनाओं में पर्यावरणीय स्थिरता को प्राथमिकता देने के दावे और वास्तविक क्रियान्वयन के बीच स्पष्ट अंतर मौजूद है।

4.5 जलवायु परिवर्तन में विकास योजनाओं की भूमिका –

भारत की कई विकास परियोजनाएँ कोयला–आधारित ऊर्जा, सीमेंट उद्योग और भारी परिवहन पर निर्भर

हैं, जो ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन के प्रमुख स्रोत हैं। इन परियोजनाओं के परिणामस्वरूप जलवायु परिवर्तन की प्रक्रियाएँ और तेज होती हैं, जिनका प्रभाव अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़ और तापमान असंतुलन के रूप में सामने आता है। पहाड़ों पर पर्यटकों की भारी भीड़ के साथ बढ़ती आबादी का बोझ, भूस्खलन, जैसी चुनौतियों और टूरिज्म डेवलेपमेंट के नाम पर हो रहे डी अनियोजित विकास के कहर से पहाड़ बिखर रहे हैं। जोशीमठ के दरकते पहाड़ों की आपदा ने जो पैगाम दिया था, उसे भी गंभीरता से नहीं लिया गया न 2025 में आए भीषण बाढ़ रूपी प्रलय को जहां पुलों व सडकों का सैलाब में बह जाना चिंताजनक विषय है (https://www.divyahimachal.com/2023/09/the&challenge&of&development&to&the&stability&of&the&mountains/) इस संदर्भ में यह तर्क महत्वपूर्ण है कि जलवायु संकट केवल वैश्विक समस्या नहीं, बल्कि राष्ट्रीय विकास नीतियों की राजनीतिक प्राथमिकताओं से भी गहराई से जुड़ा हुआ है।

4.6 पर्यावरणीय शासन की सीमाएँ –

पर्यावरणीय प्रभावों की गंभीरता के बावजूद, पर्यावरणीय शासन तंत्र अपेक्षित प्रभावशीलता नहीं दिखा पा रहा है। पर्यावरणीय स्वीकृति प्रक्रियाएँ, निगरानी तंत्र और दंडात्मक उपाय कई बार राजनीतिक दबावों और कॉर्पोरेट हितों के कारण कमजोर पड़ जाते हैं। इससे विकास परियोजनाओं के दीर्घकालिक पर्यावरणीय परिणामों को रोकने में असफलता मिलती है।

उपर्युक्त विश्लेषण स्पष्ट करता है कि भारत की पर्यावरणीय क्षरण के समाधान हेतु नीति निर्माण में राजनीतिक जवाबदेही, पर्यावरणीय न्याय और पारिस्थितिक संवेदनशीलता को केंद्रीय स्थान देना अनिवार्य है।

5. राजनीतिक परिप्रेक्ष्य और नीति विश्लेषण –

भारत में समकालीन आर्थिक विकास का स्वरूप, उसकी प्राथमिकताएँ और उसके पर्यावरणीय परिणाम किस प्रकार राजनीतिक और आर्थिक हितों से निर्धारित होते हैं उसका निम्नलिखित रूप से विश्लेषण किया गया है :

5.1 विकास का राजनीतिक विमर्श : 'विकास बनाम पर्यावरण' का चुनावीकरण –

हाल के वर्षों में भारत में "विकास" एक प्रमुख चुनावी विमर्श के रूप में उभरा है। राजनीतिक दलों द्वारा विकास परियोजनाओं को राष्ट्र निर्माण, रोजगार सृजन और वैश्विक प्रतिस्पर्धा के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। "सबका साथ, सबका विकास", "डबल इंजन सरकार", "विश्व–स्तरीय अवसंरचना" जैसे नारों के माध्यम से विकास को राजनीतिक वैधता प्रदान की जाती है।

इस विमर्श में पर्यावरणीय संरक्षण को अक्सर विकास की गति में बाधा के रूप में चित्रित किया जाता है, जिससे जनता के बीच यह धारणा बनती है कि पर्यावरणीय नियम आर्थिक प्रगति के विरोधी हैं। परिणामस्वरूप, पर्यावरणीय चिंताओं को राजनीतिक विमर्श में हाशिए पर धकेल दिया जाता है। भारतमला परियोजना के विरोध को इस संदर्भ में देखा जा सकता है जहां पर्यावरण के ऊपर आर्थिक विकास को महत्व दिया गया।

5.2 राजनीतिक विचारधारा और नीति निर्माण की दिशा –

विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन इस बात पर भी निर्भर करता है कि सत्ता में कौन–सी राजनीतिक विचारधारा प्रभावी है। उदारवादी (Liberal) विचारधाराएँ आमतौर पर पर्यावरण–संवेदनशील होती हैं, और जनभागीदारी पर जोर देती हैं। जबकि उद्यम–प्रेरित राष्ट्रवादी (Pro-growth nationalist) दृष्टिकोण वाले दल

तीव्र आर्थिक विकास को प्राथमिकता देते हैं, भले ही पर्यावरणीय कानूनों को लचीला क्यों न करना पड़े। उदाहरण : पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन अधिसूचना (EIA Notification) 2020 के ड्राफ्ट में पर्यावरणीय स्वीकृति प्रक्रिया को 'सरलीकृत' करने का प्रयास किया गया, जो बड़े पैमाने पर उद्योगपतियों के लिए फायदेमंद था लेकिन पर्यावरणीय निगरानी के लिए नुकसानदायक।

इस प्रकार की नीतिगत प्रवृत्तियाँ पर्यावरणीय सुरक्षा को कमजोर करती हैं और नीति निर्माण में कॉर्पोरेट हितों को अधिक स्थान देती हैं (Levien, 2018; Jenkins, 2019)

5.3 नियामक संस्थाएँ, न्यायपालिका और राजनीतिक हस्तक्षेप –

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (CPCB), पर्यावरण मंत्रालय (MoEFCC), राष्ट्रीय हरित अधिकरण (NGT) जैसी संस्थाएं पर्यावरण संतुलन बनाए रखने के लिए बनाई गई हैं लेकिन व्यवहार में इन संस्थाओं की स्वायत्तता कई बार राजनीतिक दबावों और प्रशासनिक प्राथमिकताओं के कारण सीमित हो जाती है। कुछ मामलों में बड़ी परियोजनाओं को शीघ्र स्वीकृति प्रदान की गई, जबकि पर्यावरणीय जोखिमों का समुचित आकलन नहीं किया गया। उदाहरण : स्टैच्यू ऑफ यूनिटी प्रोजेक्ट को पर्यावरणीय मूल्यांकन प्रक्रिया से छूट दी गई, जबकि यह एक पारिस्थितिक रूप से संवेदनशील क्षेत्र में स्थित था। यह स्थिति पर्यावरणीय शासन की संरचनात्मक कमजोरियों को उजागर करती है। शहरी झीलों पर हुए व्यापक अध्ययनों में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि बहु–एजेंसी नियंत्रण, अस्पष्ट अधिकार–क्षेत्र और कमजोर संस्थागत जवाबदेही झील क्षरण के प्रमुख कारण हैं। राष्ट्रीय हरित अधिकरण (NGT) और राज्य उच्च न्यायालय द्वारा बेलंदूर झील (बेंगलूर) के पुनर्जीवन हेतु कई निर्देश जारी किए गए (द इंडियन एक्सप्रेस. 2023, बिजनेस स्टैंडर्ड, 2018) किन्तु नीति–क्रियान्वयन और संस्थागत विफलता के कारण झीलों की दुर्दशा में खास सुधार नहीं हुआ है।

5.4 'क्रोनी कैपिटलिज्म' –

भारत की विकास योजनाओं में कॉर्पोरेट क्षेत्र की भूमिका अत्यंत प्रभावशाली रही है। औद्योगिक गलियारे, खनन परियोजनाएँ और विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZs) अक्सर बड़े औद्योगिक घरानों के निवेश हितों के अनुरूप विकसित किए जाते हैं। इस प्रक्रिया में भूमि अधिग्रहण, पर्यावरणीय अनुमति और श्रम कानूनों में ढील दी जाती है। हसदेव अरण्य क्षेत्र में कोयला खनन के कारण पेड़ों की कटाई के विरोध में स्थानीय आदिवासी समुदाय, विशेषकर महिलाएँ, जल, जंगल और जमीन बचाने के लिए लड़ रहे हैं। इस क्षेत्र को कभी 'नो–गो जोन' (खनन के लिए प्रतिबंधित क्षेत्र) घोषित किया गया था, लेकिन बाद में खनन को मंजूरी दी गई. साथ ही छत्तीसगढ़ सरकार ने वन भूमि के डायवर्जन की सिफारिश भी की है। कई मामलों में वन भूमि डायवर्जन Forest Rights Act, 2006 तथा ग्राम सभा की सहमति की भावना का उल्लंघन करता है (Down To Earth, 2023)

राजनीतिक अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से इसे 'क्रोनी कैपिटलिज्म' के रूप में देखा जा सकता है, जहाँ राज्य और कॉर्पोरेट हितों के गठजोड़ के परिणामस्वरूप पर्यावरणीय और सामाजिक लागतों की अनदेखी होती है (Levien, 2018; Jenkins, 2019) इसका प्रभाव सबसे अधिक उन समुदायों पर पड़ता है जिनकी राजनीतिक आवाज अपेक्षाकृत कमजोर होती है।

5.5 विकास, पर्यावरण और लोकतांत्रिक जवाबदेही –

लोकतांत्रिक व्यवस्था में विकास योजनाओं से जुड़े निर्णयों में पारदर्शिता, जनभागीदारी और जवाबदेही

अनिवार्य मानी जाती है। किंतु व्यावहारिक स्तर पर कई विकास परियोजनाएँ सीमित परामर्श और न्यूनतम सार्वजनिक विमर्श के साथ लागू की जाती हैं।

पर्यावरणीय स्वीकृति प्रक्रियाओं में जन–सुनवाई को औपचारिक कर दिया जाना लोकतांत्रिक मूल्यों के क्षरण को दर्शाता है। इससे न केवल पर्यावरणीय संरक्षण कमजोर पड़ता है, बल्कि जनता और राज्य के बीच विश्वास का संकट भी उत्पन्न होता है। विगत वर्षों में देश के कई राज्यों जैसे छत्तीसगढ़, ओडिशा, झारखंड में मनमाने ढंग से आर्थिक विकास के नाम पर काटे जा रहे जंगलों का स्थानीय आदिवासियों और नागरिकों द्वारा विरोध किए जाने के बावजूद सरकारें अपनी मनमानी कर रही हैं। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 100 मीटर के नीचे की अरावली पहाड़ियों को पहाड़ नहीं माना जाना (The Hindu.) भी आर्थिक हितों के लिए पर्यावरण को नजरंदाज करना है।

उपर्युक्त विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि भारत की विकास योजनाएँ मूलतः राजनीतिक सत्ता, विचारधारा और आर्थिक हितों के अंतर्संबंध से निर्मित होती हैं। पर्यावरणीय संकट को केवल प्रशासनिक अक्षमता के रूप में नहीं, बल्कि राजनीतिक प्राथमिकताओं के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में समझना आवश्यक है। जब तक विकास नीति में पर्यावरणीय सरोकारों को केंद्रीय स्थान नहीं दिया जाएगा, तब तक विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन स्थापित करना संभव नहीं होगा।

6. निष्कर्ष (Final Conclusion) –

यह शोध अध्ययन भारत की समकालीन आर्थिक विकास योजनाओं और उनके पर्यावरणीय प्रभावों को राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में समझने का एक समालोचनात्मक प्रयास है।

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान विकास मॉडल ने जहाँ एक ओर आर्थिक वृद्धि, अवसंरचनात्मक विस्तार और औद्योगिक प्रगति को बढ़ावा दिया है, वहीं दूसरी ओर इसने पर्यावरणीय असंतुलन, प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण और सामाजिक–पारिस्थितिक संकट को भी गहराया है (सिंह, 2015, IPCC, 2023) शोध के निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि विकास को राजनीतिक वैधता प्रदान करने के लिए पर्यावरणीय सरोकारों को अक्सर गौण कर दिया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरणीय प्रभाव आकलन, नियामक संस्थाएँ और जन–भागीदारी की प्रक्रियाएँ कमजोर होती हैं।

अध्ययन सरकार की आर्थिक नीतियों एवं पर्यावरणीय नीतियों में भारी असंगति की ओर इशारा करता है, पर्यावरणीय न्याय के लिए उठ रही आवाजों को जिस तरह दबाने की कोशिश कि जाती उससे सरकारी नीतियों की मंशा साफ साफ झलकती है। कॉर्पोरेट हितों और राज्य सत्ता के बीच बढ़ता गठजोड़ विकास योजनाओं को अधिक पूँजी–केंद्रित बनाता जा रहा है। इस प्रक्रिया में पर्यावरणीय और सामाजिक लागतें उन समुदायों पर स्थानांतरित हो जाती हैं जिनकी राजनीतिक और आर्थिक शक्ति सीमित है। इस प्रकार, विकास और पर्यावरण के बीच असंतुलन पर्यावरणीय अन्याय के रूप में सामने आता है।

इन आर्थिक परियोजनाओं के निर्माण फलस्वरूप स्थानीय किसानों व आदिवासियों को विस्थापन, आजीविक की हानि, और सामाजिक असमानता का सामना करना पड़ता है। राजनीतिक पारिस्थितिकी और पर्यावरणीय न्याय के सैद्धांतिक ढाँचे के माध्यम से यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि जब तक विकास नीति में पर्यावरण को केवल एक सहायक या बाधक तत्व के रूप में देखा जाएगा, तब तक सतत विकास का लक्ष्य

प्राप्त नहीं किया जा सकता। पर्यावरणीय संरक्षण को विकास की प्रक्रिया का अभिन्न अंग बनाना न केवल पारिस्थितिक दृष्टि से आवश्यक है, बल्कि लोकतांत्रिक जवाबदेही और सामाजिक न्याय के लिए भी अनिवार्य है। अंततः यह शोध यह सुझाव देता है कि भारत में विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए आर्थिक वृद्धि पर केंद्रित विकास मॉडल के स्थान पर ऐसा विकास दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है जो पर्यावरणीय स्थिरता, पारदर्शिता, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक मूल्यों को समान रूप से महत्व देता हो।

7. नीतिगत सुझाव (Policy Recommendations) –

इस अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर निम्नलिखित नीतिगत सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं :

7.1 पर्यावरणीय प्रभाव आकलन को एक औपचारिक स्वीकृति प्रक्रिया के बजाय वैज्ञानिक और स्वतंत्र मूल्यांकन तंत्र के रूप में पुर्नस्थापित किया जाना चाहिए। इसके लिए EIA रिपोर्ट तैयार करने वाली एजेंसियों की स्वतंत्रता सुनिश्चित की जाए, परियोजना स्वीकृति से पूर्व संचयी (Cumulative Impact) प्रभावों का मूल्यांकन अनिवार्य किया जाए, पोस्ट–क्लीयरेंस मॉनिटरिंग को कानूनी रूप से बाध्यकारी बनाया जाए (MoEFCC, 2021)

7.2 नियामक संस्थाओं की स्वायत्तता और क्षमता निर्माण –

पर्यावरणीय शासन को प्रभावी बनाने के लिए MoEFCC, CPCB, NGT और राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों को राजनीतिक दबावों से मुक्त कर संस्थागत स्वायत्तता प्रदान की जानी चाहिए। साथ ही तकनीकी विशेषज्ञों की नियुक्ति, डेटा–आधारित निगरानी प्रणाली, और दंडात्मक प्रावधानों के प्रभावी क्रियान्वयन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

7.3 जन-भागीदारी और लोकतांत्रिक पारदर्शिता का विस्तार –

विकास परियोजनाओं से जुड़े निर्णयों में स्थानीय समुदायों, नागरिक समाज और स्वतंत्र विशेषज्ञों की भागीदारी अनिवार्य की जानी चाहिए। इसके लिए जन–सुनवाई को वास्तविक संवाद का मंच बनाया जाए, परियोजना से संबंधित सभी दस्तावेज स्थानीय भाषा में सार्वजनिक किए जाएँ, पर्यावरणीय सूचना तक नागरिकों की पहुँच को सुदृढ़ किया जाए।

7.4 पर्यावरणीय न्याय और हाशिए के समुदायों की सुरक्षा –

नीति निर्माण में यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि विकास योजनाओं का बोझ असमान रूप से गरीब, आदिवासी और ग्रामीण समुदायों पर न पड़े। इसके लिएरू भूमि अधिग्रहण में "पूर्व–सहमति" (Prior Informed Consent) को अनिवार्य किया जाए, पुनर्वास और मुआवजा नीतियों को आजीविका–केंद्रित बनाया जाए, पर्यावरणीय अन्याय से प्रभावित समुदायों के लिए विशेष संरक्षण तंत्र विकसित किए जाएँ।

7.5 सतत विकास और हरित अर्थव्यवस्था की ओर संक्रमण –

दीर्घकालिक पर्यावरणीय स्थिरता के लिए विकास नीतियों को हरित अर्थव्यवस्था (Green Economy) की दिशा में पुनः उन्मुख करना आवश्यक है। इसके अंतर्गत नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों में निवेश बढ़ाया जाए, ऊर्जा दक्ष शहरी नियोजन को प्रोत्साहन दिया जाए, कार्बन उत्सर्जन को कम करने हेतु कड़े मानक लागू किए जाएँ।

7.6 राजनीतिक जवाबदेही और नीति मूल्यांकन –

पर्यावरणीय नीतियों और विकास योजनाओं के प्रभाव का नियमित स्वतंत्र मूल्यांकन किया जाना चाहिए। इसके लिए संसद और राज्य विधानसभाओं में पर्यावरणीय प्रदर्शन की वार्षिक समीक्षा, नीति विफलताओं के लिए

स्पष्ट उत्तरदायित्व तंत्र, और पर्यावरणीय निर्णयों में नैतिक तथा राजनीतिक जवाबदेही सुनिश्चित की जानी चाहिए।

इस प्रकार, पर्यावरणीय संकट के समाधान हेतु राजनीतिक इच्छाशक्ति, संस्थागत सुधार और लोकतांत्रिक सहभागिता अनिवार्य है। यदि विकास नीति में पर्यावरणीय स्थिरता और सामाजिक न्याय को केंद्रीय स्थान दिया जाता है, तो भारत एक अधिक संतुलित, समावेशी और टिकाऊ विकास पथ की ओर अग्रसर हो सकता है।

8. संदर्भ ग्रन्थ (References) –

1. सिंह, एम. (2015. भारत में विकास बनाम पर्यावरण : नीतिगत विरोधाभास, नई दिल्ली : समाज और पर्यावरण प्रकाशन।
2. जोशी, पी.,– शर्मा, के. (2018). औद्योगिक गलियारों के विस्तार से ग्रामीण पारिस्थितिकी पर प्रतिकूल प्रभाव, भारतीय सामाजिक विज्ञान पत्रिका : 12(3), 45—60.
3. नेहरू विश्वविद्यालय शोध समूह. (2022). विकास और राजनीतिक अर्थशास्त्र : भारत का विश्लेषण, दिल्ली : नेहरू विश्वविद्यालय प्रकाशन।
4. रामचंद्र, टी. वी., एवं भरत, एच. ए. (2019). बेंगलुरु में शहरीकरण और झीलों का क्षरण, जर्नल ऑफ एनवायरनमेंटल मैनेजमेंट : 246, 218—232।
5. Levien, M. (2018). Dispossession without development : Land grabs in neoliberal India; Oxford University Press.
6. Jenkins, R. (2019). Coal, power and the state in India; Oxford University Press.
7. Economic and Political Weekly. (2020). चारधाम सड़क परियोजना और हिमालयी पर्यावरण, EPW: 55(10), 23–30.
8. द इंडियन एक्सप्रेस. 2023
9. timesofindia.indiatimes.com
10. Down To Earth (2023)
11. The Hindu; www_thehindu.com.
12. Ministry of Environment, Forest and Climate Change [MoEFCC]. (2021). Environmental Impact Assessment Notifications and Guidelines; New Delhi: Government of India.
13. Government of India. (2014). Make in India: Transforming India into a Global Manufacturing Hub; New Delhi: Department for Promotion of Industry and Internal Trade.
14. Government of India. (2015). Smart Cities Mission: Guidelines and Framework; New Delhi: Ministry of Housing and Urban Affairs.
15. National Highways Authority of India [NHAI]. (2017). Bharatmala Project: Road Infrastructure Development; New Delhi: NHAI.
16. Indian Railways. (2014). Dedicated Freight Corridor: Project Overview; New Delhi: Ministry of Railways.

17. Intergovernmental Panel on Climate Change [IPCC]. (2023). Sixth Assessment Report: Climate Change 2023 – Impacts, Adaptation and Vulnerability. Geneva: IPCC.
18. Ministry of Environment, Forest and Climate Change [MoEFCC]. (2021). New Delhi: Government of India.
19. Atal Mission for Rejuvenation and Urban Transformation [AMRUT]. (2015). AMRUT Mission Document. New Delhi: Ministry of Housing and Urban Affairs.
20. https://www.jansatta.com/national/india-mountains-and-forests-are-being-harmed-by-development-work/3117339/
21. https://www.divyahimachal.com/2023/09/the-challenge-of-development-to-the-stability-of-the-mountains/

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 172-178
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्राचीन नालंदा महाविहार का कृषि–आधारित अर्थशास्त्र : 200 गांवों के अनुदान और संसाधन प्रबंधन का विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रभात यादव
शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

सारांश :

प्राचीन नालंदा महाविहार, जो पाँचवीं से बारहवीं शताब्दी ईस्वी तक एशिया के बौद्ध बौद्धिक जगत का निर्विवाद केंद्र था, का अस्तित्व केवल दार्शनिक विमर्शों तक सीमित नहीं था। यह संस्था एक जटिल और सुव्यवस्थित आर्थिक इकाई के रूप में भी कार्य करती थी। प्रस्तुत शोध पत्र नालंदा की 'कृषि–आधारित' अर्थव्यवस्था के भौतिक आधारों का अन्वेषण करता है, जिसकी स्थिरता मुख्य रूप से कृषि–आधारित अधिशेष और भूमि अनुदानों पर टिकी थी। यह अध्ययन दर्शाता है कि नालंदा को प्राप्त '200 गांवों' का अनुदान केवल एक सांख्यिकीय तथ्य नहीं, बल्कि यह गुप्त और पाल कालीन भारत में परिवर्तित होती आर्थिक क्षमता और राज्य व धर्म के मध्य संबंधों का प्रतीक है। ह्वेनत्सांग और अन्य चीनी यात्रियों के विवरणों के अनुसार, 10,000 से अधिक भिक्षुओं और छात्रों की विशाल आबादी के निर्वाह के लिए एक सुनियोजित संसाधन प्रबंधन प्रणाली अनिवार्य थी। यह शोध पत्र तर्क देता है कि यह व्यय केवल राजाओं के दान से नहीं, बल्कि एक विकेंद्रीकृत ग्राम–प्रबंधन प्रणाली, उन्नत जल प्रबंधन (आहर–पाइन प्रणाली) और व्यवस्थित कराधान के माध्यम से वहन किया जाता था। ग्राम–सीलों की पुरातात्विक प्राप्ति यह सिद्ध करती है कि महाविहार और ग्रामीण समुदायों के बीच एक संस्थागत नियंत्रण और स्थानीय स्वायत्तता का संतुलन बना हुआ था। अंततः, यह अध्ययन नालंदा की अर्थव्यवस्था को एक श्हाइब्रिड मॉडलश के रूप में परिभाषित करता है, जहाँ कृषि मुख्य आधार थी, लेकिन उसमें सीमित व्यापार और शिल्प उत्पादन का भी समावेश था। यह शोध यह भी रेखांकित करता है कि अनुदानों पर अत्यधिक निर्भरता ने किस प्रकार कालांतर में सामंती प्रवृत्तियों को जन्म दिया और बाह्य आक्रमणों के समय नालंदा के पतन का मार्ग प्रशस्त किया।

मुख्य शब्द : नालंदा महाविहार, देवदान, कृषि अधिशेष, संसाधन प्रबंधन, ग्राम–सीलें, आहर–पाईन, घोषरावाँ, पाल वंश।

प्राचीन भारतीय इतिहास के पन्नों में नालंदा महाविहार का नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। यह महाविहार न केवल अपनी शैक्षणिक उत्कृष्टता, तर्कशास्त्र और विज्ञान के लिए जाना जाता था, बल्कि यह तत्कालीन भारत की सामाजिक–आर्थिक संरचना का एक सूक्ष्म प्रतिरूप भी था। पाँचवीं शताब्दी में गुप्त सम्राट कुमारगुप्त प्रथम द्वारा इसकी स्थापना के साथ ही, ज्ञान के इस केंद्र को राज्य का संरक्षण प्राप्त हुआ। हालाँकि, एक संस्था जो हजारों मील दूर से आने वाले छात्रों और विद्वानों को निःशुल्क शिक्षा, आवास और भोजन प्रदान करती हो, वह बिना एक ठोस आर्थिक आधार के संचालित नहीं हो सकती थी (अल्तेकर 156)। इस शोध का केंद्रीय प्रश्न यही है कि एक गैर–उत्पादक वर्ग (भिक्षु और छात्र), जो स्वयं भौतिक उत्पादन में भाग नहीं लेता था, की विशाल आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे होती थी? इसका उत्तर तत्कालीन कृषि–अर्थव्यवस्था के अधिशेष वितरण में छिपा है। गुप्त काल और उसके पश्चात के पाल काल में, भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप बदल रहा था। मुद्रा अर्थव्यवस्था के क्रमिक पतन और भूमि अनुदानों की बढ़ती प्रथा ने एक ऐसी व्यवस्था को जन्म दिया, जहाँ राजा धार्मिक पुण्य और राजनीतिक वैधता प्राप्त करने के लिए मंदिरों और विहारों को कर–मुक्त ग्राम दान में देते थे (शर्मा 45)।

ऐतिहासिक साक्ष्य बताते हैं कि अपने उत्कर्ष काल में नालंदा लगभग 200 से अधिक ग्रामों के राजस्व पर निर्भर था। यह संख्या केवल एक आंकड़ा नहीं, बल्कि उस विशाल रसद प्रबंधन प्रणाली की ओर इशारा करती है, जिसमें अनाज का संग्रह, भंडारण, परिवहन और वितरण शामिल था। ह्वेनत्सांग का यह कथन कि महाविहार में दस मंदिर और गगनचुंबी नौ मंजिला पुस्तकालय विद्यमान थे, इससे यह स्पष्ट होता है कि इनके रखरखाव के लिए निरंतर धन और श्रम की आवश्यकता थी (झा 112)। प्रस्तुत अध्ययन पुरातात्विक साक्ष्यों, जैसे कि ग्राम सीलें, ताम्रपत्र और चीनी यात्रियों के वृत्तांतों का विश्लेषण करते हुए यह समझने का प्रयास करता है कि नालंदा ने किस प्रकार एक राज्य–संरक्षित आर्थिक इकाई के रूप में अपनी भूमिका निभाई और कैसे कृषि अधिशेष का प्रबंधन किया गया।

200 गाँवों की अवधारणा : ऐतिहासिक स्रोत और अनुमान :

नालंदा से संबद्ध '200 गांवों' की संख्या को प्रायः एक निश्चित तथ्य के रूप में उद्धृत किया जाता है, किंतु ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक स्थिर इकाई नहीं थी। ऐतिहासिक विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि यह संख्या किसी एक विशिष्ट समय बिंदु पर स्थिर नहीं थी, बल्कि यह संस्था के क्रमिक विकास और विभिन्न राजवंशों के संरक्षण के साथ घटती–बढ़ती रही। सातवीं शताब्दी में जब चीनी यात्री ह्वेनत्सांग भारत आया, तो उसने उल्लेख किया कि तत्कालीन सम्राट हर्षवर्धन ने नालंदा को 100 गांवों का राजस्व प्रदान किया था। इन गांवों के 200 गृहस्थ प्रतिदिन महाविहार को चावल, घी और दूध की आपूर्ति करते थे। हालाँकि, जब बाद में इत्सिंग भारत आया, तो उसने उल्लेख किया कि नालंदा के अधिकार क्षेत्र में 200 से अधिक गांव थे। यह वृद्धि पाल शासकों, विशेषकर धर्मपाल और देवपाल के शासनकाल में हुए व्यापक भूमि अनुदानों को दर्शाती है (गोपाल 32)। देवपाल के मुंगेर ताम्रपत्र व नालंदा ताम्रपत्र अभिलेखों से पुष्टि होती है कि उसने सुवर्णद्वीप (वर्तमान इंडोनेशिया) के शैलेन्द्र वंशीय राजा बालपुत्रदेव के अनुरोध पर नालंदा में बने एक विहार के रखरखाव के लिए 5 गांवों का दान दिया था (मजूमदार 210)। अतः, '200 गाँव' को नालंदा की अधिकतम आर्थिक क्षमता के प्रतीकात्मक सूचक के रूप में देखा जाना चाहिए। यह संख्या राजनीतिक शक्ति के उतार–चढ़ाव के साथ परिवर्तित होती रही।

पुरातात्विक उत्खनन में नालंदा से प्राप्त सैकड़ों मिट्टी की मुद्राएँ (सीलें/मुहरें) जिन पर विभिन्न ग्रामों (जैसे– 'श्री नालंदा महाविहार आर्य भिक्षु संघस्य') के नाम अंकित हैं, यह प्रमाणित करती हैं कि इन गांवों का प्रशासन सीधे महाविहार के नियंत्रण में था। ये सीलें केवल पहचान पत्र नहीं थीं, बल्कि जटिल संसाधन वितरण और प्रशासनिक अधिकार का प्रमाण थीं (रे 70)। राजनीतिक दृष्टिकोण से, राजाओं द्वारा इतने बड़े पैमाने पर गांवों का अनुदान देना केवल धार्मिक कार्य नहीं था। यह राज्य की वैधता को स्थापित करने का एक उपकरण भी था। दूर–दराज के क्षेत्रों में, जहाँ केंद्रीय सत्ता की पकड़ कमजोर हो सकती थी, वहां नालंदा जैसी प्रतिष्ठित संस्था को भूमि अनुदान देकर राजा अपनी उपस्थिति और प्रभाव को परोक्ष रूप से बनाए रखते थे।

ऐतिहासिक संदर्भ : नालंदा का उदय और आर्थिक संरचना :

नालंदा की अर्थव्यवस्था को समझने के लिए, हमें गुप्त काल से लेकर पाल काल तक के आर्थिक संक्रमण को समझना होगा। गुप्त काल (लगभग 320–550 ईस्वी) को भारतीय इतिहास का 'क्लासिकल युग' माना जाता है, जहाँ कृषि और व्यापार दोनों उन्नत अवस्था में थे। कुमारगुप्त प्रथम द्वारा नालंदा की स्थापना के समय, इसे दिए गए प्रारंभिक अनुदान संभवतः छोटे और सीमित थे। उस समय तक, भूमि अनुदान मुख्य रूप से ब्राह्मणों (अग्रहार) तक सीमित थे, लेकिन गुप्तों ने बौद्ध संस्थाओं को भी भूमि देकर धार्मिक सहिष्णुता और राज्य संरक्षण का परिचय दिया। हर्षवर्धन के काल (606–647 ईस्वी) तक आते–आते, भू–राजस्व प्रशासन में विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया तेज हो गई थी। हर्ष ने न केवल 100 गांवों का राजस्व दिया, बल्कि उसने खुद को 'महायान बौद्ध धर्म' के संरक्षक के रूप में प्रस्तुत किया। इस काल में कृषि का विस्तार जंगलों को साफ करके नई बस्तियां बसाने के रूप में हो रहा था, और विहारों को दी गई बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाने का कार्य भिक्षु संघों के निर्देशन में होता था (गोपाल 32)। पाल वंश (8वीं–12वीं शताब्दी) के दौरान, पूर्वी भारत में कृषि अर्थव्यवस्था का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। पाल शासक, जो स्वयं बौद्ध थे, ने नालंदा और विक्रमशिला जैसे महाविहारों को अभूतपूर्व संरक्षण दिया। देवपाल के शासनकाल में नालंदा को प्राप्त अनुदान अपने चरम पर थे। पालकालीन ताम्रपत्रों में स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है कि ये अनुदान 'सोद्देश' (उद्देश्य सहित) और 'सपरिकर' (सभी करों सहित) दिए जाते थे। इसका अर्थ था कि राज्य ने अपने वित्तीय और प्रशासनिक अधिकार महाविहार को हस्तांतरित कर दिए थे (मजूमदार 210)। पुरातात्विक साक्ष्य, विशेष रूप से नालंदा के निकटवर्ती घोषरावां (घोषरावन) और अन्य पुरास्थलों से प्राप्त अवशेष, यह दर्शाते हैं कि कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के लिए सुनियोजित प्रयास किए गए थे। यहाँ पाई गई जल प्रबंधन संरचनाएँ यह बताती हैं कि क्षेत्र में धान की खेती, जो अत्यधिक जल की मांग करती है, को आहर–पाइन प्रणाली के माध्यम से समर्थित किया जाता था (फॉगलीन 868)। यह प्रणाली स्थानीय किसानों और महाविहार के बीच एक सहयोगात्मक संबंध स्थापित करती थी, जहाँ महाविहार बुनियादी ढांचे का निर्माण करता था और किसान श्रम प्रदान करते थे।

भूमि अनुदान प्रणाली : स्रोत और वितरण :

नालंदा की पूरी आर्थिक संरचना 'भूमि अनुदान' (सामान्यतः देवदान) की नींव पर खड़ी थी। यह प्रणाली केवल भूमि का हस्तांतरण नहीं थी, बल्कि उत्पादन के साधनों और उससे प्राप्त अधिशेष पर नियंत्रण का हस्तांतरण था। किसान अपनी आजीविका के लिए आवश्यक उपज को अपने पास रखने के बाद, जो अतिरिक्त उत्पादन करते थे, वह पहले राज्य के पास जाता था, लेकिन अनुदानों के माध्यम से यह अधिकार महाविहार को

मिल गया। यह अधिशेष नालंदा को एक श्पुनर्वितरणात्मक आर्थिक इकाईश में बदल देता है। महाविहार को प्राप्त अनाज, वस्त्र, तेल, और अन्य सामग्री का उपयोग भिक्षुओं के भोजन, कर्मचारियों के वेतन, और धार्मिक अनुष्ठानों के लिए किया जाता था। ह्वेनत्सांग का विवरण अत्यंत महत्वपूर्ण है, जो बताता है कि 2,000 भिक्षुओं के दैनिक भोजन और आवश्यकताओं की पूर्ति इन्ही अनुदानों से होती थी (अल्तेकर 162)। दानपत्रों की भाषा का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि अनुदान प्राप्तकर्ता (नालंदा महाविहार) को भूमि के ऊपर और नीचे के सभी संसाधनों का अधिकार मिलता था। गुप्त काल में कराधान की मुख्य मदें 'भाग' (उपज का हिस्सा), 'उदरंग' व 'उपरिकर' (समय—समय पर लिया जाने वाला कर) और 'हिरण्य' (नकद या सोने के रूप में कर) थीं। ये सभी कर अब सीधे राज्य के खजाने में न जाकर नालंदा के भंडार गृह में जमा होते थे (झा 98)। पाल काल में एक नई मद 'भोग' का महत्व बढ़ गया। भोग का तात्पर्य उन वस्तुओं से था जो दैनिक उपभोग के लिए दी जाती थीं, जैसे— फल, फूल, जलावन की लकड़ी और सब्जियां (गोपाल 45)। इस प्रणाली का सबसे ठोस पुरातात्विक प्रमाण 'ग्राम—सीलें' हैं। नालंदा के उत्खनन में मिलीं हजारों सीलें यह बताती हैं कि गांवों से आने वाले सामान को विधिवत सील करके भेजा जाता था ताकि भ्रष्टाचार या चोरी की संभावना न रहे। ये सीलें महाविहार और ग्राम समुदायों के बीच के संबंधों का जीवंत दस्तावेज हैं। जहाँ एक ओर ये सीलें ग्राम सभाओं की स्वायत्तता और उनकी अपनी पहचान (व्यावसायिक भूमिका) को दर्शाती हैं, वहीं दूसरी ओर ये महाविहार द्वारा संसाधनों पर कड़े नियंत्रण और निगरानी तंत्र का भी संकेत देती हैं (सन्याल)। यह व्यवस्था दर्शाती है कि नालंदा का प्रशासन पूर्णतः केंद्रीकृत नहीं था, बल्कि यह स्थानीय स्तर पर विकेंद्रीकृत प्रबंधन पर निर्भर था।

कराधान प्रणाली का अध्ययन : गुप्त और पाल काल में :

नालंदा की वित्तीय स्थिरता विकसित होती कर—प्रणाली पर निर्भर थी, जहाँ राजा का 'षष्ठांश' (1/6 उपज) अधिकार महाविहार को हस्तांतरित हो जाता था। गुप्त काल में मुख्य कर 'भाग' (कृषि उपज का हिस्सा), 'उदरंग', 'उपरिकर' और 'हिरण्य' (नकद कर) थे (झा 98)। 'अचात—भत—प्रवेश्य' अधिकार के कारण राज्य के अधिकारी इन गांवों में हस्तक्षेप या कर—वसूली नहीं कर सकते थे (गोपाल 45)। पाल काल में सामंती जटिलता के साथ 'भोग' कर का महत्व बढ़ा, जिसके तहत ग्रामीणों को भिक्षुओं के लिए दूध, सब्जी और जलावन जैसी दैनिक वस्तुएं अनिवार्य रूप से देनी पड़ती थीं। आर.एस. शर्मा इसे केंद्रीय राजस्व की हानि मानते हैं, किंतु इसने राज्य को बहुमूल्य 'सांस्कृतिक व नैतिक वैधता' प्रदान की (शर्मा 78)। इन्हीं कर—छूटों ने महाविहार को 10,000 लोगों के विशाल समुदाय का भरण—पोषण करने में सक्षम बनाया (मजूमदार 215)।

संसाधन प्रबंधन : कृषि, जल और शिल्प :

नालंदा का अस्तित्व केवल अनाज के ढेर पर नहीं, बल्कि उसके कुशल प्रबंधन पर निर्भर था। 200 गाँवों से प्राप्त संसाधनों का प्रबंधन एक चुनौतीपूर्ण कार्य था, जिसके लिए महाविहार ने एक विशेष प्रशासनिक विंग तैयार किया था। विकेंद्रीकृत प्रशासन और ग्राम सीलेंरू संसाधन प्रबंधन का मॉडल पूर्णतः एकाकी व 'ऊपर से नीचे' नहीं था बल्कि यह काफी हद तक विकेंद्रीकृत था। प्रत्येक दानित गाँव की अपनी ग्राम सभा होती थी, जिसके पास अपनी सील (मुहर) होती थी। जब भी अनाज या अन्य सामग्री गाँव से महाविहार भेजी जाती थी, तो उसे सीलबंद किया जाता था। रजत सन्याल का अध्ययन बताता है कि ये सीलें 'चालान' या रसीद के रूप में कार्य करती थीं, जिससे लेन—देन में पारदर्शिता बनी रहती थी (सन्याल)।

जल प्रबंधन (आहर-पाइन प्रणाली) :

दक्षिण बिहार (मगध क्षेत्र) की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि यहाँ की भूमि का ढलान दक्षिण से उत्तर की ओर है। नालंदा के आसपास के क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता को मानसून की अनिश्चितता से बचाने के लिए 'आहर–पाइन' प्रणाली विकसित की गई थी। 'आहर' एक प्रकार का जलाशय होता था जो तीन तरफ से तटबंधों से घिरा होता था, और 'पाइन' वे नहरें थीं जो नदी या बड़े जलाशयों से पानी को खेतों तक लाती थीं। पुरातात्विक सर्वेक्षणों, विशेष रूप से लार्स फॉगलीन के अध्ययन में, घोषरावां और अन्य नजदीकी स्थलों पर प्राचीन तटबंधों और जलाशयों के अवशेष मिले हैं। ये संरचनाएं सुनिश्चित करती थीं कि सूखा पड़ने पर भी महाविहार की खाद्य आपूर्ति बाधित न हो (फॉगलीन 870)।

शिल्प और गैर-कृषि उत्पादन :

यद्यपि कृषि मुख्य आधार थी, लेकिन नालंदा का अर्थशास्त्र केवल खेती तक सीमित नहीं था। महाविहार के निर्माण, मूर्तियों की स्थापना और दैनिक उपयोग के बर्तनों के लिए एक बड़े शिल्प–उद्योग की आवश्यकता थी। दिलीप चक्रवर्ती का शोध इंगित करता है कि स्थानीय कारीगर और मूर्तिकार महाविहार के साथ एक आर्थिक संबंध में बंधे थे। पत्थर की मूर्तियाँ, कांस्य प्रतिमाएं (नालंदा की कांस्य कला प्रसिद्ध थी) और ईंटों का निर्माण स्थानीय स्तर पर होता था, जो एक सक्रिय विनिमय प्रणाली को दर्शाता है (चक्रवर्ती, 145)। विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि नालंदा का संसाधन प्रबंधन 'सतत विकास' का एक प्रारंभिक मॉडल था, जहाँ उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों (मिट्टी, जल) का अधिकतम उपयोग किया जाता था बिना उन्हें नष्ट किए।

आर्थिक स्थिरता और चुनौतियां का विश्लेषण :

नालंदा की अर्थव्यवस्था का मूल्यांकन करते समय, हमें 'भारतीय सामंतवाद' की बहस को केंद्र में रखना होगा। आर.एस. शर्मा जैसे विद्वानों का मत है कि भूमि अनुदानों की इस प्रणाली ने भारत में सामंती व्यवस्था को जन्म दिया। जब राजा ने महाविहार को भूमि के साथ–साथ उस पर रहने वाले लोगों पर भी प्रशासनिक और न्यायिक अधिकार दे दिए, तो भिक्षु–संघ एक प्रकार का 'मध्यस्थ जमींदार' बन गया (शर्मा 67)।

सामंती प्रवृत्तियाँ और कृषक संबंध :

अनुदानों ने किसानों की स्थिति को प्रभावित किया। पहले जो किसान सीधे राजा के प्रति उत्तरदायी थे, अब वे विहार के अधिकारियों के प्रति जवाबदेह हो गए। ग्रेगरी शोफेन और अन्य विद्वानों का तर्क है कि इससे किसानों पर 'विष्टि' (बेगार या अनिवार्य श्रम) का बोझ बढ़ा। नालंदा के पतन का कारण केवल बाह्य आक्रमण नहीं, बल्कि इसकी आंतरिक संरचना में पनप रहा एक सामाजिक विरोधाभास भी था। जब भूमि अनुदानों ने भिक्षु–संघ को 'आध्यात्मिक मार्गदर्शक' से 'भू–स्वामी' में बदल दिया, तो स्थानीय कृषक समुदाय के साथ उनके संबंधों में तनाव आना स्वाभाविक था। ग्रेगरी शोफेन के अनुसार, इस काल में 'विष्टि' (अनिवार्य श्रम या बेगार) का प्रचलन बढ़ा, जिससे किसानों को मंदिरों और विहारों के लिए मुफ्त श्रम देना पड़ता था (शोफेन 56)। यह आर्थिक बोझ संभवतः किसानों के मन में संस्था के प्रति असंतोष का कारण बना। रामशरण शर्मा का तर्क यहाँ प्रासंगिक है कि इस सामंती व्यवस्था ने महाविहार को जनसामान्य से काट दिया, क्योंकि आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग अब आर्थिक शक्ति के गलियारे से होकर गुजरने लगा था (शर्मा 78)। अतः, यह परिकल्पना अत्यधिक तर्कसंगत प्रतीत होती है कि जब तुर्क आक्रमणकारी आए, तो स्थानीय आबादी ने महाविहार की रक्षा के लिए वह

प्रतिरोध नहीं दिखाया जो एक जन–आधारित संस्था के लिए अपेक्षित था। महाविहार की अत्यधिक निर्भरता राजकीय अनुदानों पर थी। आय के वैकल्पिक स्रोतों (जैसे व्यापार या स्वतंत्र उत्पादन) की कमी के कारण, अनुदान रुकते ही पूरी व्यवस्था ढह गई। जेम्स हैटजमान का विश्लेषण सही प्रतीत होता है कि 'संसाधन संकट' ने पतन को अवश्यंभावी बना दिया था (हैटजमान 12)। नवीन दृष्टि से, पुरातात्विक डेटा दर्शाता है कि नालंदा ने 'हाइब्रिड' अर्थव्यवस्था अपनाई, जहाँ कृषि के साथ व्यापार शामिल था (विलिस 10)।

निष्कर्ष :

प्राचीन नालंदा महाविहार का अध्ययन हमें यह समझने में मदद करता है कि प्राचीन भारत में 'ज्ञान' और 'धन' के बीच का संबंध कितना गहरा और जटिल था। ज्ञान का संरक्षण बिना ठोस आर्थिक आधार के असंभव है। '200 गांवों' का अनुदान केवल दान नहीं, बल्कि राज्य द्वारा निर्मित एक संस्थागत बंदोबस्ती थी। लार्स फॉगलीन के अध्ययन से स्पष्ट है कि अहर–पाइन प्रणाली जैसी जल प्रबंधन संरचनाओं ने सुनिश्चित किया कि सूखा पड़ने पर भी महाविहार की खाद्य आपूर्ति बाधित न हो। तथापि, जेम्स हैटजमान का विश्लेषण सही प्रतीत होता है कि अंततः 'संसाधन संकट' ने ही पतन को अवश्यंभावी बना दिया था। अनुदानों पर अत्यधिक निर्भरता ने संस्था को एक 'बंद अर्थव्यवस्था' की ओर धकेल दिया। अंततः, नालंदा का मॉडल हमें सिखाता है कि किसी भी संस्था की दीर्घकालिक स्थिरता के लिए 'वित्तीय स्वायत्तता' और 'सामाजिक जुड़ाव' दोनों का संतुलन अनिवार्य है।

संदर्भ सूची :

१. अल्तेकर, अनंत सदाशिव. एजुकेशन इन एंशेंट इंडिया. नंद किशोर एंड ब्रोस., 1944.

२. एशर, फ्रेडरिक एम. 'नालंदा : सिचुएटिंग लर्निंग इन इट्स लैंडस्केप्स.' द जर्नल ऑफ द इंटरनेशनल एसोसिएशन ऑफ बुद्धिस्ट स्टडीज, खंड 35, संख्या 1–2, 2012, पृष्ठ 1–20.

३. गोपाल, लल्लनजी. द इकोनॉमिक लाइफ ऑफ नॉर्दर्न इंडिया, सी. ए.डी. 700–1200. मोतीलाल बनारसीदास, 1965.

४. चक्रवर्ती, दिलीप के. आर्कियोलॉजिकल जियोग्राफी ऑफ द गंगा प्लेन. परमानेंट ब्लैक, 2001.

५. झा, द्विजेंद्र नारायण. एंशेंट इंडिया इन हिस्टोरिकल आउटलाइन. मनोहर, 1998.

६. थापर, रोमिला. ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया : वॉल्यूम 1. पेंगुइन, 1966.

७. फॉगलीन, लार्स. 'रिविजिटिंग हिन्टरलैंड लैंडस्केप्स ऑफ द नालंदा महाविहार.' हेरिटेज यूनिवर्सिटी जर्नल, खंड 11, संख्या 2, 2023, पृष्ठ 864–877.

८. मजूमदार, रमेश चंद्र. एंशेंट इंडिया. मोतीलाल बनारसीदास, 1977.

९. रे, हिमांशु प्रभा. 'द आर्कियोलॉजी ऑफ नालंदा महाविहार (सी. 400–1200 सीई).' साउथ एशियन स्टडीज, खंड 32, संख्या 1, 2016, पृष्ठ 65–79.

१०. विलिस, माइकल. 'द फॉर्मेशन ऑफ मिडल गंगेटिक आर्कियोलॉजी : द केस ऑफ कौशांबी.' साउथ एशियन स्टडीज, खंड 10, संख्या 1, 1994, पृष्ठ 1–20.

११. शर्मा, राम शरण. इंडियन फ्यूडलिज्म : सी. 300–1200. यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, 1965.

१२. शोफेन, ग्रेगरी. बोन्स, स्टोन्स, एंड बुद्धिस्ट मॉक्स. यूनिवर्सिटी ऑफ हवाई प्रेस, 1997.

१३. सन्याल, रजत. 'विलेज सील्स ऑफ नालंदा : अंडरस्टैंडिंग लिंकेजेस बिटवीन द मोनास्ट्री एंड इट्स एनवायरन्स.' अकाडेमिया.एडु, 2019.

१४. सिंह, ज्ञान प्रकाश. पॉलिटिकल थॉट इन एंशेंट इंडिया. डी.के. प्रिंटवर्ल्ड, 1993.

१५. हैटजमान, जेम्स. 'द अर्बन कंट्रीसाइड ऑफ अर्ली मेडीवल इंडिया : ए स्पेशल स्टडी ऑफ द हिन्टरलैंड ऑफ नालंदा.' इंडियन हिस्टोरिकल रिव्यू, खंड 18, संख्या 1–2, 1991, पृष्ठ 1–25.

१६. प्यालर्टसिनपैसर्न, कोंगपोप. 'द मोनास्टिक इकोनॉमी ऑफ नालंदा महाविहार.' जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, खंड 31, संख्या 1, 2021, पृष्ठ 1–25.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 179-186
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नील कमल के काव्य में नारी-संवेदना एवं स्त्री-विमर्श की संभावनाएँ

डॉ. सुनीता भारती
सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग
ए. जे. एम. कॉलेज, बनमनखी, पूर्णियाँ, बिहार।
(पूर्णियाँ विश्वविद्यालय, पूर्णियाँ)

सारांश :

समकालीन हिंदी कविता के संवेदनशील रचनाकार नील कमल का काव्य मानवीय संबंधों, श्रम की गरिमा और सामाजिक यथार्थ की गहरी पड़ताल करता है। उनके काव्य में नारी–संवेदना एक सूक्ष्म लेकिन मार्मिक धारा के रूप में उपस्थित है, जहाँ स्त्री को उसके घावों, संघर्षों और भावनात्मक गहराइयों के माध्यम से समझा गया है। नील कमल नारी को पारंपरिक अबला या देवी की छवि में नहीं बाँधते, अपितु उसे जीवन की जटिलताओं से जूझती, अपनी अस्मिता की खोज करती एक जीवंत इंसान के रूप में चित्रित करते हैं। उनकी कविताएँ नारी की आंतरिक पीड़ा को पुरुष की समझ की सीमा से जोड़कर एक मानवीय संवाद रचती हैं।

नील कमल का काव्य स्त्री–विमर्श की संभावनाओं को नई दिशा देता है। यह विमर्श केवल पीड़ा का वर्णन नहीं, बल्कि पितृसत्तात्मक संरचनाओं के प्रति एक सूक्ष्म प्रतिरोध है। नील कमल की संवेदना पुरुष कवि की सीमा को स्वीकार करते हुए भी नारी की पीड़ा को इतनी सहजता से अभिव्यक्त करती है कि वह पाठक को सोचने पर मजबूर कर देती है। उनका काव्य स्त्री–विमर्श को हाशिए से मुख्यधारा में लाता है, जहाँ नारी न केवल पीड़ित है, बल्कि जीवन की सार्थकता की खोज में सक्रिय भागीदार भी। यह दृष्टिकोण समकालीन हिंदी कविता में एक मानवीय और संतुलित नारीवादी चेतना का प्रतिनिधित्व करता है, जो नारी–सशक्तिकरण की ओर अग्रसर है बिना आक्रामकता के। अंततः, नील कमल का काव्य हमें याद दिलाता है कि सच्ची समझ घावों से ही शुरू होती है, और मुक्ति संवेदना की गहराई से।

बीजक शब्द : अबला, भावनात्मक, प्रकृति, पितृसत्ता, सहजता, आक्रोश, करुणा।

प्रस्तावना :

आधुनिक हिंदी काव्य धारा में नील कमल एक ऐसे संवेदनशील कवि के रूप में उभरे हैं, जिनकी रचनाएँ जीवन की सूक्ष्म अनुभूतियों, प्रकृति की सहजता और मानवीय संबंधों की गहराई को छूती हैं। उनकी कविताएँ न केवल व्यक्तिगत भावनाओं का आईना हैं, बल्कि सामाजिक संदर्भों में नारी के अस्तित्व, उसकी संवेदना और

संघर्ष को भी उजागर करती हैं। नील कमल का काव्य नारी–संवेदना एवं स्त्री–विमर्श की संभावनाओं से भरपूर है, जहाँ नारी को मात्र एक प्रतीक या आदर्श के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत, संवेदनशील और स्वतंत्र इकाई के रूप में चित्रित किया गया है। यह प्रस्तावना उनके काव्य में निहित इन आयामों की पड़ताल करने का प्रयास है। हिंदी साहित्य में स्त्री–विमर्श का इतिहास प्राचीन काल से जुड़ा हुआ है, किंतु आधुनिक युग में यह अधिक मुखर और वैचारिक रूप से परिपक्व हुआ है। छायावाद से लेकर नई कविता तक नारी को प्रकृति की कोमलता, ममता की मूर्ति या प्रेम की देवी के रूप में देखा गया, परंतु समकालीन कविता में नारी की अस्मिता, उसके दैनंदिन संघर्ष और पितृसत्तात्मक संरचनाओं के विरुद्ध विद्रोह प्रमुख हो गया है। नील कमल इस परंपरा के उत्तराधिकारी हैं। उनकी कविताएँ नारी की आंतरिक दुनिया को खोलती हैं, उसकी खुशी, दुख, इच्छाएँ और कुंठाएँ। वे नारी को समाज की सीमाओं में बंधी हुई नहीं दिखाते, बल्कि उसे मुक्त होने की संभावना प्रदान करते हैं। उदाहरणस्वरूप, उनकी कुछ रचनाओं में नारी की देह, उसकी कामनाएँ और भावनात्मक स्वतंत्रता को बिना किसी संकोच के अभिव्यक्त किया गया है, जो पारंपरिक हिंदी काव्य में दुर्लभ है।

नील कमल की नारी–संवेदना में एक गहन मानवीयता है। वे नारी को देवी के सिंहासन से उतारकर धरती पर लाते हैं, जहाँ वह सुख–दुख की साझेदार है, प्रेम की खोज में भटकती है और अपनी पहचान बनाने का प्रयास करती है। उनकी कविताओं में नारी की संवेदना प्रकृति से जुड़ी हुई मिलती है, जैसे कमल की पंखुड़ियाँ जो कीचड़ से निकलकर भी खिलती हैं। यह प्रतीकात्मकता नारी के संघर्ष और उत्थान को रेखांकित करती है। स्त्री–विमर्श के संदर्भ में उनकी रचनाएँ पितृसत्ता की जकड़न, वैवाहिक संबंधों की असमानता और नारी की मौन पीड़ा पर प्रकाश डालती हैं। वे नारी को मात्र पीड़ित नहीं दिखाते, बल्कि उसे सशक्त बनाने की संभावना भी सुझाते हैं। अनुवादक और चयनकर्ता के रूप में भी नील कमल ने अन्य कवियों की रचनाओं में हाशिए के स्वरों को केंद्र में लाया है, जिसमें नारी–स्वर प्रमुख है।

नील कमल का काव्य स्त्री–विमर्श की उन संभावनाओं को उजागर करता है जो समकालीन समाज में नारी की मुक्ति और समानता की ओर इशारा करती हैं। उनकी भाषा सरल होते हुए भी गहन है, जो पाठक को नारी की अंतर्दशा में उतारती है। यह काव्य न केवल नारी–संवेदना का दस्तावेज है, बल्कि एक आह्वान भी कि नारी को उसकी पूरी मानवीय गरिमा के साथ देखा जाए। इस अध्ययन में हम उनके काव्य की इन परतों को खोलेंगे, ताकि समझ सकें कि कैसे नील कमल ने हिंदी कविता को नारी के पक्ष में अधिक संवेदनशील और विमर्शपूर्ण बनाया है।

नील कमल का काव्य–परिचय :

समकालीन हिंदी काव्य के क्षितिज पर नील कमल एक संवेदनशील और बहुआयामी रचनाकार के रूप में स्थापित हैं। उनकी कविताएँ जीवन की सूक्ष्म अनुभूतियों, शहरी अस्तित्व की जटिलताओं, प्रकृति की सहज सौंदर्यता और मानवीय संबंधों की गहनता को व्यक्त करती हैं। नील कमल न केवल मौलिक कविता रचते हैं, बल्कि बांग्ला साहित्य के प्रमुख कवियों जैसे जीवनानन्द दाश, शक्ति चट्टोपाध्याय और प्रेमेन्द्र मित्र के अनुवादक के रूप में भी हिंदी जगत को समृद्ध कर रहे हैं। उनका काव्य सरल भाषा में गहन भावों को समेटे हुए है, जो पाठक को सहज ही अंतर्मन की गहराइयों में ले जाता है। नील कमल की रचनाएँ हिन्दवी जैसे मंचों पर व्यापक रूप से उपलब्ध हैं, जहाँ उनकी प्रतिनिधि कविताएँ जैसे सबसे खूबसूरत कविताएँ आदि पाठकों के बीच लोकप्रिय

हैं। उनके काव्य संग्रह, जैसे ''यह पेड़ों के कपड़े बदलने का समय है'' प्रकृति और पर्यावरण की चिंताओं को काव्यात्मक ढंग से उकेरते हैं। इसमें पेड़ों की शाखाएँ, मौसम की हरियाली और मानवीय हस्तक्षेप की पीड़ा को प्रतीकों के माध्यम से चित्रित किया गया है। उनकी कविताएँ अक्सर कलकत्ता (कोलकाता) शहर की स्मृतियों से जुड़ी होती हैं, रिक्शा की घंटियाँ, कॉफी हाउस की चर्चाएँ, कॉलेज स्ट्रीट की किताबें और शहर की रगों में दौड़ता बनारस का अंश। यह शहरी परिवेश उनकी रचनाओं में एक जीवंत पृष्ठभूमि बनता है, जहाँ इतिहास, वर्तमान और भविष्य का संवाद होता है।

नील कमल की काव्य–शैली में एक अनायास सहजता है। वे जटिल भावों को सरल शब्दों में व्यक्त करते हैं, जिससे उनकी कविताएँ आम पाठक से लेकर आलोचक तक सभी को स्पर्श करती हैं। उनकी रचनाओं में हाशिए के स्वर प्रमुख हैं, चाहे वह सामाजिक विद्रोह हो या व्यक्तिगत एकाकीपन। समालोचन जैसे मंचों पर उन्होंने अन्य कवियों की प्रिय कविताओं का चयन कर समकालीन हिंदी काव्य की विविधता को रेखांकित किया है। अनुवाद के क्षेत्र में उनका योगदान विशेष उल्लेखनीय है, बांग्ला की प्रकृति–संवेदना और मानवीय करुणा से भरी कविताओं को हिंदी में लाकर उन्होंने दो साहित्यिक परंपराओं के बीच सेतु का कार्य किया है।

नील कमल का काव्य केवल भावुकता तक सीमित नहीं है, इसमें कल्पनाशीलता और वास्तविकता का संतुलित मिश्रण है। वे जीवन की साधारण घटनाओं घास की महक, पत्तियों की सरसराहट, शहर की भीड़ को काव्य का विषय बनाते हैं, जो पाठक में एक गहन अनुभूति जगाता है। उनकी रचनाएँ समकालीन हिंदी कविता को अधिक संवेदनशील, समावेशी और वैश्विक बनाती हैं। यह काव्य–परिचय उनके रचना–संसार की केवल एक झलक हैय गहन अध्ययन से पता चलता है कि नील कमल हिंदी साहित्य की उन आवाजों में से एक हैं, जो परंपरा और आधुनिकता के बीच सुंदर संवाद रच रही हैं।

नील कमल के काव्य में नारी–संवेदना :

समकालीन हिंदी काव्य में नील कमल की रचनाएँ एक संवेदनशील पुरुष दृष्टि से नारी की आंतरिक दुनिया को छूती हैं। उनकी कविताएँ नारी को मात्र प्रतीक या आदर्श के रूप में नहीं देखतीं, बल्कि उसे जीवंत मानवीय अनुभवों वाली इकाई के रूप में प्रस्तुत करती हैं। नील कमल की नारी–संवेदना में करुणा, सहानुभूति और सूक्ष्म की गहराई है, जो पारंपरिक हिंदी काव्य की रोमांटिक या देवी–स्वरूप नारी छवि से अलग हटकर वास्तविक जीवन की जटिलताओं को उजागर करती है। उनकी रचनाएँ नारी की भावनात्मक स्वतंत्रता, संबंधों की उलझनें और समाज की अपेक्षाओं के बीच संघर्ष को व्यक्त करती हैं। नील कमल का काव्य मुख्यतः प्रकृति, शहरी जीवन और व्यक्तिगत स्मृतियों से जुड़ा है, किंतु इनमें नारी की संवेदना अप्रत्यक्ष रूप से व्याप्त है। उदाहरणस्वरूप, उनकी कविताओं में प्रकृति की कोमलता और परिवर्तन जैसे पेड़ों के कपड़े बदलने का समय या मौसम की हरियाली नारी की देह और भावनाओं की तरलता से जुड़ते हैं। यह प्रतीकात्मकता नारी की संवेदनशीलता को रेखांकित करती है, जहाँ वह कीचड़ से निकलकर भी खिलने वाली कमल की तरह संघर्ष करती हुई दिखाई देती है। उनकी रचनाएँ नारी की ममता, प्रेम की खोज और एकाकीपन को छूती हैं, बिना उसे पीड़िता मात्र बनाए। बल्कि, वे नारी को सशक्त और स्वायत्त दिखाने की कोशिश करती हैं।

नील कमल की भाषा सरल और सहज है, जो नारी की अंतर्दशा को पाठक तक सीधे पहुँचाती है। वे नारी की देहगत अनुभूतियों को संकोचरहित ढंग से व्यक्त करते हैं, जो समकालीन हिंदी काव्य में स्त्री–संवेदना

को नया आयाम देता है। उनकी कविताओं में नारी संबंधों की असमानता, वैवाहिक जीवन की कुंठाएँ और भावनात्मक मुक्ति की तलाश प्रमुख है। अनुवादक के रूप में भी उन्होंने बांग्ला कवियों की रचनाओं में नारी–स्वर को हिंदी में जीवंत किया है, जिससे उनकी संवेदना और व्यापक हुई है। नारी को वे धरती की संतान के रूप में देखते हैं, सुख–दुख की साझेदार, प्रेम की खोज में भटकती हुई, किंतु अपनी गरिमा बनाए रखने वाली।

नील कमल की नारी–संवेदना में एक मानवीय संतुलन है। वे नारी को देवी के आसन से उतारकर मानव बनाते हैं, जहाँ उसकी कमजोरियाँ और शक्तियाँ दोनों समान रूप से उभरती हैं। यह संवेदना स्त्री–विमर्श की दिशा में एक सकारात्मक कदम है, जो नारी को उसकी पूरी मानवीयता के साथ स्वीकार करने का आग्रह करती है। उनकी रचनाएँ न केवल नारी की पीड़ा का दस्तावेज हैं, बल्कि उसकी मुक्ति और समानता की संभावना भी सुझाती हैं। इस प्रकार, नील कमल का काव्य हिंदी साहित्य में नारी–संवेदना को अधिक गहन और समावेशी बनाता है, जो पाठक को नारी की दुनिया में गहराई से उतारता है।

स्त्री–विमर्श की संभावनाएँ :

नील कमल का काव्य स्त्री–विमर्श की बहुआयामी संभावनाओं को खोलता है, जहाँ नारी की मुक्ति एवं सशक्तिकरण पर बल दिया गया है। निम्न बिंदु इसकी पुष्टि करते हैं :–

1. **नील कमल के काव्य में पितृसत्ता का प्रतिरोध :**

नील कमल के काव्य में पितृसत्ता का प्रतिरोध सूक्ष्म, संवेदनशील और मानवीय स्तर पर उभरता है। उनकी रचनाएँ सीधे तौर पर विद्रोही नारा नहीं लगातीं, बल्कि नारी की आंतरिक शक्ति, उसकी देहगत अनुभूतियों और भावनात्मक स्वायत्तता को केंद्र में रखकर पितृसत्तात्मक संरचनाओं की जकड़न को चुनौती देती हैं। नील कमल पुरुष कवि होने के बावजूद नारी–दृष्टि को सहानुभूतिपूर्वक अपनाते हैं, जहाँ नारी को देवी या अबला के पारंपरिक खाँचे से बाहर निकालकर एक स्वतंत्र, कामुक और सशक्त इकाई के रूप में चित्रित किया जाता है। यह प्रतिरोध उनकी कविताओं में अप्रत्यक्ष रूप से प्रकृति के प्रतीकों, शहरी जीवन की स्मृतियों और संबंधों की जटिलताओं के माध्यम से व्यक्त होता है।

नील कमल की कविताएँ नारी की देह और कामनाओं को बिना संकोच के अभिव्यक्त करती हैं, जो पितृसत्ता की नैतिकता और नियंत्रण की सीमाओं पर प्रहार है। उदाहरणस्वरूप, उनकी कुछ रचनाओं में मातृत्व की आदिम देह का चित्रण ''मातृत्व के दर्प में चमकती हुई आदिम स्त्री देह''नारी को मात्र माँ या पत्नी की भूमिका से ऊपर उठाकर उसकी शारीरिक और भावनात्मक पूर्णता को रेखांकित करता है। यह पितृसत्ता के उस दृष्टिकोण का प्रतिकार है जो नारी की देह को पुरुष की संपत्ति या समाज की मर्यादा का प्रतीक मानता है। उनकी अनूदित बांग्ला कविताओं में भी स्त्री की कामुकता और प्रेम की तृप्ति को गुस्से के बजाय प्रेम से जोड़ा गया है, जो पारंपरिक वैवाहिक बंधनों की असमानता पर सवाल उठाता है।

नील कमल का प्रतिरोध प्रकृति से जुड़ी प्रतीकात्मकता में भी दिखता है। कमल की पंखुड़ियाँ कीचड़ से निकलकर खिलने का प्रतीक नारी के संघर्ष और उत्थान का द्योतक बनती हैं। पितृसत्ता की जड़ें समाज में गहरी होने के बावजूद, उनकी कविताएँ नारी को मुक्ति की संभावना प्रदान करती हैं, वह मौन पीड़ा से निकलकर अपनी पहचान बनाने वाली स्त्री है। शहरी परिवेश में कलकत्ता की स्मृतियों के बीच नारी की उपस्थिति अप्रत्यक्ष रूप से संबंधों की असमानता को उजागर करती है, जहाँ वह प्रेम की खोज में भटकती है किंतु अपनी गरिमा नहीं

खोती। अनुवादक के रूप में भी उन्होंने बांग्ला साहित्य के हाशिए के स्वरों को हिंदी में लाकर पितृसत्ता के विरुद्ध एक व्यापक संवाद रचा है।

यह प्रतिरोध आक्रोशपूर्ण नहीं, बल्कि करुणामय और मानवीय है। नील कमल नारी को पीड़ित मात्र नहीं दिखाते, बल्कि उसे सशक्त बनाने का आह्वान करते हैं। उनकी भाषा की सरलता इस प्रतिरोध को और प्रभावी बनाती है, जो पाठक को पितृसत्ता की सूक्ष्म जकड़न महसूस कराती है। इस प्रकार, नील कमल का काव्य हिंदी साहित्य में स्त्री–विमर्श को एक संतुलित और गहन आयाम देता है, जहाँ प्रतिरोध मुक्ति की ओर ले जाता है।

2. नील कमल के काव्य में सामाजिक-आर्थिक संघर्ष :

नील कमल के काव्य में सामाजिक–आर्थिक संघर्ष शहरी जीवन की जटिलताओं, हाशिए के स्वरों और पर्यावरणीय चिंताओं के माध्यम से उभरता है। उनकी रचनाएँ सीधे राजनीतिक नारे नहीं लगातीं, बल्कि दैनंदिन जीवन की सूक्ष्म अनुभूतियों में वर्गीय असमानता, श्रम की पीड़ा और आर्थिक विषमता को समेटती हैं। कलकत्ता जैसे महानगर की स्मृतियाँ रिक्शा की घंटियाँ, कॉफी हाउस की चर्चाएँ, कॉलेज स्ट्रीट की किताबें उनके काव्य की पृष्ठभूमि बनती हैं, जहाँ सामाजिक संघर्ष शहर की रगों में दौड़ता हुआ दिखाई देता है। नील कमल इन संघर्षों को व्यक्तिगत एकाकीपन और सामूहिक विद्रोह के संतुलन में प्रस्तुत करते हैं।

उनकी कविताएँ पर्यावरण और श्रम के संघर्ष को जोड़ती हैं। संग्रह 'यह पेड़ों के कपड़े बदलने का समय है' में पेड़ों की शाखाएँ, मौसम की हरियाली और मानवीय हस्तक्षेप की पीड़ा को चित्रित किया गया है, जो पूँजीवादी विकास के नाम पर प्रकृति के शोषण और इससे जुड़े आर्थिक संघर्ष को रेखांकित करता है। शहर की भीड़ में खोए व्यक्ति की स्थिति सामाजिक अलगाव और आर्थिक दबाव का प्रतीक बनती है। नील कमल हाशिए के लोगों मजदूरों, प्रवासियों के स्वर को केंद्र में लाते हैं, जैसे बांग्ला साहित्य के अनुवाद में आदिवासी या ग्रामीण जीवन की करुणा। सामाजिक संघर्ष उनकी रचनाओं में जाति, वर्ग और लैंगिक असमानता के रूप में भी झलकता है। वे कलकत्ता को एक ऐसे शहर के रूप में देखते हैं जहाँ इतिहास और वर्तमान का संवाद होता है, किंतु आर्थिक विषमता इस संवाद को विकृत कर देती है। उनकी कविताएँ साधारण घटनाओं घास की महक, पत्तियों की सरसराहट को विषय बनाकर आर्थिक संघर्ष की गहराई को छूती हैं, जहाँ सौंदर्य और विनाश साथ–साथ चलते हैं। अनुवाद के माध्यम से उन्होंने बांग्ला कवियों की सामाजिक चेतना को हिंदी में लाकर संघर्ष के स्वर को और मुखर किया है।

नील कमल का काव्य इन संघर्षों को केवल दस्तावेज नहीं बनाता, बल्कि उनमें मानवीयता की खोज करता है। उनकी सरल भाषा और कल्पनाशीलता पाठक को आर्थिक–सामाजिक विसंगतियों में उतारती है, बिना निराशा फैलाए। यह काव्य समकालीन हिंदी साहित्य को अधिक समावेशी बनाता है, जहाँ संघर्ष मुक्ति और परिवर्तन की संभावना की ओर इशारा करता है। इस प्रकार, नील कमल सामाजिक–आर्थिक मुद्दों को काव्यात्मक संवेदना से जोड़कर एक नया विमर्श रचते हैं।

3. नील कमल के काव्य में प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति :

नील कमल के काव्य में प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति एक सूक्ष्म और गहन माध्यम है, जो नारी–संवेदना को प्रकृति, शहरी जीवन और व्यक्तिगत स्मृतियों के प्रतीकों से जोड़कर व्यक्त करती है। उनकी रचनाएँ सीधे वर्णन की बजाय प्रतीकों के माध्यम से नारी की आंतरिक दुनिया को उजागर करती हैं, जहाँ प्रत्येक प्रतीक न केवल

सौंदर्यबोधक है, बल्कि सामाजिक–राजनीतिक संदर्भों से जुड़ा हुआ भी। नील कमल की यह शैली हिंदी काव्य की परंपरा से जुड़ती हुई आधुनिक स्त्री–विमर्श को नया आयाम देती है, जहाँ प्रतीक नारी की संवेदना को मुक्त और बहुआयामी बनाते हैं।

उनकी कविताओं में प्रकृति के प्रतीक प्रमुख हैं। कमल का फूल, जो कीचड़ से निकलकर खिलता है, नारी के संघर्ष और उत्थान का प्रतीक बनता है। यह अभिव्यक्ति नारी की देहगत और भावनात्मक पीड़ा को छूती है, जहाँ कीचड़ पितृसत्ता की जकड़न का रूपक है और खिलना मुक्ति की संभावना। संग्रह 'यह पेड़ों के कपड़े बदलने का समय है' में पेड़ों की शाखाएँ और मौसम का परिवर्तन नारी की तरल कामनाओं और परिवर्तनशीलता को प्रतीकित करते हैं। ये प्रतीक नारी को स्थिर आदर्श से अलग कर उसकी गतिशीलता दिखाते हैं, जो पारंपरिक काव्य में दुर्लभ है। नील कमल की यह प्रतीकात्मकता बांग्ला साहित्य के प्रभाव से भी समृद्ध है, जहाँ जीवनानन्द दाश की प्रकृति–संवेदना से प्रेरित होकर वे नारी की करुणा को प्रतीकों में बुनते हैं।

शहरी प्रतीक भी उनकी अभिव्यक्ति का हिस्सा हैं। कलकत्ता की सड़कें, रिक्शा की घंटियाँ और कॉफी हाउस नारी के सामाजिक संघर्ष को दर्शाते हैं जहाँ शहर की भीड़ नारी के एकाकीपन का प्रतीक है, और किताबें उसकी बौद्धिक मुक्ति की। यह अभिव्यक्ति नारी की आर्थिक और सामाजिक असमानता को अप्रत्यक्ष रूप से उजागर करती है, बिना प्रत्यक्ष विद्रोह के। नील कमल की भाषा की सरलता इन प्रतीकों को और प्रभावी बनाती है, वे पाठक को प्रतीक के भीतर उतारते हैं, जहाँ नारी की संवेदना जीवंत हो उठती है।

नील कमल की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति स्त्री–विमर्श की संभावनाओं को विस्तार देती है। यह नारी को मात्र पीड़िता नहीं, बल्कि प्रतीकों के माध्यम से सशक्त बनाती है। उनकी रचनाएँ समकालीन हिंदी काव्य को अधिक कल्पनाशील और मानवीय बनाती हैं, जहाँ प्रतीक नारी की गहन अनुभूतियों का दर्पण बनते हैं। इस प्रकार, नील कमल का काव्य प्रतीकों के जरिए नारी–संवेदना को एक नई गहराई प्रदान करता है, जो पाठक को विचार करने पर मजबूर करता है।

4. नील कमल के काव्य में मुक्ति की आकांक्षा :

नील कमल के काव्य में मुक्ति की आकांक्षा नारी–संवेदना के केंद्र में है, जो पितृसत्ता, सामाजिक बंधनों और व्यक्तिगत कुंठाओं से मुक्त होने की गहन इच्छा को व्यक्त करती है। उनकी रचनाएँ इस आकांक्षा को सीधे विद्रोह की बजाय सूक्ष्म संवेदना और प्रतीकों के माध्यम से उजागर करती हैं, जहाँ नारी अपनी गरिमा और स्वायत्तता की तलाश में दिखाई देती है। यह आकांक्षा हिंदी काव्य की स्त्री–विमर्श परंपरा को समृद्ध करती है, जहाँ मुक्ति केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि भावनात्मक और आध्यात्मिक भी है। नील कमल पुरुष कवि होते हुए भी नारी की इस आंतरिक यात्रा को सहानुभूतिपूर्वक चित्रित करते हैं।

उनकी कविताओं में मुक्ति की आकांक्षा प्रकृति से जुड़ी हुई मिलती है। कमल का खिलना या पेड़ों का कपड़े बदलना नारी की देह और भावनाओं की मुक्ति का प्रतीक है, जहाँ वह समाज की अपेक्षाओं से ऊपर उठती है। यह आकांक्षा वैवाहिक संबंधों की असमानता में भी झलकती है, जहाँ नारी प्रेम की खोज में भटकती है किंतु अपनी पहचान नहीं खोती। बांग्ला अनुवादों में उन्होंने स्त्री की कामुक मुक्ति को करुणा से जोड़ा है, जो पितृसत्ता की नैतिक जकड़न से विद्रोह है। नील कमल की रचनाएँ नारी को देवी के आसन से उतारकर मानव बनाती हैं, जहाँ मुक्ति उसकी कमजोरियों और शक्तियों का संतुलन है।

शहरी जीवन की स्मृतियाँ इस आकांक्षा को सामाजिक आयाम देती हैं। कलकत्ता की सड़कें नारी के आर्थिक संघर्ष का प्रतीक बनती हैं, जहाँ वह हाशिए से केंद्र की ओर बढ़ती है। उनकी कविताएँ नारी की मौन पीड़ा को मुक्ति के आह्वान में बदलती हैं, बिना आक्रोश के। अनुवादक के रूप में भी उन्होंने हाशिए के स्वरों को मुक्त किया है, जो स्त्री–विमर्श की संभावनाओं को विस्तार देता है। नील कमल की भाषा की सहजता इस आकांक्षा को पाठक तक पहुँचाती है, जहाँ मुक्ति एक सतत् प्रक्रिया बन जाती है।

नील कमल का काव्य मुक्ति की आकांक्षा को सकारात्मक दिशा देता है। यह नारी को सशक्त बनाने का माध्यम है, जो समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री की मुक्ति को अधिक मानवीय और समावेशी बनाता है। उनकी रचनाएँ पाठक को नारी की दुनिया में उतारती हैं, जहाँ मुक्ति न केवल सपना है, बल्कि संभावना भी। इस प्रकार, नील कमल का काव्य नारी–संवेदना को मुक्ति के नए क्षितिज प्रदान करता है, जो विचारशील पाठक को प्रेरित करता है।

निष्कर्ष :

नील कमल के काव्य की समग्र पड़ताल से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी रचनाएँ नारी–संवेदना के प्रति एक गहन मानवीय दृष्टि रखती हैं, जो स्त्री–विमर्श की संभावनाओं को व्यापक और संतुलित आयाम प्रदान करती हैं। नील कमल नारी को पारंपरिक देवी–आदर्श या अबला की छवि से मुक्त कर उसे जीवंत, देहधारी और भावनात्मक रूप से स्वायत्त इकाई के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनकी कविताओं में नारी की आंतरिक दुनिया उसकी कामनाएँ, कुंठाएँ, ममता और संघर्ष प्रकृति के प्रतीकों, जैसे कमल की पंखुड़ियाँ या अमृत की धारा, के माध्यम से उभरती है, जो न केवल संवेदना की गहराई को छूती है, बल्कि पितृसत्ता की सूक्ष्म जकड़न पर भी प्रश्नचिह्न लगाती है।

उनकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति नारी की मुक्ति की आकांक्षा को रेखांकित करती है, जहाँ देह और आत्मा का संतुलन नारी को अनश्वरता की ओर ले जाता है। सामाजिक–आर्थिक संघर्षों के संदर्भ में भी नील कमल की रचनाएँ हाशिए के स्वरों को केंद्रित करती हैं, जिसमें नारी का संघर्ष अप्रत्यक्ष रूप से व्याप्त है। अनुवादक के रूप में बांग्ला साहित्य की करुणा और प्रकृति–संवेदना को हिंदी में लाकर उन्होंने स्त्री–विमर्श को और समृद्ध किया है। उनकी भाषा की सरलता और सहजता इस विमर्श को आम पाठक तक पहुँचाती है, बिना आक्रोश के करुणा और सहानुभूति से। नील कमल का काव्य हिंदी साहित्य में एक ऐसा सेतु है, जो पुरुष दृष्टि से नारी की संवेदना को मानवीय गरिमा प्रदान करता है। यह न केवल नारी की पीड़ा का दस्तावेज है, बल्कि उसकी सशक्तिकरण और मुक्ति की संभावना का आह्वान भी। समकालीन समाज में जहाँ स्त्री–विमर्श अधिक मुखर हो रहा है, नील कमल की रचनाएँ हमें याद दिलाती हैं कि सच्चा विमर्श करुणा और समानता की भाषा में ही फलित होता है। उनकी कविताएँ हमें नारी को उसकी पूरी मानवीयता के साथ देखने का साहस देती हैं, जो हिंदी काव्य की परंपरा को अधिक समावेशी और संवेदनशील बनाती हैं।

संदर्भ सूची :

1. अनामिका, (2011) ''स्त्री विमर्श का लोकपक्ष'' किताबघर प्रकाशन।
2. सुजाता, (2021) ''आलोचना का स्त्रीपक्ष : पद्धति, परम्परा और पाठ'' राजकमल प्रकाशन।

3. मेनन, निवेदिता, (2019) ''नारीवादी निगाह से'' राजकमल प्रकाशन।
4. शुक्ला, शालिनी, (2021) ''समकालीन हिंदी कविता में स्त्री विमर्श'' (समकालीन कवियों पर सामान्य चर्चा) स्वप्रकाशन।
5. अनामिका, (2023) ''स्त्री–मुक्ति की सामाजिकी : मध्यकाल और नवजागरण'' वाणी प्रकाशन।
6. हाथ सुंदर लगते हैं (कविता–संग्रह, 2010)
7. कलकत्ता शहर पर कुछ काव्य–चित्र नील कमल।
8. मुझे वह कविता दो।
9. पतंग नील कमल।
10. कविता में दो का पहाड़ा।

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 187-194
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भोजपुरी लोकसंस्कृति में मनुष्येत्तर तत्वों की अभिव्यक्ति

डॉ. राम भवन यादव
पोस्ट डॉक्टरल फेलो
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

शोध सारांश :

लोकसंस्कृति का समाहार भाव ही उसकी सादगी का परिचय देता है। लोक की स्वाभाविकता ही उसकी सुंदरता है। मानवीय क्रिया व्यापार की जैसी स्वाभाविक अभिव्यक्ति लोक में होती है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। लोक का कवि कभी शास्त्रीय अध्ययन नहीं करता। उसे ये भी मालूम नहीं कि उसका गाया हुआ, कभी लोक परंपरा का हिस्सा बनेगा या नहीं। उसके मन में जो भाव उठता है, उसे अपनी लय के साथ अभिव्यक्त कर देता है। उसका भाव सम्पूर्ण समुदाय का भाव बन जाता है। यानी सामूहिक भावभूमि पर ही लोकगीत के अंकुर फूटते हैं। इन लोकगीतों और लोककथाओं का रूप समय के साथ बदलता रहता है। इसकी प्रमुख वजह उसकी मौखिक गायन परंपरा रही है। तथाकथित जिस भद्र समाज को अक्षर ज्ञान था वह लोक को बहुत हेय दृष्टि से देखता रहा। उसे असभ्य और गवाँरों का गान कहकर उपेक्षित किया। आज भोजपुरी लोक गीतों में बिरहा, बिदेसिया, बनिजिया, सिपहिया, चौता, जोगीरा, रोपनी, सोहनी, बारहमासा इत्यादि गीतों की खूब चर्चा की जाती है। लेकिन ये जितने भी गीत हैं, श्रमशील समुदाय के गीत हैं। वह श्रम के दौरान जो कुछ भी गाया वही उसका श्रमराग बन गया। उस श्रमिक समुदाय के लिए प्रकृति सहचर के रूप में प्रस्तुत होती है। यही वजह है कि प्रकृति उनकी गीतों में हर जगह उपस्थित है। लोक हृदय के भीतर मानव और अमानव तत्व में कोई भेद नहीं है। इनके समाहार से ही लोक व्यवहार निर्मित होता है।

बीज शब्द : लोकसंस्कृति, भोजपुरी लोक, बिरहा, बिदेसिया, बारहमासा, प्रकृति, श्रमिक–श्रमराग, लोक और प्रकृति।

मूल आलेख :

लोक में प्रकृति मानव जीवन का अभिन्न अंग है। नदी, तालाब, जंगल, पशु–पक्षी, चाँद–सूरज, बरखा–बादल इत्यादि का वर्णन बहुत आस्था और रोचकता के साथ किया गया है। लोक ने अपनी गीतों और कथाओं में प्रकृति का विस्तृत समावेश किया है। लोक जीवन के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक प्रत्येक पक्ष में प्रकृति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इनके चिंतन में सम्पूर्ण परिवेश उपस्थित होता है, जो लोक की तत्कालीन भावनाओं के अनुरूप अभिव्यक्त होता है। प्रत्येक लोक संस्कृति अपने स्थानीय परिवेश और भौगोलिक स्थिति के अनुरूप विकसित होती है। इसलिए प्रायः लोक साहित्य और संस्कृति में स्थानीय विविधता परिलक्षित

होती है। भोजपुरी संस्कृति की कुछ अपनी स्थानीय विशिष्टताएँ हैं, जो लोगों के खान–पान, रहन–सहन, धर्म–कर्म, तीर्थ–व्रत, मनोरंजन और कला–प्रेम में स्पष्ट रूप से झलकती हैं। भोजपुरी क्षेत्र, जो मुख्य रूप से पूर्वी उत्तर प्रदेश (बलिया, घाघरा–गंडक मैदान), बिहार (उत्तर बिहार), झारखंड के कुछ भागों तथा नेपाल के तराई क्षेत्र तक फैला है, अपनी उष्णकटिबंधीय जलवायु, उपजाऊ गंगा मैदानों और नदी–घाटी संस्कृति के कारण अद्वितीय है। यहाँ की मिट्टी में चावल, गन्ना, मक्का और सब्जियों की खेती प्रमुख है, जो संस्कृति को आकार देती है। इस प्रकार, भोजपुरी संस्कृति अपने परिवेश से बंधी, जीवंत और अनुकूलनीय है, जो लोक साहित्य के माध्यम से पीढ़ियों तक पहुँचती रहती है।

भोजपुरी क्षेत्र में प्रवसन एक बहुत बड़ी समस्या है। इस क्षेत्र के लोग आज ही नहीं बहुत पहले से रोजी–रोटी की तलाश में परदेस गमन करते रहे हैं। सुविधाहीन और परिस्थिति का मारा हुआ व्यक्ति ही गैर जगह स्थानांतरित होता है। इस पलायन की वेदना का चित्रण लोकगीतों में अत्यंत मार्मिक रूप में देखने को मिलता है। जब काम–काज की चाहत में पुरुष घर से दूर रहता है, तब घर की पूरी जिम्मेदारी स्त्री के ऊपर आ जाती है। पलायन का यह स्वरूप समाज में अपने आरंभिक समय से ही विद्यमान है। इससे सृजित भावनात्मक अभाव को स्त्रियाँ लोकगीतों के सहारे व्यक्त करती हैं। इस स्थिति में विरहिणी पत्नी के लिए प्रकृति आलंबन और उद्दीपन दोनों का कार्य करती है। इसलिए लोकगीतों में मानव और प्रकृति का अंतर्संबंध निखरकर चित्रित हुआ है। इसकी बानगी इस गीत में देखी जा सकती है।'– "**अमवाँ मोजरी गइले महुआ टपकले/कत दिन बटिया जोहइबे रे लोभिया।**"[1] यानी बसंत आ गया है। पति के आने का समय हो गया है। उसे आम के बौर और महुआ के फल को देखकर परदेसी पति की याद आती है। फिर वो कहती है कि "**कागा हो तोहके दूध भात देबों/सोनवा मढ़इबो दूनों ठोर रे/जाइ के बोलहुं कागा पिय जी के देसवा/बोल बिरहिया के बोल जी।**"[2] लोक में कौवा एक संदेश वाहक के रूप में जाना जाता है। भारतीय ग्रामीण जीवन में कौवे को मेहमान के आगमन का संदेशवाहक माना जाता है। जब कौवा घर की छत पर आकर काँव–काँव करता है, तो लोग इसे शुभ संकेत मानते हैं– कोई अतिथि आने वाला है। यह मान्यता प्राचीन लोक परंपराओं से जुड़ी है, जहाँ पक्षियों की बोली को देवताओं या भाग्य के संकेत के रूप में देखा जाता है। इस मान्यता का उपयोग स्त्री अपनी गहन विरह वेदना व्यक्त करने के लिए करती है। पति के अलगाव की पीड़ा में डूबी वह कौवे से आग्रह करती है कि मेहमान बनकर उसके पति तक उसका संदेश पहुँचाए। यह आग्रह सहज और सरल है– कोई पत्र नहीं, कोई दूत नहीं, बल्कि प्रकृति का एक साधारण पक्षी। इन गीतों को सुनने पर लोक जीवन की वह सरलता स्पष्ट हो जाती है, जो आधुनिक जटिलताओं से कोसों दूर है। यहाँ भावनाएँ बिना आडंबर के व्यक्त होती हैं– विरह की आग में तपती स्त्री प्रकृति को अपना सखा बना लेती है। इसी तरह एक स्त्री कोयल से अपने संबंधियों को निमंत्रण देने का निवेदन करते हुए कहती है –

"अरे अरे कारी कोइलिया, आंगन मोरे आवउ,
कोइलरि आजु मोरे पहिलइ बियाह, नेवत दइ आवउ।
नेवतेउ अरिगन, नेवतेउ परिगन, माई कर नइहर मोर ननियाउर,
कोइलरि, एक जिनि नेवतेउ बीरन, जेनसे मॅइ रूठलि हो।"[3]

यही सहजता लोक संस्कृति की आत्मा है। दैनिक जीवन के साधारण संकेत–खेतों की मिट्टी, नदी का

कलकल, गाँव की चौपाल– यहाँ काव्य में रूपांतरित हो जाते हैं। ऐसी रचनाएँ केवल भावुकता ही नहीं जगातीं, बल्कि ग्रामीण भारत की सांस्कृतिक धरोहर को जीवंत रखती हैं।

ग्रामीण जीवन में मनुष्य के साथ–साथ पशु–पक्षी, पेड़ भी घर के सदस्य की तरह होते हैं। उनके साथ वही भावनात्मक लगाव होता है जो एक मानवीय सदस्य के साथ होता है। ग्रामीण बच्चे का पालन–पोषण एक ऐसे परिवेश में होता है, जहाँ मनुष्य अकेला नहीं, अपितु पेड़–पौधे, पक्षी, पशु और नदियाँ उसके जीवन का अभिन्न अंग बन जाते हैं। ये मनुष्येत्तर तत्व केवल पर्यावरण नहीं, बल्कि परिवार के सदस्यों की भाँति स्नेह और सुरक्षा के पात्र होते हैं। लोक कथाओं और गीतों में इन्हें देवता, संरक्षक और मित्र के रूप में चित्रित किया जाता है। एक गीत लड़की के ससुराल विदाई के समय का है, जिसमें वह घर के सदस्यों से आग्रह करती है कि वह नीम के पेड़ को नहीं कटवाँयेंगे। क्योंकि वह चिड़ियाँ और उनके बच्चों का आवास है। इसलिए वह अपने रुदन में घर छूटने की व्यथा में पेड़ों, पक्षियों की भी चिंता करती है कि वे उसके जाने के बाद भी सुरक्षित रहें।

"बाबा निमियां के पेड़ जिन काटेउ
निमियां चिरइया के बसेर, बलइया लेउ बीरन की
हो मोरे बाबा
बाबा सगरी चिरइया उड़ी जैइहैं
रहि जयिहैं निमिया अकेल, बलइया लेउ बीरन की
हो मोरे बाबा
बाबा सबरी बिटीवा जैहें सासुर
रह जाई माई अकेल, बलइया लेउ बीरन की
हो मोरे बाबा
बाबा बिटिया के दुख जिन देहु
बिटिया चिरईया की नायि, बलइया लेहु बीरन की
हो मोरे बाबा।"[4]

इस गीत में मनुष्य और पेड़ के बीच सृजित लगाव को देख सकते हैं। लड़की को लगता है कि बाबा मेरी बात को नहीं मान सकते हैं तो वह बीरन (भाई) के सारे कष्टों को अपने ऊपर लेने की बात करती है। भाई का नाम लेने से ही सामाजिक संरचना की शक्ल प्रस्तुत हो जाती है। वह लड़की जानती है कि भाई का नाम लेने से पिता के ऊपर इसका ज्यादा प्रभाव पड़ेगा और पेड़ नहीं काटेंगे। क्योंकि पेड़ के कट जाने से चिड़ियाँ भी बेघर हो जाएंगी। वह लड़की अपने पिता से यह भी कहती है कि बेटियों को दुख मत देना वो भी तो पितृ घर में चिड़ियाँ की तरह होती हैं। एकदिन चिड़ियाँ की भाँति उड़ जाएंगी। हालाँकि लोक की अपनी एक सीमा भी है। वह आज भी पुरुष वर्चस्व से बाहर नहीं निकल पाया है। भोजपुरी लोक में स्त्रियों को घर से बाहर जाने या अपने भाव को प्रकट करने की खुली आजादी नहीं थी। ये स्थिति आज भी कमोबेश बनी हुई है। ये स्त्रियाँ लोकगीतों के माध्यम से अपने हृदय की बात को अभिव्यक्त करती हैं। जिनमें प्रकृति सहारा का काम करती है। उपर्युक्त गीत में इसे देख सकते हैं। प्रकृति पुरुषवादी चहारदीवारी के भीतर स्त्री के दुख–दर्द का साझेदार बनती है। जिनकी मानवीय उपस्थिति उनकी गीतों में देखने को मिलती है।

हिंदुस्तान कथाओं का देश है। यहाँ कथाओं की अत्यंत प्राचीन परंपरा रही हैं। वैदिक संहिताओं से लेकर ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद में अनेक कथाएं वर्णित हैं। संस्कृत के कथा साहित्य में पंचतंत्र का योगदान अद्वितीय है। इसकी कथाओं ने संसार की कहानियों को प्रभावित किया। लोक कथाओं का विकास भी इन्हीं से हुआ है। लोककथाओं का मुख्य उद्देश्य नीतिकथन होता है। पंचतंत्र और हितोपदेश की कथाएं इसी श्रेणी के अंतर्गत रखी जा सकती हैं। धार्मिक अनुष्ठानों में व्रत का एक महत्वपूर्ण स्थान है। अनंत चतुर्दशी, पीड़िया, बहुरा, करवाचौथ इत्यादि व्रतों के पीछे भी एक कथा होती है। जिसकी आस्था में स्त्रियाँ व्रत धारण करती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ प्रबंधात्मक गीत भी गाये जाते हैं। जिसमें किसी घटना को कथानक के रूप में विशेष शैली में गाया जाता है। इन्हीं प्रबंधात्मक गीतों को लोककथा का नाम दिया गया। जिसमें लोरकी, आल्हा, विजयमल, सोरठी, नयकवा बंजारा इत्यादि प्रमुख है। इन लोक कथाओं में भी प्रकृति के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। इन लोककथाओं में प्रकृति विविध रूपों में उपस्थित है– नदियाँ मातृत्व का प्रतीक, पेड़–पौधे संरक्षक, वर्षा समृद्धि की देवी, तथा पशु–पक्षी संदेशवाहक। आल्हा में यमुना का महत्व, लोरकी में चंद्रमा–तारे का चित्रण प्रकृति को जीवंत बनाता है। यह समावेश पर्यावरणीय संतुलन और प्रकृति पूजा की लोक परंपरा को दर्शाता है।

'लोरकी' भोजपुरी क्षेत्र की एक प्रमुख लोक कथात्मक गीत है। इसका नायक लोरिक नामक एक व्यक्ति है। जो कमजोर वर्ग का नायक बनकर उभरता है। लोरिक–चंदा की कथा उत्तर भारत में व्यापक रूप में प्रचलित है। इस कथात्मक गीत को अहीर जाति का जातीय काव्य भी कहा जाता है। 'लोरकी' का आधार ग्रंथ मुल्ला दाऊद कृत 'चंदायन' (1370) ई. है। लोरिक इसी काव्य ग्रंथ का एक चरित्र है। जिसको अलग–अलग क्षेत्रों में कुछ बदलाव के साथ लोकनायक के रूप में चित्रित किया गया है। लोरकी के 'स्तुति खंड' में सृजनकर्ता की आराधना की गई है। **"सिरजसि धरती और अगासू/सिरजसि मेर मंदर कबिलासू/सिरजसि चाद सुरूज उजियारा/सिरजा सरग नखत की मारा।"**[5] गायक सृजनकर्ता का आभार इसलिए भी व्यक्त करता है कि उसने मनुष्य के साथ–साथ मनुष्येत्तर तत्वों का भी सृजन किया जो जीवन के लिए सहायक होते हैं। भोजपुरी लोक में गंगा–यमुना का विशेष स्थान है। इनको जीवनदायनी के रूप में चित्रित किया गया है। 'सोरठी' और 'बिहुला' लोककथाओं में गंगा नायिकायों को बचाती हैं। 'भरथरी' कथा में गंगा जी हिरण की रक्षा करती हैं। भरथरी काले हिरण के शिकार की तलाश में सिंघल द्वीप चला जाता है। हिरण को मारने के लिए सात बाण का प्रयोग करता है। दूसरा बाण गंगा जी ही रोकती हैं। लोककथाओं में अधिकतर देखने को मिलता है कि मनुष्येत्तर तत्व हमेशा सत्य का साथ देते हैं और मनुष्य से ज्यादा मानवीय व्यवहार करते हैं। घायल मृग कहता है कि–

"अंखियाँ काढ़ राजा दीन्हे रानी के कि बैठल करीहें सिंगार,
सिंघियाँ काढ़ी कौनो राजा के दीहऽ के दरवाजा के शोभा बन जाय।
खलवा के खिचाय कौनों साधू के दिहल कि बैठे आसन लगाय,
मसुआ तलहरि राजा रउरे खाइब कि जोगवा अम्मर हो जाइ।"[6]

राजा भरथरी के बाण से जब हिरण घायल होकर मरने लगता है तो कहता है कि आँख अपनी रानी को दे देना, जिससे वो श्रृंगार करेगी। सिंघ किसी राजा को दे देना जिससे वह अपने दरवाजे को सजाएगा। खाल किसी साधु को दे देना और माँस तुम खा जाना। मृग के इस मानवीय व्यवहार से राजा भरथरी का हृदय परिवर्तन होता है और वह वैरागी हो जाता है। यह गीत जीवन की क्षणभंगुरता, परोपकारिता और मृत्यु की अनिवार्यता का

प्रतीक है। हिरण केवल पशु नहीं, अपितु दार्शनिक गुरु बन जाता है, जो राजा को सांसारिक मोह का भ्रम दिखाता है। इससे भरथरी का हृदय विदीर्ण हो जाता है, वे संन्यासी होकर जंगल में भटकते हैं, गोरखनाथ के शिष्य बनते हैं। यही वह निर्णायक बिंदु है, जहाँ कथा की भूमि भोग से त्याग की ओर मुड़ जाती है– हिरण पथप्रदर्शक बनकर वैराग्य का द्वार खोल देता है। यह कथा लोरिक–चंदा या अन्य लोकगीतों में भी प्रतिध्वनित होती है, जो प्रकृति को आध्यात्मिक शिक्षक के रूप में स्थापित करती है।

'शोभनायक–बंजारा' बनिया जाति का जातीय गीत है। प्राचीन समय में व्यापारी बैलों तथा नावों पर सामान पर लादकर लंबे समय के लिए व्यापार करने चले जाते थे। इस कथा का नायक 'शोभानायक' है जो व्यापार करने मोरंग देश चला गया है। उसकी पत्नी 'जसुमति' के विरह दशा का चित्रण किया गया है। सुहाग रात के दिन ही पिता के आदेश पर शोभा मोरंग देश व्यापार करने के लिए निकल जाता है। एक जगह रास्ते में पेड़ की छाया के नीचे विश्राम कर रहा था। वृक्ष पर दो हंस–हंसिनी आपस में बात कर रहे थे कि आज की रात जो व्यक्ति सोहागरात मनाएगा, उससे सुंदर और गुणी संतान पैदा होगा। शोभा इस बात को सुनकर बहुत दुखी हुआ और हंस से अपनी पत्नी के पास पहुँचाने का आग्रह किया। हंस लेकर गया और सुबह को वापस उसी स्थान पर लाकर छोड़ दिया।

> **"रामा उँहा रहल हंस हंसीनिया रे ना**
> **रामा बोले लागल हंसीनिया रे ना**
> **रामा सामीसंग कटि जैहैं आज के रतिया रे ना**
> **रामा बोले लागल हंसवा रे ना**
> **रामा कइले आज होई गवनवा रे न**
> **रामा कइले होई आज कोहबरवा रे न**
> **रामा उनकर होई लड़िका मोतीललवा रे न।"**[7]

इस पूरी कथा में हंस का सफल और भावपूर्ण चित्रण किया गया है। इसी तरह हंस पक्षी चित्रण लोरिकायन में भी देखने को मिलता है। 'लोरकी' के 'संवरू–विवाह' खंड में लोरिक अमर सिंदूर लाने के लिए सात समुन्द्र पार हंस–हंसिनी के पंख पर ही बैठकर जाते हैं। जब रास्ते में हंस को भूख लगती है तो उन्हें अपने जाँघ की माँस काटकर खिलाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक कथाओं में मनुष्य की असामान्य परिस्थिति का साथी मानवेत्तर प्राणी ही देखने को मिलते हैं। 'सोरठी' में गंगाराम केकड़ा का वर्णन है। बृजभार को जब सर्प काट लेता है तब गंगाराम उसे मौत के मुँह से बाहर निकालता है। **"एकिया हो रामा दुसरे दुबकी गंगा राम केकड़ा मिलिहै रेनु की/एकिया हो रामा लेके झोरा में रखिह रेनु की।"**[8] केकड़ा झोली से निकलकर सर्प और कौवा दोनों को दंड देता है। बृजभार पुनः जीवित हो जाता है। इसी तरह 'बिहुला' लोककथा में रेघवा मछली का वर्णन है। रेघवा, बिहुला को इंद्रपुरी जाने का मार्ग बताती है। बिहुला अपने मृत पति बालालखंदर के शरीर को रेघवा के संरक्षण में छोड़ कर इंद्रपुरी जाती है। 'विजयमल' लोककथा में 'हिंछल बछेड़ा' नाम का एक घोड़ा है। यह विजयमल का अभिन्न सहचर है। युद्ध में विजयमल जब बुरी तरह घायल हो जाता है तब वह घोड़ा उसे उठाकर दुर्गा के पास ले जाता है। विजयमल के स्वस्थ हो जाने पर उसे उसकी प्रेमिका से मिलाता है और गलतियों के ऊपर डाँटता भी है। इस कथा में हिंछल को विजयमल के गुरु के रूप में दिखाया गया है।

भोजपुरी लोकसंस्कृति में कुछ त्यौहार हैं जो विशुद्ध रूप से प्रकृति केंद्रित हैं। 'छठ पूजा' कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी को किया जाता है। इसलिए इसे 'छठ पूजा' के नाम से जाना जाता है। इस त्यौहार में स्त्रियाँ सूर्य को अर्घ्य देने के बाद ही भोजन ग्रहण करती हैं। सूर्य को जल्दी उदित होने के लिए गीतों के माध्यम से प्रार्थना करती हैं।

"अहिरिन बिटिया, दूधवा लेके ठाढ़ी,
हाली देनी उगी ए अदित मल अरघ दियाऊ।
खड़े-खड़े गोड़वा दुखाईलय ये अदित मल डाँड़वा पिराइल,
हाली देनी उगी ए अदित मल अरघ दियाऊ।"[9]

इस गीत में स्त्रियों को सूर्य से संवाद करते हुए चित्रित किया गया है। इनके लिए सूर्य एक तारा नहीं बल्कि ईश्वर का प्रतिरूप है। ईश्वर के रूप में वंदनीय होने के बावजूद वह उनकी दिनचर्या का हिस्सा भी है। यह मान्यता सिर्फ आस्था को ही नहीं दर्शाती, बल्कि पर्यावरणीय संवेदना को भी जागृत करती है। सूर्य के समान चंद्रमा भी लोक परम्पराओं में आस्था का केंद्र है। लोक परंपराओं में चंद्रमा सौंदर्य, प्रेम, विरह और शुभता का प्रतीक है। ग्रामीण गीतों और कथाओं में यह मानवीय भावनाओं से जुड़कर जीवंत हो उठता है। उदाहरणस्वरूप—

"चंदा मामा, आरे आवा,
पारे आवा,
नदिया किनारे आवा,
सोने के कटोरवा में
दूध-भात ले के आवा।
बबुआ के मुंह में घुटूक...!
घुटुक-घुटुक!"[10]

इस गीत में प्रकृति का मानवीयकरण किया गया है। यह एक लोक गीतों की ऐसी सहज काव्य तकनीकी है जिसके द्वारा जिसमें मनुष्येत्तर तत्वों में भी मानवीय व्यवहार प्रदान किए जाते हैं। यही लोक शैली प्रकृति को मित्र, पारिवारिक सदस्य बना देती है। जिससे लोक की जीवंतता अक्षुण बनी रहती हैं।

एक त्यौहार 'नागपंचमी' है जो श्रावण शुक्ल पंचमी को मनाया जाता है। इस दिन साँप की पूजा होती है। एक कटोरे में दूध और धान का लावा एकांत स्थान पर रख दिया जाता है ताकि साँप आकर उसे ग्रहण करेगा। कुछ स्थानों पर लोग ग्रामीण चौहद्दी के अंदर घूम—घूम लावा—दूध रखते हैं। मदारी इस दिन जीवित साँपों को लेकर घूमते हैं और गीत गाकर भिक्षा माँगते हैं।

"जे मोरा नाग के भिखिया ना दीहै,
दूनों बेकत जर जइहै हो, मोरे नाग दुलरूआ।
जे मोरा नाग के भीख उठी दीहै,
दूनों बेकत सुखी रहिहै हो, मोरे नाग दुलरूआ।"[11]

सर्पों का वर्णन वेद—पुराणों में प्रचुर मात्रा में हुआ है। ऋग्वेद में अहि या अहिरावण जैसे सर्प—राक्षसों का उल्लेख है, जहाँ इन्द्र द्वारा वृत्रासुर नामक विशालकाय सर्प का संहार वर्णित है। पुराणों, विशेषकर विष्णु पुराण

और शिव पुराण में, सर्पों को सृष्टि के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है। इनके सुंदर रूप का वर्णन ही नहीं, अपितु भयंकर कृत्यों का चित्रण भी किया गया है। एक ओर तो शेषनाग को भगवान विष्णु की शय्या के रूप में मणि–मंडित, चमकदार कांति वाले विशाल सर्प के रूप में दिखाया गया है, जो पाताल से सिर उठाए समुद्र को धारण करते हैंय वहीं दूसरी ओर कालसर्प या तक्षक जैसे सर्पों को विषैले, प्रलयकारी एवं मानव–विनाशकारी बताया गया है। महाभारत में तक्षक द्वारा राजा परीक्षित का काटे गए सिर की कथा इसका जीवंत उदाहरण है। बौद्ध और जैन धर्म में भी सर्पों को उच्च कोटि के देवताओं की श्रेणी में रखा गया है। बौद्ध ग्रंथों में नागराजों को ज्ञान और रक्षा के प्रतीक के रूप में पूजा जाता है, मुचलिंद नाग ने भगवान बुद्ध को वर्षा से बचाया था।

जैन धर्म में स्वामी पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर नाग–छत्र आवश्यक माना जाता है, जो धरणेंद्र नाग द्वारा प्रदान की गई रक्षा का प्रतीक है। भगवान शिव भी अपने गले में सर्प को धारण करते हैं, जो तमोगुण, क्रोध–नियंत्रण एवं कुंडलिनी शक्ति के प्रतीक हैं। नागपंचमी पर शिवलिंग पर दूध चढ़ाना इसी आस्था का हिस्सा है। लोक–परंपराओं में सर्पों की भूमिका और भी गहन है। लोक में एक आस्था यह भी है कि औरतें पुत्र प्राप्ति के लिए नाग देवता की पूजा–अर्चना करती हैं। नागपंचमी का व्रत संतान प्राप्ति, कुपुत्र नाश एवं पारिवारिक सुख के लिए किया जाता है। राजस्थान, बिहार और उत्तर भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में नाग–मंदिरों में कुंवारी कन्याएँ सर्प–राजा की आराधना करती हैं। लोक–कथाओं में सर्प को धन–प्रदाता (कुबेर का वाहन) एवं विवाह में बाधक (काली नागिन) दोनों रूपों में देखा जाता है। आधुनिक संदर्भ में भी सर्प–पूजा पर्यावरण संरक्षण से जुड़ रही है, जहाँ इन्हें जैव–विविधता का संरक्षक माना जाता है। इस प्रकार, सर्प भारतीय चेतना में सौंदर्य, भय, आस्था एवं दर्शन का अनूठा संगम हैं।

निष्कर्ष :

लोक संस्कृति किसी समाज की आत्मा है, जो उसकी मूल संवेदनाओं और संरचनात्मक तत्वों को अनावृत करती है। इसका अध्ययन प्राथमिक स्रोत के रूप में कार्य करता है, क्योंकि यह विद्वत्तापूर्ण साहित्य से अलग, सहज और मौलिक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। लोकसाहित्य का सृजन देश की आम जनता करती है। सभ्यता संस्कृति को जानने के लिए सर्वप्रथम उस लोक का मूल्यांकन करना बहुत आवश्यक है। क्योंकि लोक में वही सृजित होता है जो वहाँ के लोग जीते हैं। लोक कथाओं के अध्ययन में यह स्पष्ट होता है कि व्यक्तिगत सुख को जीवन का आदर्श नहीं माना गया है। उनकी दृष्टि में जीवन की सामूहिक कल्पना है, जिसमें ब्रह्मांड के प्रत्येक तत्व का उचित स्थान है। ये सामूहिक भावना ही किसी समाज की जातिगत विशेषता है। तथाकथित सभ्य कहे जाने वाले लोग उस लोक साहित्य के ऊपर अश्लीलता का आरोप लगाकर उपेक्षित कर देते हैं। उस बिन्दु का अवलोकन नहीं किया जाता जहाँ जीवन का एक विराट दर्शन छुपा हुआ है। इन लोक गीतों में लोगों की सामूहिक अन्तश्चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। जहाँ प्रकृति को मनुष्य जीवन का अभिन्न हिस्सा माना गया है।

संदर्भ –

1. उपाध्याय, कृष्णदेव, भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, भारतीय लोक–संस्कृति शोध संस्थान कार्यालय, इलाहाबाद, सं. 2017, पृष्ठ 344
2. वही, पृष्ठ 354

3. दास, श्रीकृष्ण, हमारे संस्कार गीत, मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, संस्करण 1962, पृष्ठ 154
4. वही, पृष्ठ 324
5. वही, पृष्ठ 324
6. सिन्हा, सत्यव्रत, भोजपुरी लोकगाथा, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद, संस्करण 1957, पृष्ठ 324
7. वही, पृष्ठ 228
8. वही, 310
9. उपाध्याय, कृष्णदेव, भोजपुरी ग्राम्य गीत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण 2000, पृष्ठ 248
10. https://kavitakosh.org/चंदा–मामा,–आरे–आवा–/–अज्ञात–रचनाकार।
11. उपाध्याय, कृष्णदेव, भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, भारतीय लोक–संस्कृति शोध संस्थान कार्यालय, इलाहाबाद, सं. 2017 वि. पृष्ठ 203

ईमेल– rbroshan4u@gmail.com
मोबाईल– 9650967595

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 195-198
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वर्तमान युग में सम्यक दृष्टि की प्रासंगिकता-एक बौद्धिक चिंतन

सिद्धार्थ सिंह पटेल
शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास एंव पुरातत्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

सारांश :

मनुष्य आदिम अवस्था से ही प्रकृति में होने वाली हलचलो के प्रति आकर्षित होता रहा है एवं बौद्धिक विकास के क्रम में सदैव जीवन मरण के चक्र को समझने के लिए प्रयासरत रहा है। विकास के इसी परिणति ने अनेक दार्शनिक विचारों एवं तर्कों को जन्म दिया जिसमें तथागत का धम्म एवं दर्शन अभूतपूर्व है, तथागत के दर्शन का केंद्र बिंदु सम्यक दृष्टि है जो अष्टांगिक मार्ग का प्रथम मार्ग होने के साथ–साथ सभी मार्गों का पथ प्रदर्शक है। इसका आशय वास्तविकता को यथार्थ रूप में समझना जो वर्तमान युग में भी प्रासंगिक है और सदैव रहेगा क्योंकि यह व्यक्ति की सोच को सही दिशा देती है, जब दृष्टि शुद्ध होती है तब वाणी, विचार एवं कर्म भी शुद्ध हो जाते हैं। यही कारण है कि तथागत ने इसे निर्वाण की ओर ले जाने वाला प्रथम सोपान बताया है।

वर्तमान युग में जीवन की गति काफी तीव्र है, विभिन्न प्रकार के विचारों का टकराव है, अतः सम्यक, दृष्टि की आवश्यकता विवेक परक समाज के निर्माण के लिए आवश्यक हो गयी है। आज के युग में भ्रामक सूचनाओं की बाढ़ सी आ गयी है। विभिन्न प्रकार के सोशल मीडिया, डिजिटल प्लेटफार्म उपलब्ध है, जो समाज को भ्रमित करते है। ''आज व्यक्ति मानसिक तनाव और अवसाद की समस्याओं से घिरा हुआ है। नैतिक मूल्यों में गिरावट का दौर चल रहा है। पर्यावरण संकट, सामाजिक असमानता एवं असहिष्णुता का बढ़ता ग्राफ पतन की ओर अग्रसर है, अतएव आत्मचिंतन संयम व प्रज्ञा को विकसित करके ही व्यक्ति इन समस्याओं का हल ढूँढ़ सकता है। जो सम्यक् दृष्टि के अनुपालन से पोषित होंगे।

सम्यक दृष्टि की उपयोगिता सामाजिक जीवन के साथ–साथ व्यक्तिगत जीवन में भी है। यह करुणा अहिंसा एवं समरसता की भावना को बढ़ाता हैं एवं सामाजिक संतुलन स्थापित करता है। यह न केवल आध्यात्मिक उन्नति का पथ प्रदर्शक है अपितु तनावपूर्ण जीवन में मानसिक शांति एवं संतुलित दृष्टिकोण प्रदान करने में भी सहायक है।

मुख्य शब्द : चार आर्य सत्य (चतुष्टय), अष्टांगिक मार्ग, प्रतित्यसमुत्पाद, विपस्सना, त्रिरत्न, पंचशील सिद्धांत, सम्यक दृष्टि (साधन एवं साध्य)।

परिचय :

सम्यक दृष्टि बौद्ध दर्शन के अष्टांगिक मार्ग का प्रथम व आधारभूत अंग है जिसका अर्थ वास्तविकता को यथार्थ रूप में समझना अर्थात यथार्थ ज्ञान ना की अज्ञान या पूर्वाग्रह के आधार पर। यह दृष्टि जीवन, दुख एवं उनके कारणों और मुक्ति के मार्ग का सही बोध कराती हैं जब प्राणी कायिक कर्म, वाचिक कर्म एवं मानसिक कर्म[1] के भेद को समझ लेता है तब वह विवेकपरक तथ्यों का विश्लेषण करने योग्य होता है अर्थात इन कर्मों का साक्षात्कार करना ही सही मायने में सम्यक दृष्टि कहलाता है। इन तीनों कर्मों के दो प्रकार होते हैं कुशल कर्म एवं अकुशल कर्म। अकुशल कर्मों का मूल लोभ, द्वेष एवं मोह होता हैं, तो वही कुशल कर्मों का मूल अलोभ, अद्वेष एवं अमोह होता हैं। इन कर्मों की यथार्थता को समझने के लिए प्राणी को प्रज्ञावान, शीलवान एवं समाधी का अनुपालन आवश्यक हैं साथ ही साथ चत्तवरि आर्य सत्य दुःख, दुःख समुदाय, दुःख निरोध, दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा का ज्ञान ही सम्यक दृष्टि हैं।[2] बुद्ध का वास्तविक लक्ष्य निर्वाण प्राप्ति के मार्ग को निर्देशित करते हुए सांसारिक कष्टों से मुक्ति दिलाना है। गौतम बुद्ध सार्वभौमिक उत्थान में विश्वास रखते थे एवं अध्यात्मिक उन्नति का अधिकार सभी में मानते थे।[3]

बुद्ध ने सदैव मनुष्य को परमशांति की प्राप्ति हेतु प्रेरित किया है। उन्होंने मनुष्य को शील, समाधि व प्रज्ञा पर प्रतिष्ठित होकर अपने प्रयासों द्वारा नैतिक उत्थान के साथ–साथ मानवीय मूल्यों में गुणात्मक वृद्धि की बात की है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में धम्म एक माध्यम के रूप में कार्य करता है।[4] बुद्ध की शिक्षाएँ मानव कल्याणकारी है, जो शील, समाधि व प्रज्ञा की आधारशिला पर केन्द्रित है। ध्यान–भावना से पुष्ट व्यक्ति ही अपने चित्त में प्रज्ञा की भावना उत्पन्न कर सकता है, एवं सांसारिक बंधनों व इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर सकता है। इन्द्रियों पर नियंत्रण पाने का सुगम मार्ग सम्यक् दृष्टि है।[5]

शोध का लक्ष्य एवं केंद्रीय तर्क –

प्रस्तुत शोध का प्रमुख लक्ष्य सम्यक दृष्टि की दार्शनिक नैतिक एवं सामाजिक प्रासंगिकता को समझते हुए यह विश्लेषण करना है की किस प्रकार व्यक्ति को अविद्या से प्रज्ञा की ओर उन्मुख करना है एवं दुख तृष्णा और क्लेशों के निरोध का मार्ग प्रशस्त करना है। सम्यक दृष्टि केवल धार्मिक सिद्धांत ना होकर वैज्ञानिक, तर्कसंगत एवं मानवीय दृष्टिकोण है जो आज के भौतिकवादी समाज में सामाजिक समरसता एवं नैतिक जीवन का उत्थानकर्ता भी हैं।

शोध के उद्देश्य –

1. सम्यक दृष्टि का मूल उद्देश्य व्यक्ति में कारण कार्य (प्रतीत्य–समुत्पाद) की समझ को विकसित करना जिससे वह अंधविश्वास से मुक्त समाज का निर्माण कर सके।
2. समाज में फैली रूढ़ियों और भ्रामक धारणाओं का निषेध तार्किक आधार पर करने की समझ विकसित करना।
3. उपभोक्तावाद व बढ़ रही हिंसा का पूर्ण निषेध करते हुए मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना।
4. सम्यक् दृष्टि के माध्यम से इन्द्रियों को वश में किया जा सकता है, जो लोभ, हिंसा व व्यभिचार जैसी बुराईयों को दूर करने में सहायक होगा एवं भ्रष्टाचार व दुराचार जैसे व्यधियों को दूर करेगा।
5. न्याय के क्षेत्र में भी न्यायविद् को पूर्ण न्याय करने में सम्यक दृष्टि एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

बौद्ध दर्शन के प्रमुख सिद्धांत :

तथागत का जीवन एवं उनके सिद्धांत मानवता के लिए एक वरदान है, बुद्ध मानवतावाद के प्रबल व्याख्याकार थे तथा चिंतन एवं आत्ममंथन पर विशेष बल दिया।[6] उनके दर्शन में जटिलता के साथ–साथ लचीलापन भी है, जो एक सामान्य मनुष्य को भी असानी से प्रेरित करता है। उनके कुछ प्रमुख दर्शनों की सम्यक दृष्टि के आलोक में संक्षेप में चर्चा की जा रही है जो निम्नवत् है–

बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्य बुद्ध की शिक्षाओं का मूल आधार है, यह दुःख, दुःख का कारण, दुःख का निवारण एवं दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा[7] के माध्यम से सांसारिक कष्टों को समझने के साथ–साथ उसके निवारण का उपाय भी सुझाती है। दुःखों के निवारण के अंतर्गत अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करना आवश्यक माना गया है जिसका प्रथम मार्ग सम्यक दृष्टि है। सम्यक दृष्टि के माध्यम से चार आर्य सत्य के मर्म को समझा जा सकता है।[8]

सम्यक दृष्टि के अतिरिक्त सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्म, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक समाधि इसके अन्य सोपान है, यह अष्टांगिक मार्ग दुःखों से मुक्ति एवं निर्वाण का साक्षात्कार कराने का मार्ग है।[9]

बौद्ध दर्शन की आत्मा प्रतीत्य–समुत्पाद[10] अर्थात् कारण कार्य संबंध को माना गया है अर्थात् संसार की कोई भी वस्तु स्थाई या स्वतः उत्पन्न नहीं होती बल्कि सब कुछ कारणों व परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यह दर्शन सम्यक दृष्टि को समझने के लिए सर्वोत्तम माना गया है यह हमें बताता है कि आत्मा अस्थायी है, संसार अनित्य है एवं दुःख का अंत संभव है।[11]

विपस्सना पाली भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है सूक्ष्मतापूर्वक या पूर्णतया होता है, यह एक साधना है जो सम्यक दृष्टि को जगाने का मार्ग है इसका मुख्य लक्ष्य चित्त की शुद्धि करना है। विपस्सना की साधना करने के लिए त्रिरत्न एवं पंचशील की साधना आवश्यक मानी जाती है त्रिरत्न के अंतर्गत–बुद्धम शरणम गच्छामि, धम्मम शरणम गच्छामि, संघम शरणम गच्छामि सन्नीहित है अर्थात बुद्ध के सिद्धांतों को जानों व उसे अपने जीवन में अपनाओ तथा सत्संग व संघ में आस्था रखते हुए सम्यक दृष्टि के चेतना को जगाओ एवं पंचशील सिद्धांतों का अनुपालन करते हुए निर्वाण की ओर अग्रसर रहो।[12]

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध का मुख्य लक्ष्य व्यक्ति के दृष्टि को परिमार्जित कर विचार, वाणी व कर्म की शुद्धि प्रदान करना ताकि वह एक ऐसे समाज का निर्माण कर सके जो बौद्धिक चेतना एवं तार्किकता से परिपूर्ण हो। यह लक्ष्य सम्यक दृष्टि के अनुपालन से संभव है जो आज के भौतिकवादी एवं उपभोक्तावादी जीवन पर कुठाराघात करती है और दुःखों से मुक्ति एवं शांतिमय जीवन की ओर चलने हेतु प्रेरित करती है। सम्यक दृष्टि बौद्ध दर्शन का सैद्धांतिक तत्व ही नहीं अपितु मानव जीवन के समग्र विकास की कुंजी है।

"अतीत पर ध्यान मत दो भविष्य के बारे में मत सोचो अपने मन को वर्तमान क्षण पर केंद्रित करो।"

– गौतम बुद्ध

संदर्भ–ग्रंथ सूची :

1. सांकृत्यायन, राहुल : बौद्ध दर्शन, प्रथम संस्करण, किताब महल, इलाहाबाद, 2022, पृ0–22, 23

2. शास्त्री, द्वारिकादास : अंगुत्तरनिकाय पालि (भाग–1), बौद्ध भारती ग्रन्थमाला, वाराणसी, 2009, पृष्ठ 229–230
3. मज्झिम निकाय, 2.2.1
4. सांकृत्यायन, राहुल : विनयपिटक (चुल्लवग्ग), बुद्ध अकार ग्रंथमाला, वाराणसी, 1994, पृ0–522, 523
5. शास्त्री, द्वारिकादास : दीघनिकाय पालि (महावग्ग), बौद्ध भारती ग्रन्थमाला, वाराणसी, 2009, पृष्ठ 532
6. दीघनिकाय 3.4
7. धर्मचक्रप्रवर्तन– सूत्र–संयुक्त निकाय 55.2.1 (बुद्धचर्चा पृ0 23)
8. शास्त्री, द्वारिकादास : दीघनिकाय पालि (महावग्ग), बौद्ध भारती ग्रन्थमाला, वाराणसी, 2009, पृष्ठ 532
9. सांकृत्यायन, राहुल : बौद्ध दर्शन, प्रथम संस्करण, किताब महल, इलाहाबाद, 2022, पृ0–21, 22
10. शास्त्री, द्वारिकादास : संयुक्तनिकाय पालि (निदानवग्गो, खन्धकवग्गो च), बौद्ध भारती ग्रन्थमाला (41), वाराणसी, 2009, पृष्ठ 382
11. पाण्डेय गोविन्दचंद्र : बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2010
12. वही।

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 199-203
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मगध की राजधानी राजगृह में पाषाण चैत्य
(ऐतिहासिक श्रोतों एवं नवीन पुरातात्विक साक्ष्यों का विश्लेषण)

ललन कुमार सिंह
व्याख्याता, भूगोल विभाग
पी0 एम0 एस0 कॉलेज, बिहारशरीफ, नालंदा, बिहार।

सारांश –

प्राचीन भारत के इतिहास में राजगृह का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। यह एक ऐसा नगर था जिसमें धार्मिक सांस्कृतिक और राजनैतिक तीनों क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पाँच पर्वतों से घिरा यह नगर अपने आप में एक प्राकृतिक दुर्ग था। बौद्ध साहित्य में राजगृह का उल्लेख बार–बार मिलता है। यह नगर न केवल मगध महाजनपद की प्रारम्भिक राजधानी थी, बल्कि बौद्ध धर्म के विकास, संरक्षण और प्रसार का एक प्रमुख केन्द्र भी रहा। यहाँ भगवान बुद्ध ने अनेकों बार प्रवास किया, उपदेश दिए तथा बौद्ध संघ को संगठित रूप प्रदान किया। वैभार पर्वत, जो राजगृह के पंचवर्तीय श्रृंखला का एक अंग है, बौद्ध परम्परा में विशेष स्थान रखता है। हाल के वर्षों में भी वैभार पर्वत क्षेत्र में पाषण चैत्य से संबंधित पुरातात्विक अवशेषों की पहचान एवं खोज ने यह संकेत दिया है कि यह क्षेत्र बौद्ध धर्म के संघीय गतिविधियों तथा धार्मिक अनुष्ठानों का महत्वपूर्ण केन्द्र रहा होगा। वैभार पर्वत पर पाषाण चैत्य की खोज इस तथ्य को पुष्ट करती है कि यहाँ केवल प्राकृतिक या सैनिक संरचनाएँ ही नहीं बल्कि सुनियोजित धार्मिक स्थापत्य भी विकसित हुआ। पाषाण चैत्य का अर्थ होता है पाषाणों ने बना हुआ चैत्य। प्रस्तुत शोध–पत्र में वैभार पर्वत पर पाषाण चैत्य की खोज, उसकी स्थापत्य विशेषताओं, राजगृह की सुरक्षा प्रणाली तथा बौद्ध धम्म से इसके गहरे संबंधों का विस्तृत ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

शब्दकूट – पाषाण, चैत्य, बुद्ध, मगध, प्राचीन, पाली, राजगृह, बाबरी, शिष्य, ऐतिहासिक, पुरातात्विक, मनोरम।

परिचय –

यह पाषाण चैत्य राजगृह के समीप एक पर्वत पर स्थित है। प्राचीन पालि साहित्य के सुतनिपात के परायणवग्ग में इसका उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि पाषाणकं चेतियं च रमणीय मनोरमं। यानि यह पाषाण चैत्य रमणीय और मनोरम था। कोशल जनपद के श्रावस्ती का एक ब्राह्मण जिनका नाम बाबरी ब्राह्मण था जिनमें तीन महापुरुषों के लक्षण थे एवं तीन वेदों में परांगत थे। वे अपने सोलह शिष्यों (प्रत्येक के हजारों अनुयायी) के साथ दक्षिणापथ में गोदावरी नदी के तट पर प्रव्रजीत होने की लालसा से उँछ तथा फल से जीवनयापन कर रहा था। उसे जब पता चला कि शाक्यपुत्र कपिलवस्तु से निकलकर परमज्ञान प्राप्त किये हैं तो अपने सोलह

जटा और मृगचर्मधारी विद्वान शिष्यों को बुद्ध के बारे में बताया कि उनमें महापुरुषों के बतीस लक्षण हैं। श्रावस्ती जाकर उनके बारे में पता करो। तब सोलह ब्राह्मण शिष्यों (अजीत, तिस्समेत्तेय, पुण्णक, मेतगू, द्योतक, उपसीव, नन्द, हेमक, तोदेय्य–कप्प, जतुकण्णि, भद्राबुद्ध, उदय, पोसाल, मोघराज एवं महर्षि पिंगिय) ने गोदावरी तट के आश्रम से चलते हुए प्रतिष्ठान, उज्जैन, गोनद्द, विदिशा, वनसह्य, कोशाम्बी, साकेत और श्रावस्ती आये, जहाँ भगवान बुद्ध को न पाकर फिर सेतव्या, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा, भोगनगर और वैशाली होते हुए मगध राजधानी के रमणीय, मनोरम पाषाण चैत्य में पहुँचे। इसका रोचक विवरण सुतनिपात के परायणवग्ग में मिलता है।

बावरिं अभिवादेत्वा, कत्वा च नं पदक्खिणं।
जटाजिनधरा सव्वे, पक्कामुं उत्तरामुखा।। 35।।
अळकस्स पतिट्ठानं, पुरिमं माहिस्सतिं तदा।
उज्जेनिं चापि गोनद्ध, वेदिसं वनसव्हयं ।। 36।।....
कोसम्बि चापि साकेतं, सावत्थिच पुरुत्तमं।..
सेतव्यं कपिलवत्थं, कुसिनारं च मन्दिरं।। 37।।
पावं च भोगनगरं, वेसालिं मागधं पुरं।
पासाणकं चेतियं च, रमणीयं मनोरमं।। 38।।

जैसे पिपासित मनुष्य शीतल जल की, वनिक महालाभ की और गर्मी से पीड़ित छाया की इच्छा करते हैं, वैसे हीं वे शीघ्र पर्वत पर चढ़ गये। उस समय भगवान भिक्षु संघ के बीच भिक्षुओं को वैसे हीं धर्मोपदेश दे रहे थे जैसे कि सिंह वन में गरजता है। शिष्यों ने रश्मि रहित सूर्य तथा पूर्णिमा के दिन पूर्णता को प्राप्त चन्द्रमा जैसे सम्बुद्ध को देखा। सुतनिपात के परायणवग्ग में आगे लिखा है कि बाबरी ब्राह्मण के शिष्य अजीत ने भगवान बुद्ध से प्रश्न किये कि मेरे आचार्य की आयु बतावें, जाति बतावें, गोत्र बतावें, लक्षण बतावें, मन्त्रों की योग्यता बतावें और बतावें कि ब्राह्मण (बाबरी) कितने मन्त्रों का पाठ करते हैं? तो भगवान बुद्ध ने उत्तर दिये कि– उसकी आयु सौ वर्ष की है और वह गोत्र से बाबरी है। उसके शरीर में तीन लक्षण हैं और वह त्रिवेद पारंगत है। लक्षण (शास्त्र) में, इतिहास में तथा निघटु सहित कैटुम में पाँच सौ मन्त्रों का पाठ करता है और वह अपने धर्म में पारंगत है। अजीत का भगवान बुद्ध से एक प्रश्न ये भी था कि–चारों ओर सोते बह रहे हैं, सोतों का क्या निवारण है? सोतों का संवर (ढक्कन) बतलाओ, किससे सोते ढांके जा सकते हैं?

सवन्ति सब्बधी सोता, सोतानं किं निवारणं।
सोतानं सवरं वूहि, केन सोता पिथिय्यरे।। 3।।

अजीत का प्रश्न से पता चलता है कि वहाँ पानी के सोते बहते हुए नजर आ रहे थे। मतलब बरसात का दिन था। बाबरी ब्राह्मण एवं उनके 16 शिष्यों को कुछ दिन पहले हीं पता चला था कि शाक्यपुत्र सिद्धार्थ को परमज्ञान प्राप्त हुआ है। यानि ये दुसरा वर्षावास का समय होने की प्रबल संभावना है। तीसरा ये कि भगवान बुद्ध द्वितीय वर्षावास राजगृह के सीतवन में हीं व्यतीत किये थे। इसी प्रकार भगवान बुद्ध से सोलहो शिष्यों ने अपने–अपने सवाल का उत्तर इस पाषाण चैत्य पर पुछा और उनके उत्तर से संतुष्ट हुआ। परायण सुत का उपदेश भगवान बुद्ध ने इसी पाषाण चैत्य पर दिये थे।

मुख्य विषय एवं पहचान –

शोधार्थी ने प्राचीन साहित्यों के विवरण के आधार पर इसकी वर्तमान स्थिति का पता लगाया है। वर्तमान में यह स्थान वैभार पर्वत के उत्तरी भाग में एवं घाटी से सटे पुरब, उपरी चोटी पर स्थित है तथा राजगृह के गर्म झरना (ब्रह्मकुण्ड) से वैभार पर्वत पर दो किलोमीटर पश्चिम की ओर चढ़कर पर्वत के उत्तरी भाग में अवस्थित है। यह पाषाण चैत्य तीन तरफ से घने जंगली वृक्षों से घिरा हुआ एक ऊँचा स्थान है। इसके चारों तरफ पाँच से सात फीट उँची वर्गाकार चट्टानों की दीवार खड़ा कर उसमें मिट्टी भरकर समतल किया गया है। इसके दक्षिण–पूरब से इस पर आने–जाने का एक मार्ग है जिसकी वर्तमान में चौड़ाई बारह से अठारह फीट तक है।

इस पाषाण चैत्य की लम्बाई पुरब से पश्चिम तक दो सौ फीट एवं पुरब में इसकी चौड़ाई 86 फीट और पश्चिम में इसकी चौड़ाई 114 फीट है। यह N 25º-00'.15* एवं E 85º 24'-22* पर स्थित है एवं समुद्र तल से इसकी उँचाई 1103 फीट है।

इस पाषाण चैत्य के दो दिशा से राजगीर सुरक्षा प्राचीर (साइक्लोपियन वॉल) है। इस प्राचीर की चौड़ाई लगभग 16 फीट है। राजगीर सुरक्षा प्राचीर से लगभग 200 से 300 फीट की दुरी पर एवं प्राचीर से लगभग 22 फीट की उँचाई पर यह पाषाण चैत्य है। इस चैत्य से सटे पश्चिम दिशा में सुरक्षा प्राचीर के बाद वैभारगिरि की मनोरम घाटी एवं वेलवाडोभ (वेलवाडोल) तालाब है, जिसकी सुन्दरता देखते बनती है। इसी मनोरम घाटी और पाषाण चैत्य से ठीक नीचे की ओर सीतवन में सर्पसोण्डिक (सर्प के फन के आकार का 70 फीट उँची चट्टान) है, जहाँ भगवान बुद्ध अक्सर निवास करते थे। इस पाषाण चैत्य की प्रशंसा में परायणवग्ग के 38वाँ श्लोक में लिखा भी गया है कि–पाषाणकं चेतियं च, रमणीयं मनोरमं ।। 38 ।। ये पाषाण चैत्य घाटी के उपर स्थित रहने के कारण यहाँ की छटा रमणीय और मनोरम दिखती है।

इसकी पहचान खोजकर्त्ता ने प्राचीन पालि साहित्यों के आधार पर वैभार पर्वत के सबसे उत्तरी किनारे के उपरी शिखर पर किया है जिसकी पुष्टि प्राचीन साहित्यों से मेल खाती है।

निष्कर्ष –

प्राचीन राजगृह में पाषाण चैत्य का बौद्ध इतिहास के साथ–साथ भारतीय इतिहास में इसका स्थान काफी महत्वपूर्ण है। यह प्राचीन राजगृह के अनेक ऐसे धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्थलों में से एक था लेकिन इन सब की स्मृतियाँ ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक रूप से विलुप्त हो चुकी थी। इनके प्रकाश में आ जाने के पश्चात मगध की राजगृह के साथ–साथ भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण तथ्य की वृद्धि हो जाएगी। सम्भवतः भारतीय इतिहास में पाषाण चैत्य पहला पुरातात्विक साक्ष्य है जो दक्षिण भारत से विंध्य पर्वत पारकर उत्तर भारत में आने का ऐतिहासिक विवरण प्रदान करता है। भविष्य में यदि इस क्षेत्र में विस्तत उत्खन्न और बहुविषयक शोध किये जाए तो प्राचीन मगध और बौद्ध इतिहास के अनेक नये आयाम सामने आ सकते हैं।

संदर्भ –

1. भिक्षु धर्मरत्न, 1977 (प्रथम संस्करण) सुतनिपात, पृष्ठ–254 से 266, मोतीलाल बनारसी दास।
2. डा0 भिक्षु धर्मरक्षित, 1983 (द्वितीय संस्करण) सुतनिपात, पृष्ठ–254 से 266, मोतीलाल बनारसी दास।
3. भरत सिंह उपाध्याय, 2021 (प्रथम संस्करण) बुद्धकालिन भारतीय भूगोल, पृष्ठ–412, सम्यक प्रकाशन।
4. Kuraishi, M. H. (1956) Rajgir (4th ed., rev. by A. Ghosh). Delhi : Manager of Publications.

परिशिष्ट–

वैभार पर्वत

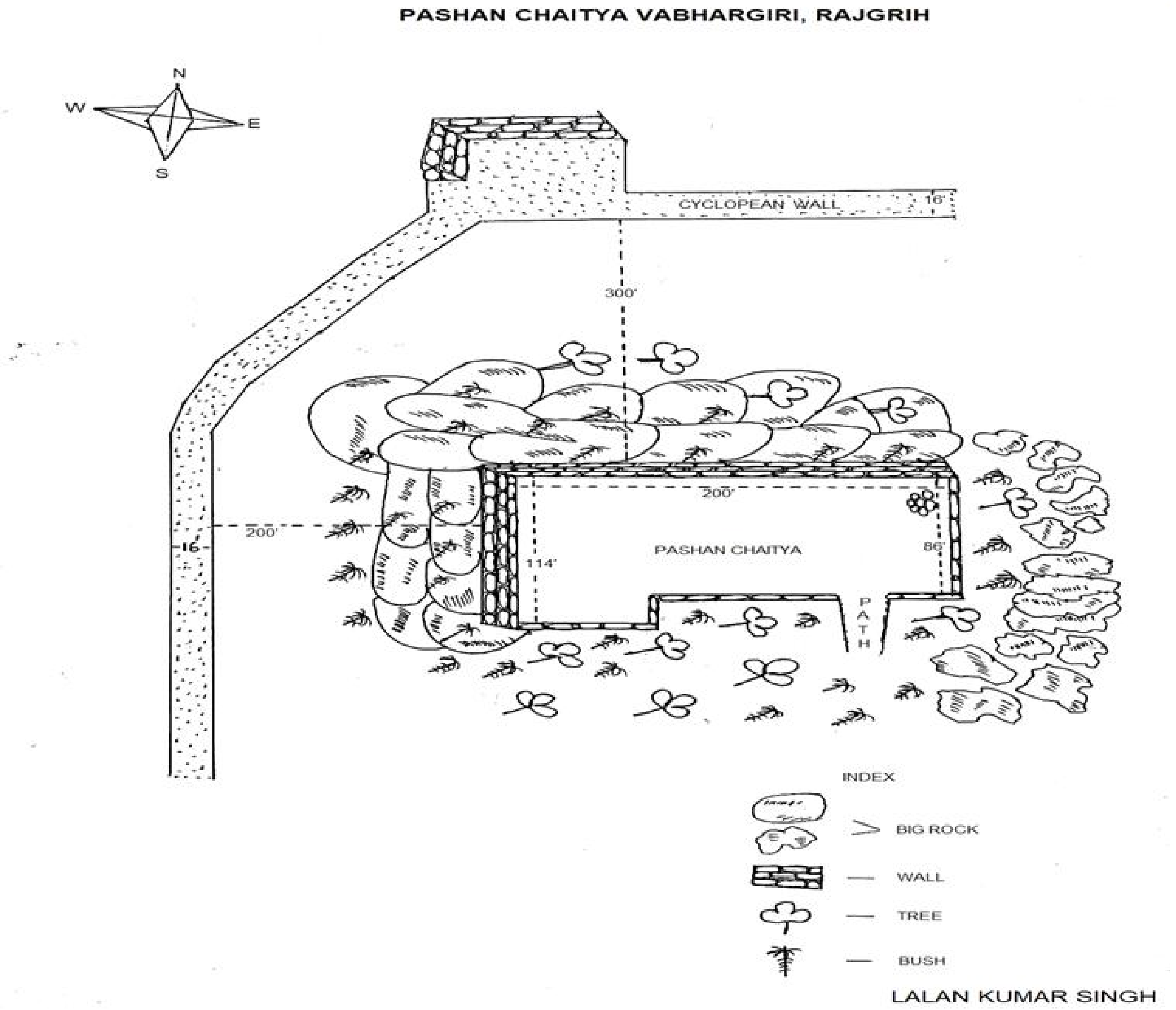

पाषाण चैत्य की दीवार

शोधकर्ता

पाषाण चैत्य, वैभारगिरि, राजगृह

मो0–9204234865, 7004775486

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 204-209
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दामोदर खडसे द्वारा संकलित सूर्यबाला की कहानियों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : संवेदना, यथार्थ और अंतर्द्वंद्व का विश्लेषण

डॉ. ममता शर्मा
सहायक आचार्य हिंदी
एस बी के राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जैसलमेर, राजस्थान।

समकालीन हिंदी कथा–साहित्य के विशाल फलक पर सूर्यबाला एक ऐसी सशक्त और संवेदनशील रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जिनके लेखन में जीवन की सात्विकता, सहजता और यथार्थ की जटिल परतों का एक विरल समन्वय दिखाई देता है। डॉ. दामोदर खडसे द्वारा संपादित और संकलित 'सूर्यबाला का सृजन संसार' (2017) इस दृष्टि से एक अत्यंत महत्वपूर्ण और आधारभूत दस्तावेज है, जो लेखिका की कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से उनके रचनात्मक व्यक्तित्व की पारदर्शिता और उनकी संवेगात्मक गहराई की सूक्ष्म पड़ताल करता है। सूर्यबाला के पात्र हाड़–मांस के पुतले मात्र नहीं हैं, बल्कि वे अपनी परिस्थितियों से निरंतर जूझते, व्यवस्था की चक्की में पिसते और फिर भी अपनी आस्था तथा मानवीय संवेदनाओं को सहेजने वाले जीवंत अस्तित्व हैं। उनकी कहानियों में विशेषकर 'गृहप्रवेश', 'सुनंदा छोकरी की डायरी', 'माई नेम इज ताता' और 'मानुष गंध' जैसी रचनाओं में मनोवैज्ञानिक अध्ययन के वे अनेक आयाम उद्घाटित होते हैं, जो आधुनिक मनुष्य की आंतरिक असुरक्षा, अकेलेपन, विस्थापन और मानवीय संवेदनाओं के क्रमशः होते जा रहे क्षरण की मर्मस्पर्शी कहानी कहते हैं। इन कहानियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण न केवल पात्रों के व्यवहार को स्पष्ट करता है, बल्कि उस जटिल सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश की भी गहरी व्याख्या करता है, जिसमें ये पात्र अपनी पहचान और अस्तित्व की तलाश में भटक रहे हैं।

डॉ. दामोदर खडसे का संपादन और 'सूर्यबाला का सृजन संसार' की वैचारिक पृष्ठभूमि :

डॉ. दामोदर खडसे ने सूर्यबाला के लेखन और उनके व्यक्तित्व के बीच की उस सूक्ष्म रेखा को पहचाना है, जहाँ लेखन और जीवन एक–दूसरे में इस प्रकार घुल–मिल जाते हैं कि उनकी पारदर्शिता अद्भुत हो जाती है। खडसे का मानना है कि सूर्यबाला की रचनाएं उनकी सादगी और निरंतरता की गवाह हैं। उनके संकलन में इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि लेखिका के पात्र घर, परिवार और समाज की उन स्थितियों से उभरते हैं जो अक्सर व्यवस्था द्वारा छली गई होती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि सूर्यबाला अपने पात्रों के विकास क्रम में स्वयं हस्तक्षेप नहीं करतीं पात्र अपनी भाषा में अपनी बात कहते हुए अपना जीवन

स्वयं गढ़ते हैं। खडसे द्वारा किया गया यह विश्लेषण स्पष्ट करता है कि सूर्यबाला की कहानियों में विसंगतियों के प्रति जो व्यंग्य है, वह समाज का 'ऑपरेशन' करने जैसा है, जो अंततः एक सकारात्मक भाव की ओर संकेत करता है।

'गृहप्रवेश' : महानगरीय असुरक्षा और संबंधों की आंतरिक घुटन का मनोविश्लेषण :

'गृहप्रवेश' कहानी सूर्यबाला की उन चुनिंदा रचनाओं में से एक है, जो आधुनिक महानगरीय जीवन की भयावह मनोवैज्ञानिक स्थिति का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत करती है। यहाँ भौतिक सुख–सुविधाओं और सीमेन्ट–कांक्रीट की ऊँची इमारतों के बीच मनुष्य की आंतरिक सुरक्षा का भाव जिस प्रकार विखंडित हुआ है, वह लेखिका की पैनी दृष्टि का परिचायक है। मनोवैज्ञानिक स्तर पर 'गृहप्रवेश' केवल एक नए घर में प्रवेश करने की भौतिक क्रिया नहीं है, बल्कि यह उस असुरक्षा, विघटन और आतंक के बीच जी पाने की जद्दोजहद का चित्रण है, जहाँ ईंट और पत्थरों के ढांचों के बीच भी घर जैसी सुरक्षा और आत्मीयता कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती।

असुरक्षा और आतंक का मनोवैज्ञानिक प्रभाव :

कहानी का केंद्रीय मनोवैज्ञानिक आधार यह है कि वर्तमान युग में मनुष्य एक स्थायी असुरक्षा (Paranoia) के साये में जी रहा है। महानगर की भीड़, शोर और अनिश्चितता व्यक्ति के अवचेतन में एक ऐसा भय पैदा करती है, जो उसे हर बाहरी व्यक्ति और स्थिति के प्रति सशंकित रखता है। 'गृहप्रवेश' में पात्रों के बीच की घुटन और तनाव इसी सामाजिक असुरक्षा की उपज है। पात्र सुरक्षित रहने के लिए उन असामाजिक तत्वों के साथ 'त्रासद समझौते' करने को विवश होते हैं, जिनसे वे सामान्यतः घृणा करते हैं। यह समझौतावादी प्रवृत्ति (Defense Mechanism) मनुष्य के आत्मसम्मान को धीरे–धीरे क्षीण कर देती है, जिससे उसके व्यक्तित्व में एक प्रकार का आंतरिक विखंडन उत्पन्न होता है।

संबंधों की आंतरिक रुग्णता :

'गृहप्रवेश' में संबंधों का चित्रण यह दिखाता है कि कैसे एक ही छत के नीचे रहने वाले लोग मानसिक रूप से एक–दूसरे से मीलों दूर हैं। यह संचार हीनता (Communication Gap) पात्रों को एक ऐसे मनोवैज्ञानिक एकांत में धकेल देती है, जहाँ वे अपनी ही कुंठाओं के बंदी बन जाते हैं। सीमेन्ट और कांक्रीट की इमारतों की तरह ही पात्रों के हृदय भी 'कांक्रीट' के हो चुके हैं, जिनमें संवेदनाओं का प्रवाह रुक गया है। लेखिका ने इस कहानी में विघटन और हताशा के बीच जो 'जी पाने की कोशिश' का चित्रण किया है, वह वास्तव में आधुनिक मानव की जीजीविषा और उसकी लाचारी के बीच के द्वंद्व को दर्शाता है।

'सुनंदा छोकरी की डायरी' : बाल मनोविज्ञान और अभावजन्य परिपक्वता का आघात :

सूर्यबाला की कहानियों में बच्चों का मनोविज्ञान एक अत्यंत मार्मिक और विचारोत्तेजक विषय रहा है। 'सुनंदा छोकरी की डायरी' मुंबई जैसे महानगर में रहने वाली एक बाल मजदूर 'सुनंदा' के माध्यम से गरीबी, उत्तरदायित्व और मासूमियत के असमय खो जाने की मर्मस्पर्शी गाथा है। यह कहानी यह स्पष्ट करती है कि कैसे आर्थिक अभाव और प्रतिकूल पारिवारिक परिस्थितियां एक बच्चे के चंचल मन को समय से पूर्व एक कठोर वयस्क के रूप में परिपक्व (Adultification) कर देती हैं।

उत्तरदायित्व का बोझ और शिक्षा की ललक :

सुनंदा एक ऐसी पात्र है, जिसके भीतर शिक्षा के प्रति गहरा अनुराग है। वह अपनी मालकिन (हिरवा

फाटक वाली बाई) को बताती है कि स्कूल में उसे 'शाणी छोकरी' (समझदार लड़की) कहा जाता था क्योंकि वह पाठ जल्दी याद करती थी। लेकिन उसके पिता का अपाहिज हो जाना और बाद में उनका व्यसनाधीन हो जाना, उसे अपनी माँ का हाथ बँटाने के लिए घरेलू नौकरानी के काम में धकेल देता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सुनंदा के भीतर 'सुपर–इगो' (Super-ego) का अत्यधिक विकास दिखाई देता है, जहाँ वह अपनी इच्छाओं का दमन करके अपने परिवार के अस्तित्व के लिए स्वयं को होम कर देती है।

अभावजन्य आक्रामकता और भूमिका परिवर्तन (Role Reversal) :

कहानी के उत्तरार्ध में जब उसकी माँ की मृत्यु हो जाती है और पिता जेल चले जाते हैं, तो सुनंदा का मनोविज्ञान पूरी तरह रूपांतरित हो जाता है। वह अपने दो छोटे भाई–बहनों की जिम्मेदारी उठाने के लिए उसी स्कूल में झाड़ू लगाने लगती है, जहाँ वह कभी एक मेधावी छात्रा थी। यहाँ मनोवैज्ञानिक स्तर पर एक गंभीर 'भूमिका परिवर्तन' दिखाई देता है। वह खेल–कूद की उम्र में अपने छोटे भाई–बहनों को कूड़ा इकट्ठा करने के लिए बोरा पकड़ा देती है, जो यह दर्शाता है कि अभाव ने उसके भीतर की नैसर्गिक कोमलता को उत्तरजीविता (Survival) की कठोरता में बदल दिया है।

पिता का पतन और बच्चे का संताप :

सुनंदा के पिता का चरित्र उन व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है, जो अपनी शारीरिक और मानसिक लाचारी को शराब और नशे में डुबो देना चाहते हैं। पिता का नशे में 'बंदर' की तरह बीच सड़क पर नाचना और लोगों का उसे देखकर हंसना, सुनंदा के मन में आत्मग्लानि और सामाजिक लज्जा (Social Shame) का गहरा बोध पैदा करता है। यह स्थिति एक बच्चे के मानस पर गहरा घाव छोड़ती है, जहाँ वह अपने ही रक्त–संबंध के प्रति घृणा और सुरक्षा के भाव के बीच झूलती रहती है।

'माई नेम इज ताता' : भाषिक विस्थापन और आधुनिकता का मनोवैज्ञानिक संकट :

'माई नेम इज ताता' कहानी के माध्यम से सूर्यबाला ने आधुनिक शहरी संस्कृति और लुप्त होते जा रहे पारंपरिक संस्कारों के बीच के द्वंद्व को बच्चों के दृष्टिकोण से उभारा है। यह कहानी नई पीढ़ी के उस विस्थापित मनोविज्ञान (Displaced Psychology) को रेखांकित करती है, जो तकनीकी प्रगति और बाजारीकरण के दबाव में अपने दादा–दादी और पूर्वजों के साथ भावनात्मक जुड़ाव महसूस करने में असमर्थ है।

पीढ़ियों का अंतराल और भावनात्मक शून्यता :

कहानी में यह सूक्ष्मता से दिखाया गया है कि कैसे शहरी बच्चे अपनी जड़ों को केवल एक औपचारिकता या 'रिश्तों का बोझ' मानने लगे हैं। 'माई नेम इज ताता' में बच्चों के बोलने के ढंग और उनकी भाषा में जो अंग्रेजीपन या महानगरीय मुंबईया पुट है, वह उनके सांस्कृतिक विस्थापन का परिचायक है। उनके लिए 'दूज का टीका' जैसी परंपराएं केवल उपहार या पैसे लेने का एक जरिया मात्र हैं, जिन्हें वे एक 'टैक्स' की तरह देखते हैं। मनोवैज्ञानिक रूप से यह 'संवेगात्मक विच्छेद' (Emotional Detachment) की स्थिति है, जहाँ मनुष्य भौतिक रूप से साथ होकर भी मानसिक रूप से पूरी तरह कटा हुआ है।

तकनीक और मानवीय संवेदनाओं का ह्रास :

लेखिका ने इस कहानी और 'दादी और रिमोट' जैसी अन्य रचनाओं में यह स्पष्ट किया है कि तकनीक (जैसे टीवी और रिमोट) किस प्रकार मनुष्य के सहज मनोविज्ञान को नियंत्रित कर रही है। एक सरल स्वभाव

वाली ग्रामीण महिला, जो कभी अत्यंत संवेदनशील थी, शहर आकर टीवी पर हिंसा और मृत्यु को देखते–देखते उसके प्रति इतनी संवेदनहीन हो जाती है कि उसे रिमोट से चैनल बदलना अधिक महत्वपूर्ण लगता है। यही संवेदनहीनता बच्चों में भी संचरित हो रही है, जो रिश्तों की गर्माहट को महसूस करने के बजाय उसे यांत्रिक औपचारिकताओं में बदल रहे हैं।

'मानुष गंध' : नव–उपनिवेशवाद, अकेलापन और अस्तित्वगत संताप :

'मानुष गंध' कहानी सूर्यबाला की लेखनी के उस दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक विस्तार को दर्शाती है, जहाँ वे भारतीय युवाओं के विदेश पलायन (Brain Drain) और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले मानसिक संकट की सूक्ष्म पड़ताल करती हैं। कहानी का शीर्षक 'मानुष गंध' (मनुष्य की गंध या स्पर्श) ही उस मौलिक मानवीय संबंध की ओर संकेत करता है, जो आधुनिकता और यांत्रिकता के इस दौर में पूरी तरह लुप्त होता जा रहा है।

सफलता का भ्रम और आंतरिक अलगाव (Alienation) :

कहानी में मेधावी डॉ. योग्यता और उनकी उपलब्धियों के मूल्यांकन के माध्यम से यह संदेश दिया गया है कि कैसे सफलता की अंधी दौड़ में मनुष्य अपनी मिट्टी और अपने लोगों से दूर हो जाता है। विदेशों में उच्च पद, प्रतिष्ठा और भौतिक सुख प्राप्त करने के बाद भी पात्रों के भीतर एक गहरा खालीपन (Inner Emptiness) बना रहता है। 'बैजनाथ' जैसा पात्र इस नव–उपनिवेशवादी संस्कृति के बीच घुटता हुआ महसूस करता है, जहाँ केवल उपयोगिता और दक्षता को महत्व दिया जाता है, मानवीय संवेदनाओं को नहीं।

सांस्कृतिक संकट और अस्तित्व की पहचान :

सूर्यबाला यह स्पष्ट करती हैं कि जो युवा विदेशों में बस रहे हैं, वे न केवल भौगोलिक रूप से दूर हो रहे हैं, बल्कि उनके भीतर एक ऐसा मनोवैज्ञानिक द्वंद्व पैदा हो रहा है जो उन्हें न तो पूरी तरह 'विदेशी' होने देता है और न ही 'भारतीय' बने रहने देता है। यह कहानी केवल एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि एक पूरे वर्ग की मानसिक स्थिति का चित्रण है जो 'सफल' होने की होड़ में अपनी 'मानुष गंध' (मानवीय पहचान) खोता जा रहा है। लेखिका का उद्देश्य यहाँ यह दिखाना है कि कैसे नव–उपनिवेशवाद मानवीय जीवन को कूंठा, अतृप्ति और अकेलेपन के संकट में डाल रहा है।

महानगरीय बोध : संवेदनहीनता, भ्रष्टाचार और नैतिक क्षरण का मानसिक प्रभाव :

सूर्यबाला का अधिकांश कथा–साहित्य महानगरों (विशेषकर मुंबई) की विसंगतियों और वहाँ रहने वाले विभिन्न वर्गों के मानसिक दबावों का एक प्रामाणिक दस्तावेज है। उनके उपन्यासों जैसे 'सुबह के इंतजार तक' और 'अग्निपांखी' में भी महानगरीय संत्रास का वही स्वर सुनाई देता है जो उनकी कहानियों में व्याप्त है।

गरीबी और संवेदनहीनता का मनोविज्ञान :

महानगर में गरीबी केवल संसाधनों का अभाव नहीं है, बल्कि यह मनुष्य को मनोवैज्ञानिक रूप से कठोर और निर्मम बना देती है। 'अग्निपांखी' उपन्यास में जयशंकर का अपनी माँ के प्रति जो क्रूर व्यवहार है, वह उसकी आर्थिक तंगी और महानगरीय दबाव का परिणाम है। वह अपनी माँ से चिल्लाते हुए कहता है कि वह गाँव का नाम न ले, क्योंकि उसकी वास्तविकता अब इसी संकरी कोठरी की गंदगी और अभाव में निहित है। ६ x ६ फुट की कोठरी में जवान बहू–बेटे और बूढ़ी माँ का साथ रहना न केवल एक सामाजिक समस्या है, बल्कि यह मनुष्य

की मानसिक मर्यादाओं को भी छिन्न–भिन्न कर देता है।

भ्रष्टाचार का सामान्यीकरण और बाल मानस :

सूर्यबाला की कहानियों में यह मनोवैज्ञानिक सत्य भी उभरकर आता है कि आधुनिक समाज में भ्रष्टाचार अब एक 'सहज संस्कार' बन चुका है। 'गीता चौधरी का आखिरी सवाल' जैसी कहानियों में यह दिखाया गया है कि कैसे एक छोटी बच्ची को यह पता है कि पुलिया बनाने में होने वाली 'ऊपरी कमाई' कोई गलत बात नहीं है, बल्कि यह सबका हिस्सा है। यह दर्शाता है कि भ्रष्टाचार अब समाज के अवचेतन में इस कदर पैठ चुका है कि नई पीढ़ी इसे नैतिकता के चश्मे से देखना ही छोड़ चुकी है।

आवास की समस्या और मानसिक रुग्णता :

शहरों में सिर छिपाने की जगह न होना और झुग्गी–झोपड़ियों की नारकीय स्थिति पात्रों में एक स्थायी मानसिक तनाव पैदा करती है। सार्वजनिक शौचालयों की लंबी कतारें, पानी के लिए लड़ाई और गंदगी के बीच जीवन यापन करना मनुष्य की संवेदनाओं को कुंद कर देता है। 'मटियाला तीतर' और 'जेब्रा' जैसी कहानियों में लेखिका ने इसी महानगरीय नर्क का चित्रण किया है, जहाँ पात्र नशे और अपराध के माध्यम से अपनी मानसिक घुटन से मुक्ति पाने का व्यर्थ प्रयास करते हैं।

स्त्री मन और सामाजिक संधियां : एक मनोवैज्ञानिक पड़ताल :

सूर्यबाला के कथा–साहित्य में स्त्रियों की स्थिति और उनके आंतरिक मानसिक संघर्ष का चित्रण अत्यंत सूक्ष्म और विविधतापूर्ण है। वे स्त्रियों को केवल 'पीड़ित' के रूप में नहीं, बल्कि उन स्वाभिमानी पात्रों के रूप में चित्रित करती हैं जो प्रतिकूल स्थितियों में भी अपनी गरिमा और आस्था को बचाए रखने का प्रयास करती हैं।

समझौते और अंर्तद्वंद्व की गाथा :

उपन्यास 'मेरे संधिपत्र' की नायिका शिवा का व्यक्तित्व सूर्यबाला की नारी–दृष्टि को स्पष्ट करता है। शिवा का विवाह एक ऐसे परिवार में होता है जहाँ उसे तीन सौतेली पुत्रियाँ विरासत में मिलती हैं। उसके लिए जीवन संधियों (Treaties) और समझौतों का एक अटूट सिलसिला है। मनोवैज्ञानिक रूप से शिवा का चरित्र उस 'अकेलेपन' और 'घुटन' को दर्शाता है, जहाँ वह अपनों के बीच होकर भी पराई बनी रहती है। उसका 'हिम–पिंड' की तरह पिघलना और नया जीवन जीने की छटपटाहट यह दिखाती है कि स्त्री का मन अंततः अपनी स्वतंत्र पहचान और प्रेम की आकांक्षा से विमुख नहीं हो सकता।

पितृसत्तात्मक सोच और मूक वेदना :

'रमन की चाची' और 'सुमिन्तरा की बेटियाँ' जैसी कहानियों में सूर्यबाला ने एक नारी की उस वेदना को चित्रित किया है, जहाँ उसे समाज और परिवार द्वारा निरंतर उपेक्षित और शोषित किया जाता है। रमन की चाची को उसका पति 'जड़बुद्धि' और जाहिल समझता है, जो पितृसत्तात्मक समाज की उस संकीर्ण सोच का परिचायक है जो स्त्री को केवल एक वस्तु की तरह 'रखने' में विश्वास करती है। ऐसी स्थितियों में महिला पात्रों के भीतर जो मूक विद्रोह होता है, वह उनकी आँखों और व्यवहार की सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं में झलकता है।

निष्कर्ष :

मानवीयता के मोती को सहेजने का संकल्प :

दामोदर खडसे द्वारा संकलित सूर्यबाला का कथा–साहित्य आधुनिक समाज का एक ऐसा सूक्ष्म

मनोवैज्ञानिक मानचित्र प्रस्तुत करता है, जहाँ विकास की चमक–धमक के बीच मानवीय रिश्तों की ऊष्मा खोती जा रही है। 'गृहप्रवेश' की असुरक्षा हो, 'सुनंदा' का संघर्ष हो या 'मानुष गंध' का अकेलापन–ये सभी स्थितियाँ उस सांस्कृतिक और मानसिक संकट की ओर संकेत करती हैं, जहाँ मनुष्य अपनी ही बनाई व्यवस्था का कैदी बन चुका है। सूर्यबाला की कहानियों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन हमें यह सिखाता है कि महानगरीय बोध और आधुनिकता के दबाव के बावजूद, मनुष्य के भीतर का 'आदमी' अभी पूरी तरह मरा नहीं है। लेखिका का लक्ष्य 'आदमी की सीप में आदमियत का मोती सुरक्षित बचा ले जाना' है। डॉ. दामोदर खडसे का यह संकलन सूर्यबाला के उस सृजन संसार का द्वार खोलता है, जहाँ हर कहानी पाठक को अपनी अंतरात्मा में झाँकने और समाज की विसंगतियों के बीच अपनी मानवीय पहचान को पुनः खोजने के लिए प्रेरित करती है। सूर्यबाला के पात्रों की यह यात्रा संघर्ष से आस्था की ओर, और घुटन से मुक्ति की ओर की एक सतत मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो उन्हें हिंदी कथा–साहित्य में एक विशिष्ट और अपरिहार्य स्थान दिलाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. अग्रवाल, शोभा. (संपादक). (2018). सूर्यबाला की कहानियों में निहित लोक–जीवन में जीवन मूल्य। शोध समागम, 1(3), 159–163 ।
2. खडसे, दामोदर. (संपादक). (2017). सूर्यबाला का सृजन संसार : कथा–अंतर्कथा–अंतरपाठ. कानपुर अमन प्रकाशन।
3. घृतलहरे, कुमुदिनी., एवं बारा, मधुलता. (2014). सूर्यबाला की कहानियों में निम्नवर्ग का यथार्थ चित्रण। Research Journal of Humanities and Social Sciences, 5(3), 283–285।
4. सूर्यबाला. (1992). गृहप्रवेश. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन।
5. सूर्यबाला. (2005). मानुष–गंध. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन।
6. सूर्यबाला. (1988). थाली भर चाँद. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन।
7. सिन्हा, पखुरी. (2010). नवउपनिवेशन और सांस्कृतिक संकट : समकालीन हिंदी कहानी के संदर्भ में. University of Calicut (Thesis)

मोबाइल नं.–9414760713

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 210-215
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ईश्वर सिद्धान्त : योग दर्शन और वेदान्त का मूलभूत अन्तर

डॉ. शत्रुघ्न सिंह, सहायकाचार्य एवं शोध निदेशक
बृजेश कुमार पाण्डेय, शोधार्थी,
जगद्गुरु रामानंदाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय जयपुर (राजस्थान)

सारांश –

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश– ये पाँच क्लेश हैं। धर्म और अधर्म कर्म हैं। कर्मों के फल को विपाक कहते हैं। उन कर्मों के फलों के अनुसार निर्मित वासनाएँ संस्कार हैं। ये सभी महत् में रहते हुए भी जीवात्मा में वर्तमान कहे जाते हैं और पुरुष बुद्धि में अवस्थित उन अविद्यादि से उत्पन्न फलों का भोक्ता मान जाता है। जैसे– युद्ध में जय अथवा पराजय वस्तुतः राजा के सैनिकों की होती है परन्तु जय अथवा पराजय का व्यवहार राजा में होता है अर्थात् राजा की मानी जाती है। जो सदा ही इन क्लेशकर्मादि तथा इनके भोग से अछूता है, वही पुरुष–विशेष ईश्वर है। यद्यपि मोक्ष को प्राप्त करने वाले बहुत से मोक्षी होते हैं, उन्होंने तीन प्राकृतिक, वैकारिक और दक्षिणादि बन्धनों को हटाकर मोक्ष प्राप्त किया परन्तु ईश्वर का इन बन्धनों से न कभी सम्बन्ध था और न कभी होगा। जैसे मुक्त हुए पुरुष की मुक्ति से पूर्वकाल में बन्धन की अवस्थिति बनी रहती है, वैसी बन्धन की स्थिति ईश्वर की नहीं होती। अथवा जैसे प्रकृतिलय योगियों की समाधि भंग होने के कारण बाद में शरीरादि के बन्धन की स्थिति सम्भव है, वैसी ईश्वर की नहीं। वह तो हमेशा से ही मुक्त है और हमेशा ही निरातिशायी ऐश्वर्ययुक्त है।

इसके विपरीत ब्रह्मादी दर्शनों में वेदान्त सर्वप्रमुख है। ब्रह्म ही इस दर्शन का प्रधान विषय है। वेदान्त का ब्रह्म तात्त्विक और धार्मिक दोनों ही दृष्टि से महत्ता रखता है वेदांत की लंबी परम्परा में ब्रह्म के स्वरूप और महत्त्व की अनेक रूपों मे विवेचना हुई है। वेदान्त, वेदों के अंतिम सिद्धांतों अर्थात् उपनिषदों का व्यवस्थित रूप है। वेदान्त का प्रतिपादन बादरायण कृत ब्रह्मसूत्र से माना जाता है। ब्रह्मसूत्र विभिन्न उपनिषदों में दी गई शिक्षाओं में सामंजस्य स्थापित करने के लिए लिखा गया था। इसे उत्तर–मीमांसा अथवा शारीरक–मीमांसा भी कहा जाता है।

शब्द कुंजी :– ईश्वर, सृष्टि–प्रक्रिया, बद्ध और मुक्त, सर्वज्ञ, आदिगुरु विज्ञानभिक्षु, वाचस्पति मिश्र, व्यास, वेदान्त, अद्वैत, ब्रह्म, ईश्वर, माया।

शङ्कर के अनुसार ब्रह्म के दो लक्षण है स्वरूप और तटस्थ।[1] स्वरूप लक्षण से ब्रह्म सच्चिदानंद है और तटस्थ लक्षण से ब्रह्म संसार का सृजनकर्ता, पालनकर्ता और संहारक है। ईश्वर सगुण ब्रह्म है ब्रह्म को जब विचार से जानने का प्रयास किया जाता है तब वह ईश्वर माना जाता है। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, एक, अन्तर्यामी, स्वतन्त्र, जगत्सृष्टा, पालनकर्ता और संहारकर्ता है। ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जब माया में दिखता है तब वह ईश्वर हो

जाता है इसलिए शंकर के दर्शन में ईश्वर को माया की उपाधि सहित ब्रह्म माना जाता है। ब्रह्म उपासना का विषय है और कर्म नियम का अध्यक्ष है। ब्रह्म कर्म फलदाता है। माया[2] और अविद्या को शंकर एक ही तत्त्व मानते हैं, माया ब्रह्म की शक्ति है जिसके आधार पर ब्रह्म विश्व का निर्माण करता है। माया के कारण ही निष्क्रिय ब्रह्म सक्रिय हो जाता है। माया सहित ब्रह्म ही ईश्वर है। माया अध्यास रूप है जहाँ जो वस्तु नहीं है वहाँ उस वस्तु को कल्पित करना विवर्त कहलाता है। निर्गुण ब्रह्म में जगत् और रस्सी में सर्प का विवर्त हो जाता है। माया अविद्यारूप और अनादि है।[3]

योग के सूत्रकार व्यास ने मात्र योग के अंतिम लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायक साधनों के रूप में ही ईश्वर का उल्लेख किया है परन्तु वाचस्पति मिश्र एवं विज्ञानभिक्षु ने इसके साथ–साथ उसे सृष्टि के निमित्त कारण के रूप में भी माना है। वाचस्पति मिश्र लिखते हैं कि प्राणी का जो जात्यन्तर परिणाम अर्थात एक शरीर को त्यागकर अन्य शरीर को प्राप्त करना है, उसमें कारण रूप प्रकृत्यापूर के धर्मादि तो मात्र निमित्त ही है, प्रयोजक नहीं, क्योंकि कोई भी कार्य अपने कारण का प्रवर्तक नहीं हो सकता। प्रवर्तक एक स्वतन्त्र व्यक्ति होता है यथा घट बनाते समय मिट्टी, दण्ड, चक्र आदि से स्वतन्त्र कुम्हार। यहाँ पर यह स्वतन्त्र व्यक्ति ईश्वर ही है जो कि जीव के बन्धनों को दूर कर धर्माधिष्ठान के लिए प्रेरित करता है।[4] ईश्वर द्वारा जगत् के निर्माण किए जाने का कारण देते हुए वह लिखते हैं यद्यपि यह नित्यतृप्त है तथापि प्राणियों पर अनुग्रह हेतु वह ऐसा करते हैं, उनको सुख दुःख से सम्पूर्ण संसार की सृष्टि करने के द्वारा अकारुणिक नहीं माना जा सकता क्योंकि जिन प्राणियों ने भोग और मोक्ष रूप चित्त के अधिकार को समाप्त कर मोक्ष प्राप्त नहीं किया है उनके पुण्य और पाप के अनुसार ही उन्हें फलस्वरूप जाति, आयु और भोग रूप फल देता है।

परवर्ती व्याख्याकारों द्वारा ईश्वर को प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न करने के लिये निमित्त कारण के रूप में स्वीकार किये जाने से यद्यपि विभिन्न दार्शनिकों ने उनकी आलोचना करते हुए उसे मूल से हट जाने का आरोप लगाया है तथापि यह स्वीकार करना तर्कसंगत नहीं है कि ईश्वर की इस रूप में कल्पना करने से योग के सिद्धान्तों की किसी भी रूप में हानि होती है। इलाइड ने भी अनुभव किया है कि समय को देखते हुए ही दोनों मुख्य व्याख्याकारों ने योग के उस अप्रतिपादित केंद्र पर प्रकाश डाला है जिसके परिणामस्वरूप ऐसे समय में जबकि विभिन्न विचारधाराएँ उन मुख्य धाराओं के सामने विलुप्त हो गईं अथवा उनमें लय हो गई, योग अपना विशिष्ट स्थान बनाए खड़ा रहा और आज तक सर्वमान्य है।

शंकर ने वेदान्त में माया, अविद्या, अज्ञान, अध्यास, अनिर्वचनीय विवर्त, आन्ति, भ्रम नामरूप, अव्यक्त, मूल प्रकृति, बीजशक्ति, इत्यादि शब्दों का एक ही अर्थ में प्रयोग किया है। देह कायम रह सकती है। इस प्रकार शंकर मोक्ष को निषेधात्मक के साथ–साथ भावात्मक भी मानते हैं। उसकी प्राप्ति मानव के अपने प्रयासों से ही होती है, इसके लिए शंकर ज्ञान को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। कर्म का सहारा लेकर मोक्ष नहीं प्राप्त किया जा सकता। मोक्ष का अर्थ ही वे अज्ञान की समाप्ति मानते हैं और अज्ञान की समाप्ति ज्ञान या विद्या के द्वारा सम्भव है। अद्वैत वेदांत में मोक्ष के लिए साधन चतुष्ट्य और श्रवण मनन निदिध्यासन को स्वीकार किया गया है।

ईश्वर का स्वरूप :

पतंजलि के अनुसार ईश्वर एक पुरुष–विशेष है, यह अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेशादि क्लेशों तथा शुभ और अशुभ कर्मों, उनका विपाक रूप जाति, आयु तथा भोग एवं वासना से रहित है।[5] वर्तमान काल

में जो पुरुष मुक्त है उनसे भी यह भिन्न है क्योंकि वे या तो इस अवस्था से पूर्व बन्धन में थे जिसका उच्छेद कर उन्होंने सदा सर्वदा के लिए निःश्रेयस कर लिया है अथवा फिर दूसरे मुक्त–पुरुष वे होते हैं जो कुछ निश्चित समय के लिए निःश्रेयस जैसा अनुभव कर पुनः प्रपञ्च चक्र में आ जाते हैं। जैसे विदेह एवं प्रकृतिलय। ईश्वर इन दोनों ही प्रकार के पुरुषों से भिन्न स्वभाव का है क्योंकि वह न कभी बन्धन में था और न होगा।[6]

सर्वज्ञत्व नामक सिद्धि से युक्त एवं ईश्वर की सर्वज्ञता में क्या अन्तर है यह सूत्र एवं भाष्य तथा व्याख्याकारों ने अपने शब्दों में प्रतिपादित नहीं किया है। ईश्वर अनादिकाल से ही सर्वज्ञ है जबकि योगी पहले अज्ञानी था। सिद्धियों को प्राप्त करने वाले योगियों को भी विभिन्न प्रकार के ऐश्वर्यों की प्राप्ति हो जाती है परन्तु विभिन्न योगियों में यह न्यून अथवा अधिक मात्रा में होता है। वाचस्पति मिश्र का मत है कि जो कुछ भी सातिशय होता है उसकी निरतिशयता भी किसी न किसी वस्तु में अवश्य ही होती है।[7] इस अनुमान के आधार पर ऐश्वर्य की भी निरतिशयता मानी जानी चाहिये और वह ईश्वर में ही सम्भव है अर्थात् मात्र ईश्वर ही निरतिशय और ऐश्वर्य सम्पन्न है, विज्ञान भिक्षु लिखते हैं ऐश्वर्य की काष्ठा जहाँ होती है वहीं ईश्वर है।[8] सूत्रकार ने ईश्वर को काल के द्वारा बाधित न होने के कारण पूर्वोत्पन्न गुरुओं का भी गुरु माना है।[9] पूर्वोत्पन्न गुरुओं से तात्पर्य दोनों टीकाकार सर्ग के प्रारम्भ में उत्पन्न ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि गुरुओं को मानते हैं,[10] क्योंकि यह उनकी उत्पत्ति से भी पूर्व विद्यमान रहता है और उन्हें वेदादि का ज्ञान प्रदान करता है।

जैसा कि बताया जा चुका है कि ज्ञान एवं इच्छादि बुद्धि के धर्म हैं, पुरुष के नहीं, उनका आरोप पुरुष में होता है। वह बुद्धि अथवा चित्त त्रिगुणात्मक है और उन दोनों अर्थात् पुरुष एवं चित्त के सम्बन्ध का कारण अविद्या माना गया है। ईश्वर में भी ज्ञान एवं इच्छादि बताए गए हैं, जो कि उसके उपाधिभूत चित्त के ही धर्म हैं। परन्तु इन दोनों के चित्त में यह अन्तर है कि पुरुष का चित्त जिस प्रकार त्रिगुणात्मक है ईश्वर का नहीं, उसका चित्त विशुद्ध सत्त्वप्रधान है। एक अन्य वैशिष्ट्य यह है कि पुरुष एवं चित्त का सम्बन्ध अविद्याकृत है जबकि ईश्वर का चित्त उसके संकल्पमात्र से उसे प्राप्त हो जाता है।

विज्ञानभिक्षु का मत इससे भिन्न है। वह महाप्रलय में भी ईश्वर के उपाधिभूत चित्त का लय नहीं मानते। अपने मत के समर्थन में वह श्रुति वाक्य उद्धृत करते हैं जिसमें ईश्वर के रात एवं दिन का निषेध किया गया है।[11] उनके अनुसार यदि पुनः सृष्टि काल में चित्त का ईश्वर के साथ संयोग माना जाएगा तो ईश्वर को भी अविद्याग्रस्त मानना पड़ेगा क्योंकि बुद्धि एवं पुरुष के संयोग का कारण अविद्या ही बताया गया है।[12] यदि संस्कार के द्वारा पुनः चित्त का संयोग होता है, अविद्यावश नहीं, यह माना जाए जैसा कि वाचस्पति मिश्र ने माना है तो भी उचित न होगा क्योंकि याज्ञवल्क्य ने ईश्वर की उपाधि में संस्कारादि का सद्भाव मानने पर यदि उसका लय माना जाएगा तो उस काल में ईश्वर के न रहने से उसको जो कालातीत बताया गया है उस सिद्धान्त का खण्डन हो जाएगा।[13]

ईश्वर सत्त्वोपाधि से युक्त तथा निरतिशय ऐश्वर्य सम्पन्न है तथा वही सर्वाधिक ज्ञानवान् है इत्यादि जो ईश्वर का अन्यों की अपेक्षा उत्कर्ष दिखाया गया है और यह उत्कर्ष भी शाश्वतिक है ऐसा कहा है, इस विषय में प्रत्यक्ष अथवा अनुमान को प्रमाण नहीं माना जा सकता, अतः इसके प्रामाण्य की शंका को दृष्टि में रखते हुए भाष्यकार व्यास लिखते हैं कि इस विषय में शास्त्र ही प्रमाण है। शास्त्र के विषय में ईश्वर के सत्त्वोत्कर्ष को ही प्रमाण माना गया है।[14] ईश्वर एवं शास्त्र का जो पारस्परिक प्रामाण्य दिखाया गया है उसमें अनवस्था दोष की

कल्पना की जा सकती है। दासगुप्ता का मत है कि यहाँ पर अनवस्था–दोष को मानने का प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता क्योंकि इन दोनों का सम्बन्ध अनादिकालीन है।[15] वाचस्पति मिश्र ने विपक्ष की ओर से ईश्वर की प्रवृत्ति के विषय में उठाई जा सकने वाली विभिन्न कल्पनाओं को सुन्दर प्रकार से अपनी व्यख्या में देते हुए स्वमत को प्रस्तुत किया है।

प्रथम शंका यह है कि जब ईश्वर को नित्य तृप्त एवं वैराग्य सम्पन्न बताया गया है, तो अपनी तृष्णा की शान्ति हेतु उसकी प्रवृत्ति हो नहीं सकती तो फिर किस कारण से वह प्रवृत्त होता है?[16] यदि यह कहा जाये कि वह करुणावश सृष्टिकार्य में प्रवृत्त होता है तो भी उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि यदि वह करुणाशील होता तो विभिन्न प्रकार के दुःख प्राणियों को क्यों देता अथवा जैसा कि हम देखते हैं प्रत्येक प्राणी किसी न किसी प्रकार के दुःख से पीड़ित है, अतः इस दुःख बहुल संसार की सृष्टि क्यों करता?[17] तात्पर्य यह है कि यदि यह करुणावश इस कार्य में प्रवृत्त हुआ होता तो सभी प्राणियों को विभिन्न सुख साधनों से सम्पन्न करता न कि विभिन्न दुःखों से। अन्य हेतु के न होने पर यदि यह कहा जाये कि बिना किसी प्रयोजन के ही वह प्रवृत्त हो कर ही कार्य करने लगता है तो भी युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता क्योंकि कहा गया है कि 'प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोपि न प्रवर्तते' तो फिर यह सर्वज्ञ ईश्वर ऐसा किस प्रकार कर सकता है।[18]

पूर्वपक्षी के प्रथम एवं तृतीय तर्क पूर्णतः उचित है द्वितीय तर्क आपाततः ठीक प्रतीत होता है परन्तु पूर्णरूप से ईश्वर की प्रवृत्ति की प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए यदि उस पर विचार करें तो वह निर्मूल हो जाता है। यह तो सत्य है कि करुणावश सृष्टि करने पर दुःखों से युक्त प्राणियों की सृष्टि ईश्वर को नहीं करनी चाहिए थी परन्तु इस विषय में यह बात ध्यान रखने योग्य है कि प्राणियों के जात्यायु एवं भोग ईश्वर स्वेच्छा से ही प्रदान नहीं करता परन्तु पूर्वजन्मों में उनके द्वारा किए गए कर्मों के फलस्वरूप ही उन्हें सुख दुःखादि प्रदान करता है, स्वेच्छा से नहीं, अतः दृष्टि से उसे अकारुणिक भी नहीं माना जा सकता।[19]

भक्ति एवं उपासना ईश्वर को ही उद्दिष्ट करके होती है। ब्रह्म का भक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। ब्रह्म निर्गुण और निराकार है। ब्रह्म को जब हम विचार से जानने का प्रयास करते हैं तब वह ईश्वर हो जाता है। ईश्वर सगुण ब्रह्म है। ईश्वर सविशेष ब्रह्म भी कहा जाता है। ईश्वर सर्वज्ञ है, वह सर्वव्यापक है, वह स्वतन्त्र है, वह एक है, वह अन्तर्यामी है, ईश्वर जगत् का सृष्टा, पालनकर्ता और संहारकर्ता है। वह नित्य और अपरिवर्तनशील है। ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जब माया में पड़ता है तब वह ईश्वर हो जाता है। शंकर के दर्शन में ईश्वर को 'मायोपहति ब्रह्म' कहा जाता है। ईश्वर माया के द्वारा विश्व की सृष्टि करता है। माया ईश्वर की शक्ति है, जिसके कारण वह विश्व का प्रपंच रचता है। ईश्वर विश्व का प्रथम कारण है, ऐसा श्रुतियों में कहा गया है तथापि ईश्वर को कारण से शून्य माना गया है।

अज्ञान समष्टि से उपहित चैतन्य को शंकर वेदान्त मत में ईश्वर माना गया है। अतः उसकी सिद्धि के लिए न्याय के समान किसी अनुमान का उपयोग अनावश्यक है। श्रुतियों में उसके यथार्थ रूप का उल्लेख प्राप्त होता है। न्याय ईश्वर को जगत् का केवल निमित्त कारण मानता है जबकि अद्वैत वेदान्त ने निमित्त और उपादान दोनों कारण के रूप में स्वीकार किया है। भोक्ता और भोग्य के ऐक्य होने पर भी प्रतीयमान भेद व्यावहारिक मात्र है। जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं की मान्यता इन तीनों स्थितियों में स्वीकृत स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर की समष्टि से उपहित चौतन्य ईश्वर ईश्वर ही ही है यद्यपि उसे विविध संज्ञाओं से अभिहित किया

गया है।[20]

ईश्वर सब प्राणियों की आत्मा होने से परमात्मा कहलाता है। परमात्मा होने से ही वह सबके अन्तःमन में स्थित होकर उनका नियमन करता है और सभी प्राणियों का हितैषी है। यद्यपि ईश्वर और जीव दोनों तात्त्विक रूप से ब्रह्म ही है किन्तु उपाधि भेद के कारण दोनों में अंतर है। जीव उपासक है और ईश्वर उपास्य है, जीव प्राप्तकर्ता है और ईश्वर प्राप्य है। शंकराचार्य गीताभाष्य की भूमिका में लिखते हैं कि ईश्वर यद्यपि अज, अविनाशी, सम्पूर्ण भूतों के ईश्वर और नित्य शुद्ध–बुद्ध–मुक्त स्वभाव वाले हैं, तो भी अपनी त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति माया को वश में करके अपनी लीला से शरीरधारी के समान उत्पन्न हुए लोगों पर अनुग्रह करते हुए दिखते है।[21]

परब्रह्म को ही परमसत् मानते हैं। माया की उपाधि के कारण ही अपरब्रह्म की सत्ता सिद्ध होती है किन्तु परब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यद्यपि अपर या सगुण ब्रह्म के सम्प्रत्यय की उतनी ही तर्क सम्मत आवश्यकता है जितनी निर्गुण परब्रह्म की। इसका कारण यह है कि सगुण ब्रह्म की कल्पना के बिना जगत् की व्याख्या नहीं हो सकती और न ही मुक्ति की अवधारणा संभव है। इस प्रकार पारमार्थिक दृष्टि से एकमात्र परब्रह्म की भी सत्ता स्वीकार की है। अतः ब्रह्म का निर्वचन करते हुए वे कहते हैं कि जो नाम रूप के द्वारा व्यवहृत तथा अनेक कर्ताओं एवं भोक्ताओं से संयुक्त है, जो प्रतिनियत देश, काल और निमित्त से क्रिया और फल का आश्रय है एवं मन से भी अचिन्त्य रचना रूप वाले इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय जिस सर्वज्ञ शक्तिमान् कारण से होते हैं वह ब्रह्म है।[22] अतः ब्रह्म ही शाकर वेदान्त का सर्वोच्च तत्त्व है। वास्तव में ब्रह्म निर्गुण है, उसे सत्, चित् और आनन्द कहने का तात्पर्य यह है कि वह असत्, जड़ और दुःखरूप अविद्यात्मक वस्तुओं से भिन्न है।

डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार ईश्वर सगुण ब्रह्म का नाम है जिसे सर्वश्रेष्ठ व्यक्तित्व माना गया है। ब्रह्मसत्ता के विषय में प्रस्तुत किए जाने वाले सभी प्रमाण पर तथा ज्ञानवाद संबंधी विश्वविज्ञान संबंधी और भौतिक ईश्वरीय ज्ञान संबंधी प्रमाणों पर शंकर विचार करते हैं और उनकी निष्फलता को दर्शाते हैं, जैसा कि काण्ट ने भी बहुत पीछे जाकर किया। शंकर के दर्शन में ईश्वर एक स्वतः सिद्ध प्रमाण नहीं है, तार्किक सत्य भी नहीं है किन्तु एक अनुभव जन्य उपधारणा है जिसकी क्रियात्मक उपयोगिता है। श्रुति इसका आधार है। ब्रह्म सर्वोपरि आत्मा है, सर्वज्ञ है तथा सर्वशक्तिमान है। वह प्रकृति का आत्मतत्व है, विश्व का तत्त्व है। इसका जीवनदायी प्राण तथा प्रेरक स्त्रोत है और समस्त सत्ता रूप आकृतियों का आदि ओर अन्त है।[23] ईश्वर ब्रह्म एवं विश्व के मध्य का तत्त्व है क्योंकि वह दोनो के स्वरूप में भागीदार है। ईश्वर ब्रह्म से एकता रखते हुए भी विश्व से संबंधित है।[24]

अद्वैत चन्द्रिकाकार सुदर्शनाचार्य का मत है कि एक ही परमेश्वर माया, निष्ठ, सत्व, रज और तमोगुण के भेद से ब्रह्मा, विष्णु और महेश की संज्ञाओं को प्राप्त होते हैं।[25] अस्मदीया कहकर यह प्रकट कर दिया है कि कुछ वेदान्ती विद्वान् ऐसे थे जो जीव ब्रह्म से भिन्न पारमार्थिक रूप में मानते थे, उपाधिकृत नहीं। अन्य और भी अनेकों स्थलों पर जीव और ब्रह्म में अभेद स्थापित करने का प्रयास किया है। परन्तु उन्होंने स्वयं कुछ सूत्रों पर भाष्य करते हुए भेदपरक भी अर्थ किया है। वे एक कसौटी बतलाते हैं कि शरीर स्थित आत्मा है या नहीं। उनका कथन है कि यदि जीवधारी में ये तीन गुण करें, न करें अथवा उल्टा करें तो समझ जाना चाहिये कि इसमें आत्मा है। व्यवहारवाद मानवीय क्रियाओं को यन्त्रवत् बना देता है, जिसमें कर्ता की स्वतंत्र इच्छा का प्रश्न ही नहीं उठता, की कसौटी में पर्याप्त गुंजाइश है।[26]

उपर्युक्त विवेचनाओं के आधार पर संक्षेप में शंकर वेदान्त के ब्रह्म को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं माया

की उपाधि युक्त ब्रह्म ही ईश्वर है। वह नित्य, मुक्त शुद्ध बुद्ध सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी है। ब्रह्म जगत् का पालक, शासक एवं संहारकर्ता है। वह जीवों का कर्मफल दाता कल्याण स्वरूप है। साथ ही ब्रह्म व्यावहारिक सत् है पारमार्थिक नही ब्रह्म को पारमार्थिक की जगह व्यवहारिक सत् मानने के कारण ही शांकर दर्शन में ब्रह्म प्रत्यय की संगतता की समस्या उत्पन्न होती है।

संदर्भ :–

1. वारियर, के. गॉड दन अद्वैत, पृ. 49.
2. अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरना विद्यात्रियुणात्मिका परा। कार्यानुमेया सुधियैव माया यथा जगत्सर्वमिदं प्रसूयते।। सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो। साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो महादभुतानिर्वचनीय रूपा। शंकर, विवेक चूड़ामणि, 110, 111.
3. अविद्यालक्षणा अनादिमाया माण्डूक्य उपनिषद शंकर भाष्य, iii, 36.
4. सत्यं धर्मादयो निमित्तं न तु प्रयोजकाः, तेषामपि प्रकृतिकार्यत्वात्। न च कार्य कारणं प्रयोजयति, स्वतन्त्रस्य च प्रयोजकत्वात्। न च पुरुषार्थोपि प्रवर्तकः, किम्तु तदुद्देशेनेश्वरः। ईश्वरस्यापि धर्माधिष्ठानार्थं प्रतिबन्धापनय एव व्यापारो वेदितव्यः। त.वै. पृ. 399
5. क्लेशर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। यो.सू. 1/24
6. ईश्वरस्य च तत्संबन्धो न भूतो न भावी। व्या.भा., पृ. 66
7. यद्यत्सातिशयं तत्तत्सर्वनिरतिशयम्। त.वै., पृ. 77
8. तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्। यो.सू. 1/25
9. पूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्। यो.सू. 1/26
10. संप्रति भगवतो ब्रह्मादिभ्यो विशेषमाह स एष इति। त.वै.. पृ. 81
11. नैवाहस्तस्य न निशा नित्यस्य परमात्मनः। यो.वा., पू. 72 पर उद्धृत
12. तस्य हेतुरविद्या इत्यागामिसूत्रोणाविद्याया बुद्धिपुरुषसंयोगहेतुत्ववचनेन ईश्वरस्याप्यविद्वत्वापत्तेः। –यो.वा., पृ. 73
13. तथाऽऽगामिसूत्रप्रतिषिद्ध कालावच्छिन्नत्वं चेशे स्याद् उपाधिवृत्त्याभावेनैव चेतनस्य कालानवच्छिन्नत्वाद् इत्यादीन्यत्र दूषणानि सन्ति। यो.वा., पृ. 73
14. शास्त्र पुनः किंनिमित्तम्? प्रकृष्टसत्त्वनिमित्तम्। व्या.भा., पृ. 66
15. The objection that this is an argument in a circle has no place here, since the connection of the scriptures with Isvara is beginningless. -Das Gupta, S.N.Y.P.R; p. 159
16. नित्यतृप्तस्य भगवतो वैराग्यातिशयसंपन्नस्य स्वार्थे तृष्णासंभवात्। त.वै., पृ. 78
17. कारुणिकस्य च सुखैकतानसर्जनपरस्य दुःखबहुलजीवलोकजनननानुपपत्तेः। त.वै., पृ. 78
18. अप्रयोजनस्य च प्रेक्षावतः प्रवृत्त्यनुपपत्तेः क्रियाशक्तिशालिनोपि न जगत्क्रियेत्। त.वै., पृ. 78
19. तेनाचरितार्थत्वाच्चितस्य जन्तूनीश्वरः पुण्यापुण्यसहायः सुखदुःखे भावयन्नपि नाकारुणिकः। त.वै., पृ. 78
20. सदानन्द, वेदान्तसार, पृ. 8.
21. अजः अव्ययो भूतानानीश्वरो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावः अपि सन स्वां माया मूल प्रकृति वशीकृत्म स्वामायया देहवान. इवजातड्व च लोकानुग्रहं कुर्वन इच लक्ष्यते। गीता शं. भा. उद्योदघात पृ. 1
22. ब्रह्मसूत्र पर शंकरभाष्य, 1.1.2.
23. डॉ. राधाकृष्णन भारतीय दर्शन,भाग–2, राजपाल एण्ड संस प्रकाशन,दिल्ली, अनु. नंदकिशोर गोभिल, पृ. 469–472.
24. वही, भारतीय दर्शन, भाग–2, पृ. 557
25. अद्वैत चन्द्रिका, पृ. 40, बनारस संस्करण, 1901 उद्धृत डॉ. राममूर्ति शर्मा अद्वैत वेदांत।
26. [illegible] उपनिषदों का तत्त्वज्ञान, [illegible] पृ. 150.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2026 Page No. : 216-219
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महात्मा गाँधी और विनोबा भावे के विचार–दर्शन

सुमिता सिंह
शोधार्थी, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा।

भूमिका :

विनोबा भावे गाँधीवाद के सच्चे प्रतिनिधि माने जाते हैं। इन्हें महात्मा गाँधी की आत्मा एवं गाँधीवाद के सच्चे भाष्यकार तथा महात्मा गाँधी का नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्तराधिकारी कहा गया है। प्रायः सभी गाँधी विचारक भी एक मत से यह स्वीकार करते हैं कि ये गाँधीवादी के सच्चे व्याख्याता हैं। इनके साथ–साथ विनोबा भावे एक मौलिक चिंतक भी हैं। विनोबा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने महात्मा गाँधी के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों पहलुओं पर समान रूप से विचार किया था। सैद्धांतिक क्षेत्र में विनोबा भावे ने महात्मा गाँधी के विचारों का स्पष्टीकरण शास्त्रीय ढंग से किया तथा कहीं–कहीं पर महात्मा गाँधी को अहिंसा के आधार पर नई अवधारणाओं का निर्माण भी किया।

शब्दार्थ :– आध्यात्मिक, सैद्धांतिक, अवधारणाओं, भाष्यकार, व्यावहारिक, उत्तराधिकारी।

महात्मा गाँधी विध्यार्थी जीवन मे सामान्य छात्र रहे थे, किन्तु विनोबा भावे की बुद्धि बचपन से ही प्रखर थी तथा उनकी तर्कशक्ति तेज थी। महात्मा गाँधी की भांति उन्होंनें गृहस्थ जीवन व्यतीत नहीं किया। माता रुक्मणी देवी की प्रेरणा तथा अपने स्वयं के स्वाभाविक उद्‌गार के कारण विनोबा भावे ने आजीवन ब्रहमचर्य का पालन किया। भौतिकवादी दृष्टि से विनोबा भावे महात्मा गाँधी की तरह विद्या ग्रहण करने हेतु विदेश नहीं गए। उन्हें अंग्रेजी शिक्षा का शौक नहीं रहा। वे प्रमाण–पत्रों को भी जलाकर तथा कॉलेज को छोड़कर गृहत्याग के लिए प्रेरित हुए।

जहां महात्मा गाँधी ने संकल्प–शक्ति का प्रयोग कर मानव कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अपने जीवन में सन्यास लाने की कोशिश की, वहाँ पर विनोबा भावे में सन्यास स्वतः उत्पन्न हो गया। महात्मा गाँधी मानवतावादी होने के साथ–साथ व्यावहारिक दृष्टि से यश की कामना भी रखते थे। महात्मा गाँधी सत्य के शोध का विषय समाज को मानते थे, परंतु विनोबा को किसी संस्था के दृढ़ संगठन में विश्वास नहीं था। किसी संस्था में पद को ग्रहण करने की विनोबा भावे तुकाराम को किसी दफ्तर ही जवाबदेही देने के समान मानते थे। समाजशुद्धि के लिए जीवनशुद्धि तथा जीवन को शून्य में परिणत करने मे उनकी दृढ़ आस्था थी।

महात्मा गाँधी के जीवन में कितनी ही सांसारिक दुर्बलताएं थीं, जैसे –बीड़ी पीना, चुपके से माँस खाना, सोने को चुराकर बेचना, पिता के बीमार होते हुए भी पत्नी के पास काम–वासना के कारण चिपके रहना आदि। किन्तु यह भी सही है कि अपने कुल की कुलीनता एंव सत्य में दृढ़ निष्ठा के कारण महात्मा गाँधी इन दुर्बलताओं

पर विजय पाने में सफल रहे। विनोबा भावे के जीवन में किसी भी प्रकार की दुर्बलताओं का तनिक भी स्थान नहीं रहा। उनके चरित्र पर उनकी माँ एवं पिता के चरित्र की गंभीर छाप थी। जब कभी वे विद्यार्थी जीवन मे संध्याकाल देर से घर पहुंचते थे तो उनके परिवार के लोग यह अनुमान लगा लेते थे कि पुस्तकों एवं पत्र–पत्रिकाओं के अध्ययन में तथा वाद–विवाद में तल्लीन हो गए होंगे। जिस प्रकार महात्मा गाँधी को सत्य में दृढ़ आस्था थी उसी प्रकार विनोबा भावे में भी आध्यात्मिकता और अपने को शून्य मे परिणत करने के प्रति आस्था थी।

महात्मा गाँधी का सम्पूर्ण जीवन तरह–तरह की व्यवहारिक समस्याओं के समाधान में बीता। उनकी बुद्धि आध्यात्मिक होते हुए भी व्यवहारिक थी। उन्हें अनेक प्रकार के बड़े–बड़े राजनीतिक नेताओं का संपर्क एवं प्रभाव प्राप्त हुआ था। इसके अतिरिक्त गीता, बाइबिल, रस्किन की पुस्तक 'अनटू दिस लास्ट' तथा अमेरिका के विचारक थोरो के 'सिविल डिसओबिडियंस' ने उन्हे अत्यधिक प्रभावित किया था, परंतु संस्कृत के अच्छे ज्ञान के अभाव में उन्हें हिन्दू दर्शन की सूक्ष्मता एवं गहराई मे प्रवेश करने का अवसर नहीं मिला। यद्यपि वैष्णव परिवार में जन्म लेने तथा माता की धर्मनिष्ठा के कारण उनकी वृति धार्मिक बनी,परंतु वे विशेष रूप से संत–महापुरुषों के संपर्क मे नहीं आ सके। उन्हें किसी संत के आश्रम मे रहने का मौका नहीं मिला।

विनोबा भावे महाराष्ट्र के संत नामदेव, एकनाथ, ज्ञानदेव, तुकाराम, समर्थ गुरु रामदास एवं महापुरुष महादेव गोविंद रानाडे, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक एवं गोपाल कृष्ण गोखले के विचारों के काफी संपर्क मे आए। इन विचारों के प्रति उनकी अभिरुचि बचपन से ही रही। जगद्‌गुरु शंकराचार्य के विचारों ने इसके तार्किक चित्त को सर्वाधिक समाधान दिया। वेद, उपनिषद, पुराण, गीता, वेदान्त, सांख्य, न्याय सूत्र, याज्ञवलक्य–स्मृति तथा पतंजलि योगशास्त्र का उन्होंने गहराई से अध्ययन किया था। इसके अतिरिक्त कुरान, धम्मपद, नानकधर्म, नामघोषा, लाओत्से, कनफ्यूशईयास आदि के विचारों का गहराई से अध्ययन ही नहीं किया बल्कि उन पर पुस्तकें भी लिखीं। अपने पिता की विज्ञान–निष्ठा एवं शिष्टचार ने तो उन्हें काफी प्रभावित किया ही। इन्होंने कई आधुनिक वैज्ञानिक पुस्तकें, जैसे –जेम्स जोंस की "दी मिस्टीरीअस यूनिवर्स", समाजशास्त्रीय पुस्तक टॉलस्टय की स्लेवरी ऑफ अवर टाइम्स पढ़ी एवं उनसे काफी प्रभावीय हुए।

कार्ल मार्क्स का वितर्कवाद, डार्विन का विकासवाद ,आइंस्टीन का सापेक्षवाद तथा अरविन्द के अति मानस सिद्धांत का भी उन पर गहरा प्रभाव पड़ा। इन्होंने भारत की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं के अध्ययन के अतिरिक्त जर्मन, फ्रेंच तथा अंग्रेजी आदि कई भाषाओं का भी अध्ययन किया। अतः विचारों की अभिव्यक्ति में उन्हे किसी प्रकार की भाषाई कठिनाई या अस्पषटता का शिकार नहीं होना पड़ा। संस्कृत एवं मराठी के गहरे अध्ययन से उनके चिंतन को पर्याप्त लाभ पहुँचा। सबसे बड़ी बात तो यह थी की एनहें महात्मा गाँधी जैसे व्यक्ति के समीप में जीवन के अधिकांश भाग को व्यतीत करने का सुअवसर मिला। महात्मा गाँधी के समय में उन्हें व्यावहारिक एवं राजनीतिक समस्याओं से जूझने का बहुत काम मौका मिल था। अधिकांश समय इन्होंने अध्ययन, अध्यापन, मनन, आश्रम–संचालन, खड़ी, कांचन मुक्ति, भंगी मुक्ति आदि प्रयोगों में निस्पृह भाव से व्यतीत किया। इसलिए जहां हम महात्मा गाँधी को दृष्टा तथा संदेशवाहक कह सकते हैं, वहाँ विनोबा को दृष्टा के साथ–ही–साथ मुनि (मनन करने वाला) भी कह सकते हैं। इनमें भाषाई चमत्कार एवं वैज्ञानिकता भी थी।

विनोबा भावे के व्यक्तित्व में शंकराचार्य की तार्किकता, महात्मा बुद्ध की करुणा, ज्ञानदेव की भाव–प्रवणता

तथा महात्मा गाँधी के कार्य–कौशल का अद्भूत समन्वय था। इसीलिए तो उन्होंने 1917 में सी एफ एण्डुज से विनोबा का परिचय देते हुए कहा था, "ये ऐसी विभूतियों में से हैं जो आश्रम से वरदान पाने नहीं बल्कि देने के लिए आते हैं"। विनोबा भावे को पत्र लिखते हुए 1916 मे महात्मा गाँधी ने कहा, "उन्होंने अपनी नाजुक अवस्था मे ही आध्यात्मिकता एवं संन्यास की इस ऊंचाई को प्राप्त किया है जिसे प्राप्त करने मे मुझे वर्षों का कठिन परिश्रम लगा"। इसलिए तो विनोबा को 10 फरवरी,1918 के पत्र को देखकर उन्होंनें यह भाव प्रकट किया, वे (विनोबा) भीम हैं, वे गोरखनाथ हैं, जिन्होंने अपने गुरु मत्स्यएंडरय नाथ को भी मात कर दिया। पत्र का उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा, "मैं नहीं जानता हूँ की तुम्हें मैं किन शब्दों में तारीफ करूँ। तुम्हारा प्रेम, चरित्र एवं आत्मविश्लेषण मुझे मुग्ध करता है। मैं तुम्हारी योग्यता मापने योग्य नहीं हूँ"। मैं तुम्हारे ही द्वारा निर्धारित मूल्य को स्वीकार करता हूँ तथा तुम्हारे पिता का पद ग्रहण करता हूँ"। शायद इसी अद्भूत क्षमता एवं प्रतिभा को देखकर उन्होंने 1940 में नेहरू को प्रथम सत्याग्रही नहीं बनाकर, संत विनोबा को बनाया। महात्मा गाँधी की तरह विनोबा के व्यक्तित्व में भी शांति एवं क्रांति का अद्भूत समन्वय था। इसीलिए गृह–त्याग के बाद बनारस में जब विनोबा को महात्मा गाँधी के प्रथम दर्शन हुए तो उन्हें हिमालय की शांति एवं तत्कालीन बंगाल की राष्ट्रीय क्रांति का अद्भूत संयोग मिला।

अतः उन्होंने हिमालय एवं बंगाल जाने का रास्ता छोड़ दिया। महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व के समान विनोबा भावे का व्यक्तित्व भी विचार के क्षेत्र में नित्य नूतनता एवं विकसशीलता से परिपूर्ण था। विनोबा कार्य के क्षेत्र में महात्मा गाँधी के समान ही दृढ़ संकल्पवान थे। अतः महादेव देसाई ने लिखा है कि महात्मा गाँधी की सारी विशेषताएं महात्मा गाँधी के अन्य शिष्यों में भी थोड़ी–बहुत मात्रा में हैं, परंतु उनकी दो विशेषताएं निर्णय लेने के साथ ही उसे कार्य रूप में परिणत करना एवं सतत विकाशसील रहना महात्मा गाँधी के बाद विनोबा मे ही विधमान है।

महात्मा गाँधी की तरह विनोबा नित्य डायरी लिखना पसंद नहीं करते थे। वे पुरानी स्मृतियों के भार से मन को मुक्त रखना चाहते थे तथा नये–नये विचारों को पनपने के लिए इसे आवश्यक मानते थे। किसी भी प्रकार के विचार एवं आचार को उचित सम्मान देते थे। इसीलिए स्वयं संन्यासी होते हुए भी अपने छोटे भाई बालकोबा ने जब अपनी शादी के संबंध में उनके मत जानने की अपेक्षा की तो उन्होंने इच्छा रहने पर अच्छी शादी कराने का आश्वासन दिया। आत्मा की अमरता तथा ईश्वर की सत्ता में उन्हें महात्मा गाँधी की तरह ही अटूट विश्वास था, परंतु ईश्वर के बाद यदि कोई चीज उन्हें प्रिय थी तो वह थी गणित या विज्ञान जो शायद महात्मा गाँधी को प्रिय नहीं था।

निष्कर्ष :–

विनोबा भावे की इन सभी विशेषताओं का अमिट प्रभाव इनके विचारों पर पड़ा। उन्होंनें महात्मा गाँधी को न केवल उनके कार्यों एवं विचारों या कथनों के आधार पर ही समझने का प्रयास किया, बल्कि उनकी आत्मा एवं हृदय को भी पहचाना। शायद इसलिए उन्होंने केवल महात्मा गाँधी के कथित विचार का शास्त्रीय ढंग से विवेचन ही नहीं किया तथा उनके द्वारा बताये गए रचनात्मक कार्यक्रमों को ही प्रस्तुत नहीं किया, अपितु नई–नई परिस्थितियों में नये–नये विचारों एवं धारणाओं का भी विकाश किया,जिन्हें यदि महात्मा गाँधी जिंदा होते तो सहर्ष मान्य करते। इसलिए विनोबा भावे के जो विचार हैं, वे महात्मा गाँधी के ही विचार हैं। भाषा, चिंतन एवं शैली

विनोबा की हैं। शायद इसलिए तो काका कालेलकर, आचार्य कृपलानी, मशरुवाला तथा राजगोपालाचारी ने एक स्वर से विनोबा भावे को गांधी–विचार का सबसे बड़ा प्रवक्ता माना। व्यावहारिक रूप से तो इन्होंने महात्मा गाँधी की अहिंसा का प्रयोग देश के नये आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में किया, जिसके परिणामस्वरूप भूदान, ग्रामदान, प्रखण्डदान, जिलादान एवं राज्यदान की धारणाओं का जन्म हुआ।

संदर्भ :–

1. रामभाई, एस – लाइफ ऑफ विनोबा, तंजौर, 1958.
2. मिश्रा,एल आर – वी फोर विनोबा, बम्बई, 1956.
3. भावे, विनोबा – सर्वोदय तंजौर,1956.
4. मसानी, आर पी – दी फाइव गिफ्ट्स, लंदन, 1956.
5. मुँदडा, दामोदरदास – भूदान गंगोत्री, काशी, 1957.
6. भूदान यज्ञ, अहमदाबाद, 1957.
7. डेल वासतों, लांजा – गाँधी टु विनोबा लंदन, 1957.
8. द क्रीड ऑफ संत विनोबा, बॉम्बे,1963.
9. विनोबा – व्यक्तित्व और विचार. नई दिल्ली, 1971.
10. भूदान यज्ञ, अहमदाबाद, 1957.

7992245545

sumita.reena@gmail.com

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा
Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

सानिया प्रकाशन एवं गिना प्रकाशन द्वारा
संयुक्त रूप से नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2394-6458
Impact Factor : 6.500

RESEARCH JOURNAL OF MEEMANSA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Editor-in-Chief : Dr. Lata S. Patil
Managing Editor : Dr. Jaivir Langyan M. 9728790909

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

प्रोफेसर चन्द्रशेखर सिंह

समाजकार्य विभाग,

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

for the paper titled

भारत में निर्वाचन नामावली के विशेष गहन पुनरीक्षण की प्रक्रिया, उपयोगिता एवं प्रभाव का अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 10-16

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551 ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

पूजा गुप्ता
शोधार्थी, हिंदी विभाग
वर्द्धमान विश्वविद्यालय।

for the paper titled

समकालीन हिंदी उपन्यासों में वृद्ध जीवन का आर्थिक संदर्भ

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 17-21

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

सुरेश कुमार मौर्य

सहायक आचार्य

राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ, शाहपुरा बाग, आमेर रोड़, जयपुर (राज.)

for the paper titled

चार वर्षीय इन्टीग्रेटेड बी. एड. पाठ्यचर्या के प्रति प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 22-26

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551 ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. संजय गोस्वामी

एसो. प्रोफेसर,

राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ।

for the paper titled

नई शिक्षा नीति 2020 और मातृभाषा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 27-28

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ० श्वेता कुमारी
इतिहास विभाग,
पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना।

for the paper titled

महिला सशक्तिकरण में बिहार सरकार की योजनाएँ

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 29-32

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551 ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

आरती कुमारी, शोधार्थी,

शिक्षाशास्त्र विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

प्रो० (डॉ०) श्याम रंजन प्रसाद सिंह, विभागाध्यक्ष,

दर्शनशास्त्र विभाग, बी० एम० डी० कॉलेज, दयालपुर (वैशाली)

for the paper titled

प्राथमिक निजी विद्यालयों के विस्तार के कारणों का अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 33-35

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. चन्द्रकान्ता कुमावत

पी०एच०डी. स्कॉलर (ज्योतिषाचार्या)

डॉ. अलकनन्दा शर्मा, विभाभागाध्यक्ष (ज्योतिषाचार्या)

ज्योतिष एवम् वास्तु संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ टाउन हॉल परिसर, उदयपुर (राज.)

for the paper titled

श्री नाथद्वारा (श्रीनाथजी की हवेली)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 36-38

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

अमन कुमार

वरिष्ठ शोधार्थी,

गुजरात केंद्रीय विश्वविद्यालय।

for the paper titled

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और नामवर सिंह का जीवन संघर्ष (इनकी जीवनियों के आधार पर)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 39-47

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

ਅੰਮ੍ਰਿਤਪਾਲ ਸਿੰਘ

ਸਹਾਇਕ ਪ੍ਰੋਫੈਸਰ, ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਭਾਗ, ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਖਾਲਸਾ ਕਾਲਜ ਯਮੁਨਾਨਗਰ

for the paper titled

ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਦੁਆਰਾ ਸਿਰਜਿਤ ਪ੍ਰਵਾਸੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦਾ ਦੁਖਾਂਤ : ਥੈਂਕਸ ਏ ਲੌਟ ਪੁੱਤਰਾ

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 48-53

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Krishma Kumari, Deepak Pathania
Richa Kothari, Pankaj Kumar
Department of EVS, Central University of Jammu,
Jammu-181143, India.

for the paper titled

Chlorpyrifos Removal from Synthetic Wastewater Using Horizontal Subsurface Flow Constructed Wetlands with Canna Indica

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 54-61

9 772395 711007

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

गजेन्द्र राम, शोधार्थी,
प्रो. (डॉ.) एस. के. मीना, सेवानिवृत्त प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर।

for the paper titled

हिन्दी उपन्यासों में किसानों का एक सदी का सफर

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 66-67

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Meena Sharma

Counseller,

Government Hospital, Sri Ganganagar.

for the paper titled

BREAKING PATRIARCHY AT THE VILLAGE LEVEL : A SOCIOLOGICAL ANALYSIS OF WOMEN SARPANCHS

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 68-84

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551 ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Mukesh Poonia, Author
Doctor of Philosophy in Geography
Dr. Kaluram, Supervisor
Associate Professor Dept. of Geography
School of Social Sciences of Humanities, Om Sterling Global University, Hisar-125001

for the paper titled

Economic Consequences of Rural-Urban Migration : A Statistical Analysis of Migrants in Bhiwani District, Haryana

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 85-91

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

श्रीमती बंटी रघुवंशी

शोधार्थी,

आई. ई. एस. यूनिवर्सिटी, भोपाल।

for the paper titled

सरकारी और अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों के छात्रों की हिंदी भाषा प्रयोग में अशुद्धियों का तुलनात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 92-95

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551 ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Mohan Mathew, Research Scholar

Dr. Leela P. U, Asst. Professor and Research Guide

Department of Sociology and Centre for Research

St.Teresa's College (Autonomous), Ernakulam.

for the paper titled

Caste-Bound Reciprocity to Machine- and Market-Centred Pragmatism : Agrarian Reform in Kuttanad, Kerala.

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 96-105

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डिल्लीराम शर्मा संग्रौला

विभागीय प्रमुख, संस्कृत, पत्रकारिता तथा हिंदी
पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू, नेपाल।

for the paper titled

'सिसकियाँ' उपन्यास में नारी विमर्श

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 106-110

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. शिव कुमार सिंघल
अर्थशास्त्र विभाग,
शासकीय गुण्डाधुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोण्डागांव (छत्तीसगढ़)

for the paper titled

जनजातीय हस्तशिल्प एवं आर्थिक विकास (बस्तर संभाग के विशेष संदर्भ में)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 111-121

9 772395 711007

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551 ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. सुरेश कुमार
अर्थशास्त्र विभाग
शहीद महेन्द्र कर्मा विश्वविद्यालय, जगदलपुर, (छ.ग.)

for the paper titled

हल्बा स्त्रियों के जीवन स्तर में सुधार – एक अध्ययन (कांकेर जिले के संदर्भ में)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 122-129

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551 ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डा. उत्तम-माझिः, अतिथि–प्राध्यापकः, संस्कृत–विभागः, काजी–नजरुल–विश्वविद्यालयः, पश्चिमबर्धमानः, आसानसोलः, पश्चिमवङ्गः–713340

प्रभात–मण्डलः

शोधच्छात्रः, संस्कृतविभागः, बर्धमानविश्वविद्यालयः, पश्चिमवङ्गः

for the paper titled

चरकसंहितायां प्रतिफलितं सांख्यतत्त्वम्

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 130-140

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551 ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Savita Gill

Research Scholar

Music Vocal, PGGCG – 11, CHD.

for the paper titled

ऑनलाइन संगीत शिक्षा प्राप्त करने का उपयुक्त समय : भारतीय शास्त्रीय संगीत के संदर्भ में एक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 141-145

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Salini. C
Associate Professor, Dept of Hindi
Govt. College For Women Vazhutacaud Tvpm

for the paper titled

हिंदी सिनेमा में चित्रित नारी जीवन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 146-149

9 772395 711007

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

आशा कुमारी, शोध छात्रा,

डॉ. विनोद कुमार शर्मा, शोध निर्देशक

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,

डॉ. सी. वी. रमण विश्वविद्यालय, वैशाली, बिहार।

for the paper titled

प्रगतिशील कहानियों में आर्थिक विषमता और नैतिक मूल्यों का अंतर्विरोध

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 150-156

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

प्रियंका

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना।

for the paper titled

भारत की समकालीन आर्थिक विकास योजनाओं का राजनीतिक एवं पर्यावरणीय विश्लेषण

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 157-171

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

प्रभात यादव

शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

for the paper titled

प्राचीन नालंदा महाविहार का कृषि–आधारित अर्थशास्त्र : 200 गांवों के अनुदान और संसाधन प्रबंधन का विश्लेषणात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 172-178

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. सुनीता भारती

सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग

ए. जे. एम. कॉलेज, बनमनखी, पूर्णियाँ, बिहार।

(पूर्णियाँ विश्वविद्यालय, पूर्णियाँ)

for the paper titled

नील कमल के काव्य में नारी-संवेदना एवं स्त्री-विमर्श की संभावनाएँ

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 179-186

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551 ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. राम भवन यादव

पोस्ट डॉक्टरल फेलो

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

for the paper titled

भोजपुरी लोकसंस्कृति में मनुष्येत्तर तत्वों की अभिव्यक्ति

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 187-194

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

सिद्धार्थ सिंह पटेल

शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास एंव पुरातत्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

for the paper titled

वर्तमान युग में सम्यक दृष्टि की प्रासंगिकता–एक बौद्धिक चिंतन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 195-198

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551 ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

ललन कुमार सिंह

व्याख्याता, भूगोल विभाग

पी0 एम0 एस0 कॉलेज, बिहारशरीफ, नालंदा, बिहार।

for the paper titled

मगध की राजधानी राजगृह में पाषाण चैत्य
(ऐतिहासिक श्रोतों एवं नवीन पुरातात्विक साक्ष्यों का विश्लेषण)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 199-203

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
ISSN:2395-7115

Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. ममता शर्मा

सहायक आचार्य हिंदी

एस बी के राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जैसलमेर, राजस्थान।

for the paper titled

दामोदर खडसे द्वारा संकलित सूर्यबाला की कहानियों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : संवेदना, यथार्थ और अंतर्द्वंद्व का विश्लेषण

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 204-209

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. शत्रुघ्न सिंह, सहायकाचार्य एवं शोध निदेशक

बृजेश कुमार पाण्डेय, शोधार्थी,

जगद्गुरु रामानंदाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय जयपुर (राजस्थान)

for the paper titled

ईश्वर सिद्धान्त : योग दर्शन और वेदान्त का मूलभूत अन्तर

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 210-215

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18391551
ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

सुमिता सिंह
शोधार्थी,
जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा।

for the paper titled

महात्मा गाँधी और विनोबा भावे के विचार-दर्शन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
January 2026, Vol. 23, Issue -1(1), Page No. 216-219

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152